



शभूदथाल सकसेना •

व्यक्तित्व एवं कृतित्व

नाट्यकला और कृतियाँ

खिस्व १

लेखक

डाक्टर रामचरण मश्रेष्ठ

एम० ए० पी०एच० डी०

पब्लिशिंग हाउस कोटा ( राजस्थान )

[ हिन्दी एकांकी, प्रबंध और विद्यालय सेट पाठ्यपुस्तकें, नाट्यकला एवं कृतियाँ  
पी पी श्रीवास्तव की नाट्यकला कृतिकृतियों में से हिन्दी नाट्यकला, हिन्दी  
महाकाव्य और महाकाव्यकार, हिन्दी नाटक और नाट्यकार आदि पुस्तकों के सम्मिलित ]

प्रगति प्रकाशन

कोलकाता

मुक्त विवरक  
नववुन ग्रन्थ कुटीर  
बीकानेर



प्रकाशक  
श्रमति प्रकाशन  
बीकानेर

।

मुद्रक  
एनकेशनल प्रेस,  
बीकानेर

प्रथमावृत्ति मार्च १९९२  
पृष्ठ २/००

## सूमिका

राजस्थान के पुराने बहुमुखी साहित्यकारों में बीकानेर के नरोत्तम साहित्यकार भी शम्भूदास सकसेना का स्थान महत्वपूर्ण है। गद्य-वाचीय-कवियों में सकसेना जी की लेखनी से काव्य, नाटक, एकांकी, उपन्यास, आलोचना, कहानीय और साहित्य प्रचुर मात्रा में निकला है, पुरस्कृत हुआ है, तथा राजस्थान एवं भारत भर में लोकप्रिय हुआ है। आपकी पुस्तकें स्कूल और कालेजों में पाठ्यक्रमों में लगी हैं और उनका विशेष अध्ययन हुआ है। आपके नाटक-उपन्यासों में विशेषरूप से अध्ययन के लिए लगे हुए हैं। ज्ञाने-ज्ञाने अन्य सकसेना जी की कला पर लिखे भी गए हैं, पर वे अपूरण और एकांगी से रहे हैं। पाठकों और विद्यार्थियों की यांग की कि सकसेना जी के समग्र साहित्य पर एक स्वतन्त्र आलोचनात्मक ग्रन्थ प्रकाशित हो, उनके विचारों, कला, एवं कृतित्व पर विस्तार से प्रकाश पड़े और अध्ययन में सहायता मिले।

राजस्थान के नाटक-साहित्य के अध्येता और एकांकी-साहित्य के विशेषज्ञ डा० रामचन्द्र महेन्द्र ने अपने बीचिष्ठ “हिन्दी एकांकी : उद्गम और विकास” में सकसेना जी की नाट्यकला और कृतियों पर संक्षेप में प्रकाश डाला था, पर इतिहास की ठस पुस्तक में विस्तार से विचार करना कहावित्त सम्भव न था। हमारे विशेष आग्रह पर उन्होंने सकसेना जी के नाट्य-साहित्य पर विशेष और उनके शेष साहित्य पर एक निरगम दृष्टि डाली है। इस पुस्तक से सकसेना-साहित्य की समझने और परलने में बड़ी सहायता मिलेगी, क्योंकि इस पुस्तक में साहित्यकार भी शम्भूदास सकसेना के व्यक्तित्व और कृतित्व के अध्ययन में ठकादेश नवीन और स्वाधीन सामग्री प्रस्तुत की गई है। इस पुस्तक द्वारा सकसेना जी के साहित्य की विवेचना ही नहीं होती, बरन् उनके जीवन और अन्तर्मुख जेतना का भी दर्शन होता है। डा० महेन्द्र के निष्कर्ष मौलिक, और नए हैं, उनका विशेषण ठकपूर्व एवं दृष्टि अद्वयक है।

इस आलोचनात्मक पुस्तक की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि लेखक ने सकसेना-साहित्य पर रसक पाठक की तरह विवेचन किया है, निर्मम और शुष्क आलोचक की तरह नहीं। गर्भीर अध्ययन की द्वाप स्वाभ स्थान पर है। विज्ञान लेखक द्वाप अद्ययक और विशद रूप से सकसेना-साहित्य की समझना और उसके रकासाधन के लिए उन्मुक्त मौलिक

रसज्ञता की उपस्थिति कर सकना इस पुस्तक के द्वारा संभव हुआ है। जिन गतिविधियों और पारिवारिक वातावरण में सकसेना जी की प्रतिभा पुष्पित और फलित हुई थी उसकी इसकी स्थापक आनन्दरी अम्बत्र पुत्रा है। इस पुस्तक से राजस्थान के विद्यार्थी कश्मीर और रसज्ञ पाठकों को बहुत सहायता मिलेगी और विद्वानों का चिन्तन की मनीष व्युत्पन्न प्राप्त होगी। इस किताब में नाटक साहित्य पर विशेष रूप से विस्तृत सामग्री है।

इसमें आशा है सकसेना जी के उपन्वास और कल्प-साहित्य पर अगले भागों में विस्तार से विचार किया जायेगा।

मयापुरा, कोटा  
( राजस्थान )

प्रोफेसर मोहनलाल वर्मा,  
एम० ए० एल० एल० बी०

## सेनक के दो शब्द

यह औरत प्रातः करने में मुझे प्रसन्नता है कि राजस्थान के शीर्ष साहित्यकार श्री मंगूदयास सक्सेना के इतिहास के एक विशेष धर्म पर मैं इस पुस्तक में अपने विचार व्यक्त कर सका हूँ। सक्सेना जी ने इसी तरह का और इतना प्रचुर साहित्य हिन्दी को दिया है कि उस पर किसी एक व्यक्ति द्वारा स्वायत्तक विमर्श आना बस्तुतः कठिन है। कविता कहानी उपन्यास नाटक एकांकी गद्यगीत और बच्चों के साहित्य के अतिरिक्त अनेक तरह की पाठ्यपुस्तकों के भी निर्माण हैं। अपने नाम से और विभिन्न विभिन्न नामों से उपदानों से उन्होंने बिठना दिया है इनका नाम घाघरही कभी सगाया जा सके। १९३० से १९६० के बीच उन्होंने 'सनाती' माताहिक का संपादन किया। इस काल में उनकी मुबनात्मक प्रतिभा का उपयोग विशेषकर राजनीति के संपादन के रूप में हुआ। 'सनाती' के संपादकों और सम्पादकीय टिप्पणियों में उनकी लक्ष्मी की तीव्र बुद्धि का न जान बिना लोगों ने अनुभव किया होगा। अनेक क्षेत्रों में उनके पत्र की उत्तुङ्गता से प्रतीति की जाती थी तो उनके पत्रों में उनका प्रकाशन मार्गका न कहा जाता था। निर्भीकता स्पष्टता और युक्तियुक्तता के द्वारा समाचारपत्र जगत में सक्सेना जी की लक्ष्मी ने एक स्वयं परम्परा कायम की है। इसी का परिणाम हुआ कि अन्तिम राजस्थान समाचारपत्र संपादक सम्मेलन के प्रथम अधिवेशन के समापनित के लिए उन्हें ही चुना गया। वे सक्सेना और साहित्यकार के अतिरिक्त एक महान संपादक भी रहे हैं। 'सनाती' में प्रकाशित उनके लेखों का संकलन कभी हो या उनकी प्रतिभा का एक और पत्र प्रकाश में आ सकता है। जारी लक्ष्मी और संपादकों के लिए वह धन्य मार्गदर्शन का काम करता है।

इस ग्रन्थ में सक्सेना जी की मादयत्ना और उनके मादकों के एकांकिया का इस परिचय दिया गया है और वह भी सरसरी दृष्टि से। उनके काव्य कहानी उपन्यास गद्यगीत और बाल साहित्य का परिचय देने का विचार था है हा पर वह कम और कम प्रसार संभव होगा यह कहना कठिन है। यन्त्रा तो यह होगा कि उनकी रचनाओं के एक एक प्रकार का उस विषय के अधिकारी विद्वानों द्वारा मूल्यांकन दिया जाय।

सफ़ाई की भी लेखनी अब तक अधिमान्त भाव से साहित्य-रचना में दृष्टिगत है। घोर घाघा की जाती है कि अब जो साहित्य उनके द्वारा निर्मित होया वह उनके व्यापक अनुभव के निचोड़ के रूप में घोर भी ऊँचे दर्जे का होया। उनका नया नाटक 'अवारों की मीत' मेरी इस चारणा की परिपुष्टि करता है।

यबनेमेट कासेज, कोटा

रामचरण महेन्द्र

# विषय सूची

## पहला खंड

१ ससुसेना ससुसेना ब्यक्तित्व और उसका विकास १ से २२  
जीवन परिचय— नाटकों की ओर प्रवृत्ति— विचारवाच तथा प्रभाव—  
सामाजिक मार्ग— भारतीय संस्कृति के प्रति ध्यान— राजनैतिक  
माध्यमार्थ ।

## दूसरा खंड

२ ससुसेना जी की नाट्यकला २३ से ३७  
कलाकला तथा उसका निर्माण— कलाकला— कलाकला— भाषा  
और कलाकला— रंगमंच निर्माण— नाटकों के बीच— इम्पेडिमेंट और  
संकेतन प्रणाली— धीरे-धीरे का धीरे-धीरे तथा संकेतनकला— नाट्यकला ।

## तीसरा खंड

३ ससुसेना जी के पौराणिक और नैतिक एकांकी ३८ से ८४  
पंचवटी— कलाकला— बीरकला— बुद्धकला— कलाकला—  
मुना की कला— कलाकला— कलाकला ।

## चौथा खंड

४ ससुसेना जी के बड़े नाटक ८५ से १०१  
कलाकला— कलाकला— कलाकला ।

## पांचवां खंड

५ ससुसेना जी के सामाजिक एकांकी १०२ से १७२  
कलाकला— कलाकला— कलाकला— कलाकला— कलाकला—  
कलाकला— कलाकला— कलाकला— कलाकला— कलाकला—  
कलाकला— कलाकला— कलाकला— कलाकला— कलाकला—  
कलाकला— कलाकला— कलाकला— कलाकला— कलाकला—







श्री पद्मनाभ सकसेना





श्री सुभाष चन्द्र बोस

१  
 १। स्वयं  
 प्रानेवाला  
 कारण  
 ने अपने  
 १ उसकी  
 पारी के  
 तल तक  
 २१ का  
 ही धारा  
 तल की।  
 २ निकल  
 तल हाई  
 १ स्कूल  
 उचित न  
 १४ कुछ  
 १ यही  
 १ किया  
 अनुभाव

राष्ट्रीय  
 उनकी  
 लिए  
 लिए  
 १२ से  
 १६।  
 की  
 पूरी



## प्रथम खण्ड

(१) श्री शम्भूदयाल सकसेना व्यक्तिस्थ और उसका विषय

१- जीवन-परिचय

परिवार तथा परिस्थितियाँ

साहित्यकार श्री शम्भूदयाल सकसेना का जन्म पटवर्धनाबाद नगर में संवत् १९२८, बीच शुक्ल त्रयोमी को हुआ था। आपके पिता श्री गुरुप्रसाद श्री सरकारी यमीन के मुग़ी थे। कापस्य समाज में उन दिनों उन्नीस और पारसी का ही प्रचार था। प्रीतम शास्त्र के लिए जिस जाति को कलम पर ही निर्बल रहना था उसके लिए सरकारी दफ्तरों में प्रचलित भाषा के अतिरिक्त और किसका सहारा होना? मध्यम वर्गी के परिवारों में अ वेबो के प्रति अनुराग तो था ही परन्तु वहाँ की शिक्षा का आरम्भ 'निस्मिता धनू रश्मिगुच्छीम' से ही कराया जाता था। उस समय हिन्दी बड़कर कुछ कर पुढरने पर किसी को विश्वास न था। हिन्दी की पढ़ाई किसी काम आयेगी, इन पर उन लोगों को भी आस्था कम ही थी जो हिन्दी के हिमायती थे। अन्य बातें शम्भूदयाल के परिवार में भी उन्नीस पारसी ही चलती थी। उन्नी के बातावरण में ही उनके दादा के आरम्भिक वर्ष बीते। वे दाई सात के ही थे कि उनकी माता का देहान्त हो गया। भाई बहिनों में सबसे छोटे होने के कारण माँ की मृत्यु के उपरांत उनका सासन पासल पिताजी के लिए एक लक्ष्म्या हो गया। उनका हल उनकी बीसरी और चाची द्वारा उनके कोई संतान न थी बी छोटे बहिन भाइयों को अपने यहाँ पाँच में से आने से हुआ। माँ की मृत्यु के कुछ समय बाद ही वे पटवर्धनाबाद में अलीगढ़ चले गये। अलीगढ़ गया पार एक गाँव था। उन दिनों तहसील का सदरमुकाम होने से उस छोटे से गाँव में तहसील काफ़ी और आकर सभी कुछ थे, परन्तु खूब नहीं था। खूब था अलीगढ़ से पाँच बीघा दूर राजेपुर में। घर पर आइसरी बरतारों तक बड़ी अध्ययन होता था।

अलीगढ़ एक छोटा गाँव था। रंगा और रामय्या के जन्म में होने के कारण

वहाँ तया प्राप्तपाठ प्राकृतिक दृश्य अत्यन्त सुहावने थे। उन्होंने घर में बातावरण से प्राये बालक संभुदयालु हैं। मन पर गहरा प्रभाव डाला। उनकी रचनाओं में प्रकृति का जो मनीहर चित्रण मिलता है वह इसी प्रभाव से संभूत है। छः सप्त वर्ष की अवस्था में उनके पढ़ने लिखने की समस्या सामने आई तो उस समय की प्रथा के अनुसार बाबा ने एक मौलवी साहब की सौंपा। विविध पढ़ी पुजी गई पर मौलवी साहब के मकान में बालक का जो न लगा। एक के पश्चात् एक चित्ता मौलवी ब्रह्मे गये, पर साधारण अपर ज्ञान के प्रतिरिक्त कोई प्रगति न हो सकी। एक सप्ताह पढ़ाई होती तो तीन सप्ताह बीमारो बसती थी। बाबा के माह प्यार और मौलवियों की कानधिबाई में इतना अधिक अन्तर था कि बालक उन दोनों के बीच में अपने को फिट नहीं कर पा रहा था। सबको ऐसा प्रतीत हो रहा था कि यह बालक पढ़ने लिखने वाला नहीं है। परिवार में बहुत चिंता होने से लोगों ने यह सलाह दी कि उसे स्कूल में प्रविष्ट करा दिया जाय। स्कूल का दूसरे पाठ में और बाबा की राष्ट्रीय बालक पर अटीता न था। जैसे बालक इतनी दूर जायेगा फिर जायेगा और फिर जायेगा और फिर ग्राम को जायेगा। उनका प्रेम उसे घर में ही घेर कर रखना चाहता था। अन्त में बाबा की इच्छा बाबा की प्रेरणा और छात्रियों के प्रोत्साहन में बालक की रामपुर के अपर प्राइमरी स्कूल में प्रविष्ट करा दिया गया। जहाँ के स्वाम पर उसने हिम्मी धड़ना पंथ किया। बीड़े ही दिनों में अध्यापक उसकी असाधारण प्रतिभा बुद्धि और योग्यता की बर्ण करने लगे। हिम्मी उसे अपनी स्वाभाविक बलि के इतनी अनुकूल पड़ी कि वह सदा कक्षा में सबसे आगे पढ़ने लगा। सबकी आश्चर्य होता था कि इतना कम पढ़ने लिखने वाला बालक किस प्रकार कक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त कर लेता है। परन्तु फिर तो जब तक पढ़ाई धनी इस नियम में कभी ध्यायात नहीं हुआ। इसका कारण शायद बालक में किसी सैद्धन्त-प्रतिभा का होना हो सकता है जिसका ज्ञान किसी को नहीं था। स्वयं वह भी नहीं जानता था कि किसी दिन उसे सैद्धन्त की अपने जीवन का मुख्य ध्येय बनाना पड़ेगा।

असीषद् में अपर प्राइमरी स्कूल से प्रागे प्रिया की व्यवस्था न थी और बाबा बाबा को बालक है इतना स्मैह हो गया था कि वे उसे कहीं बाहर भेजने को तैयार न थे। परन्तु बालक संभुदयालु की प्रागे पढ़ने की इच्छा थी। अन्त में बालक की प्रथम इच्छा की विषय हुई और वह प्रागे पढ़ने के लिए एक छात्रावस अपने बड़े भाई

श्री भगवतीप्रसाद के पास था गया। श्री भगवतीप्रसाद उन्हें सुम्भूषण के व्यक्ति थे। स्वयं उन्हें-वाँ में, नर इस बात का उन्हें कुछ निश्चय था कि भागे हिन्दी का भुय मानेबाबा है। यकबारी राजनीति का बहुत बारीकी से अध्ययन करने के कारण देश के जटिल के विषय में उनके विचार बहुत स्पष्ट और निश्चय हैं। उन्होंने अपने छोटे भाई की हिन्दी की ओर प्रवृत्त करने में सदा उत्साहित किया और जब उनकी शिक्षा-बीसा अहीं पर था तब तो बड़ी समय से उन्होंने को बहीने की तैयारी में बाद ही उसे कर्कसाबाद के मिशन हाई स्कूल में प्रविष्ट करा दिया। पाँच साल तक बालक शंभुदयाल ने मिशन हाई स्कूल में शिक्षा पाई कि था गया १९२१ का ऐतिहासिक वर्ष जब असहयोग की भाँपी में हजारों लोगों छात्रों के भोजन की धारा सदा के लिए बहल गई। मिशन हाई स्कूल के छात्रों के भी सामूहिक हड़ताल की। 'महात्मा गांधी की आज के भारों के साथ तीन बार ती लड़के स्कूल छोड़कर निकल आये। उनकी शिक्षा के लिए स्थानीय नेताओं ने कर्कसाबाद नगर में मेघनम हाई स्कूल की स्थापना की। बाद में हड़ताल करने वाले अधिकांश छात्र अपने पुराने स्कूल लौट गये परन्तु कुछ छात्र वापस नहीं गये। उन्हें समावाचना करके स्कूल में आना उचित न लंबा। वे मेघनम हाई स्कूल में गये लगे। इस राष्ट्रीय स्कूल में शिक्षा का ईश कुल कुछ बदला हुआ था, और छात्रों को राज्य निर्माण के कार्यों में भी लवाया जाता था। यहाँ छात्र शंभुदयाल ने पढ़ाई के साथ साथ एक स्वतन्त्रतावादी मासिक पत्रिका का संपादन किया और उसके लिए "माइर्न रिप्यू" और "इंडियन रिप्यू" के कई लेखों का स्वयं अनुवाद दिया।

उस समय कांग्रेसीयन तीव्रगति से चल रहा था और समस्तवदन अनेक राष्ट्रीय वैदिक बंद हो गये थे। कुछ के साइबरीस्टाइल संस्करण निकलते थे। उनकी परिमित संख्या में प्रतियाँ आ जाती थीं। मुख्य समाचारों को जमता तक पहुँचाने के लिए, नगर में स्थान स्थान पर झोंक बोर्ड लगे थे। रोज के समाचार उन बोर्डों पर लिख दिए जाते थे। यह कार्य छात्र शंभुदयाल ने बराबर तब तक किया जब तक पत्रों पर से प्रतिबन्ध नहीं उठा लिया गया। इस तरह कांग्रेसीयन में भाग लेने के साथ साथ पढ़ाई भी चलती रही और इसी काल में छात्र शंभुदयाल ने गुजरात विधानीय से मैट्रिक की बरीरा पास की। अपने वर्ष काशी विद्यापीठ की प्रवेशिका परीक्षा में बैठे, परन्तु पूरी तैयारी न होने के कारण तर्कसाध में अनुत्तीर्ण रहे। काशी से वापस आकर छात्र



संभ्रममान मैं जाना जाकपतराय की से पत्र व्यवहार प्रारंभ किया। जाना की मैं बड़ी प्रसन्नता और आत्मीयता से छात्रवृत्ति लेकर उन्हें साहीर धाने की स्वीकृति दे दी परन्तु बड़े भाई साहेब ने फर्क जाबाब में रहकर ही अध्ययन करने की सलाह दी। उन्होंने कहा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन की परीक्षा क्यों नहीं दे लेते? अतः पुनः संभ्रममान बस और सब तय और कामकाज विचारब संपादन कला विचारब व साहित्यरत्न परीक्षाएं करीसुई की। साहित्यरत्न परीक्षा में बैठने मैं पूर्वं उस समय एक कृतज्ञ मित्र ( बीसिस ) देना पड़ता था। रामचन्द्रिमानस और रामचन्द्रिण' सीर्यक भाई ली मूळ का तुलनात्मक अध्ययन बीसिस के रूप में प्रस्तुत करने पर उन्हें साहित्यरत्न परीक्षा देने योग्य समझा गया। सायब साहित्यरत्न परीक्षा के निमित्त स्वीकृत वह दूसरा निर्बंध था।

इसके बाद इनकी बचि साहित्यिक कार्यों की और विशेष रूप से हो गई। उन्होंने प्रयाग जाकर 'बाब' के संपादक की रामरससिंह सहयन से जेठ की और कुछ दिन 'बाब' में काम भी किया। फिर भाई भगवतीप्रसाद की ने उन्हें फर्क जाबाब बुला लिया और सभी सेवा सब सम्मेलन के प्रकार मंत्री की रामनारायण बसुबेदी की और से उन्हें सम्मेलन में काम करने के लिए नियुक्त कर दिया गया। परन्तु सम्मेलन में कुछ महीने ही उन्होंने काम किया। इसके बाद इंडियन प्रेस में स्थान मिल गया और वहाँ चले गये। प्रयाग में इनकी अनिच्छता की विजय बर्मा, की जगदतीप्रसाद बाजपेयी, की मधुसूदन बदधी की गिरिजादत्त कुल की आनन्दीप्रसाद कीबास्तब आदि से हुई। उस काल के और भी अनेक लेखकों से इनका परिचय हुआ। यहीं उन्होंने की विजय बर्मा और भगवती प्रसाद बाजपेयी के साथ मिलकर "भीठी कुठकी" नामक उपन्यास लिखा। इसी काम में इनकी अनेक कविताएं और कहानियाँ उस समय की प्रसिद्ध पत्रिकाओं माधुरी 'सरस्वती' और विप्लव भारत' आदि में छपीं। इन्हीं दिनों भारतीय पत्रिकाओं पटना ने इनका कहानी संग्रह 'चित्रपट' छपा और साहित्य मित्रेयन बाराबंख प्रयाग ने 'बहुरानी' उपन्यास। परन्तु उस समय पुस्तकों से आर्थिक लाभ लाभ लाभ की ही हीता था, अतः न चाहते हुए भी इन्होंने प्रो० बघावांकर की बुले की प्रेरणा से पाठ्य-पुस्तकों की एक सीरीज लिखी। उस प्राम्य पाठमाला की इंडियन प्रेस ने छपा और वह कई साल तक पाठ्यक्रम में रही।

प्रयाग में रहते समय इनका परिचय उस समय के सभी प्रमुख साहित्यकारों से हुआ। कविराज प्रधान इनकी प्रतिभा को कवच-सिन्ध की प्रेरणा यहीं से मिली। माय

प्रघट होनेवाली कई पुस्तकों की बचत इसी काल में की। यह बहुत थोड़ा था जहाँ आकर उन्हें यह सोचना पड़ा कि कविता या कहानी किस माध्यम से वे अपने प्रापटो की तरफ अभिव्यक्त कर सकते हैं। उस समय इसका निर्णय नहीं हो पाया। और दोनों प्रकार की रचनाओं का प्रत्यक्ष जारी रहा। साथ ही बाल साहित्य की सृष्टि भी करते रहे। उस समय के इनक समस्त साहित्य में भारतीय संस्कृति के प्रति मोह की अड़ता के साथ साथ यूरोप की रचना का स्वीकार भी अधिक मिलता है। १९११ में अचानक परिवर्तन आया। वे प्रभाव आकर बीकानेर या पड़ोस की साहित्यिक बक से निकलकर अध्यापक बन गये। यह परिवर्तन इन्होंने आचार्य जंडोलकर शास्त्री के परामर्श और अनाह के अनुसार स्वीकार किया। वे बहुत करते थे कि कोरी साहित्य सेवा से जीवन-मिलाव भी तक सम्भव नहीं है। साथ ही कुछ धन आये जब हो।

जीवनभरण के लिए अध्यापन स्वीकार करके वे प्रयाग से बीकानेर आये और सेठिया संस्थाओं व सेठिया वाइड कालेज में अध्यापक के रूप में दोनहूँ वर्ष तक कार्य किया। साहित्य छाटना बराबर बसती रही। जगन्नाथ कहानी संग्रह, कविता संग्रह, छंदकाव्य आलोचनात्मक निबंधों व बाल साहित्य की इनकी अनेक पुस्तकें निराली। इस काल में इनकी दृष्टि में नाटक और एकांकी रचना का और धोप हुआ। जो धोप चल कर इनकी कला का एक प्रमुख प्रकार बन गया। इसकी नाटक-रचना के बीजों का उल्लेख 'Indian Drama नामक पुस्तक में Hindi Drama and Theatre अध्याय के अन्तर्गत इन पानों में हुआ है, Of the more recent playwrights in this stream, mention may be made of Shambhu Dayal Sakrena and Vinja Rama both of whom have turned out to be surprisingly refreshing in their outlook and delightfully spontaneous in their technique. There is more action in their plays than in those of some of the better known playwrights. साथ ही नाटक और एकांकीकार के रूप में सरसेना की का बहुत ऊँचा स्थान है। उनके अब तक समय-समय पर एकांकी और अनेक नाटक प्रकाशित हो चुके हैं। उन्होंने विद्वत् वर्ग कानिवाल के 'मेघदूत' काव्य का नाट्य रूपान्तर प्रस्तुत करके अत्यंत प्रयोग किया है जो काफी सफल रहा है। 'बापू मैं कहाँ था' महात्मा गांधी के अन्तिम शब्दों का ऐतिहासिक वातावरण प्रस्तुत करता है। इनके अतीतम नाटक 'प्राग की

शंभुदयाल ने लाला लाजपतराय जी से एक व्यवहार शरम किया : लाला जी ने बड़ी प्रसन्नता और आत्मीयता से प्राप्तकृति देकर उन्हें जाहीर माने की स्वीकृति दे दी परन्तु उन्हें भाई साहब ने एक साबाब में रोककर ही अध्ययन करने की सलाह दी। उन्होंने कहा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन की परीक्षा क्यों नहीं दे लेते ? अतः युवक शंभुदयाल उस और लग गये और क्रमशः विद्यारथ, संपादन कला विसारद व साहित्यरत्न परीक्षा उत्तीर्ण की। साहित्यरत्न परीक्षा में बीठने से पूर्व उस समय एक बृहत् विषय ( नीति ) देना पड़ता था। 'रामचरितमानस और रामचंद्रिका' शीर्षक काही ती पृष्ठ का तुलनात्मक अध्ययन नीति के रूप में प्रस्तुत करने पर उन्हें साहित्यरत्न परीक्षा देने योग्य लगता गया। आर्य साहित्यरत्न परीक्षा के निमित्त स्वीकृत वह दूसरा निबंध था।

इसके बाद उनकी सभी साहित्यिक कार्यों की ओर विशेष धन से हो गई। उन्होंने प्रयाग जाकर 'बाब' के संपादक श्री रामरत्नसिंह सहजान से भेंट की और कुछ दिन 'बाब' में काम भी किया। फिर भाई भगवतीप्रसाद जी ने उन्हें 'क' साबाब बुला लिया और तभी मेला जब सम्मेलन के प्रकार सजी श्री रामनारायण बतुर्खे की ओर से उन्हें सम्मेलन में काम करने के लिए नियुक्त कर दिया गया। परन्तु सम्मेलन में कुछ महीने ही उन्होंने काम किया। इसके बाद इंडियन प्रेस में स्थान मिल गया और वहाँ बसे बसे। प्रयाग में इनकी धनियता श्री विजय वर्मा श्री भगवतीप्रसाद बाजपेयी श्री पद्मनाभ शर्मा श्री विरबादत शुक्ल, श्री धानवी प्रसाद श्रीबास्तव आदि से हुई। उस काल के और भी अनेक वैयक्तिकों से इनका परिचय हुआ। यहीं उन्होंने श्री विजय वर्मा और भगवती प्रसाद बाजपेयी के साथ मिलकर 'भीठी बुटकी' नामक उपन्यास लिखा। इसी काल में इनकी अनेक कविताएँ और कहानियाँ उस समय की प्रतिष्ठित पत्रिकाओं 'मासुरी' 'तरस्वती' और 'विमान भारत' आदि में छपीं। इन्हीं दिनों भारतीय ब्रह्मसंघ के प्रधान ने इनका कहानी संग्रह 'विजय' छापा और साहित्य निकेतन शारंगधर प्रयाग ने 'बहुरानी' उपन्यास। परन्तु उस समय पुस्तकों से आर्थिक लाभ नाम मात्र की ही होता था अतः न चाहते हुए भी उन्होंने श्री० बगवानंदर जी बुधे की प्रेरणा से पाठ्य-पुस्तकों की एक सीरीज लिखी। उस प्रथम पाठ्यक्रम को इंडियन प्रेस ने छापा और वह कई साल तक पाठ्यक्रम में रही।

प्रयाग में रहते समय इनका परिचय उस समय के सभी प्रमुख साहित्यकारों से हुआ। कविद्वय प्रयाग इनकी प्रतिभा को कला-विशेष की प्रेरणा यही मिली। आगे

प्रगट होनवाली कई कुरतकों की वपरेखा इसी काल में बनी। यह पहला मोड़ था जहाँ साकर पहले यह सोचना बड़ा कि कविता या कहानी किस माध्यम से व अपने आपकी ठीक तरह अभिव्यक्त कर सकते हैं। जब समय इसका निर्णय नहीं हो पाया। धीरे धीरे प्रकार की रचनाओं का प्रचलन जारी रहा। साथ ही काल साहित्य की तुष्टि भी करते रहे। उस समय के इनके समस्त साहित्य में भारतीय संस्कृति के प्रति मोह की बढ़ता के साथ साथ वरेषु जीवन का स्वरूप ही अधिक मिसता है। १९३१ में प्रकाशक परिवर्तन आया। वे प्रयाग छोड़कर बीकानेर या खुबि धीरे साहित्यिक बक से निकलकर अध्यापक बन गये। यह परिवर्तन इन्होंने प्रचार्य बंडोपाध्याय साहू के परामर्श धीरे प्रभाव के अनुसार स्वीकार किया। वे कहा करते थे कि कोरी साहित्य सेवा से जीवन निर्माण अभी तक संभव नहीं है। साकर कोई युग धाये बच हो।

जीवनवादन के लिए अध्यापन स्वीकार करते वे प्रयाग से बीकानेर आये धीरे सेठिया संस्थाओं व सेठिया नाट्य कालेज में अध्यापक के रूप में खोसह बर्ष तक कार्य किया। साहित्य साधना बराबर चलती रही। उपन्यास कहानी संग्रह कविता संग्रह संस्कार्य, आलोचनात्मक निबंधों व काल साहित्य की इनकी प्रत्येक पुस्तकें निकलीं। इस काल में इनकी प्रतिभा में नाटक धीरे एकांकी रचना का धीरे मोप हुआ। जो धाये चल कर इनकी कला का एक प्रमुख प्रकार बन गया। इनकी नाट्य-रचना के कोसल का प्रत्येक Indian Drama नामक पुस्तक में Hindi Drama and Theatre अध्याय के अन्तर्गत इन प्रयोगों में हुआ है, *Of the more recent playwrights in this stream, mention may be made of Shambhu Dayal Saksena and Vimla Rama both of whom have turned out to be surprisingly refreshing in their outlook and delightfully spontaneous in their technique. There is more action in their plays than in those of some of the better known playwrights.* उद्यम तो नाटक धीरे एकांकीकरण के रूप में चलते-चले जाते का बहुत बड़ा स्वप्न है। इनके बाद तक लगभग दो एकांकी धीरे अनेक नाटक प्रकाशित हो चुके हैं। कहीं-कहीं निम्ने बर्ष कालिदास के मेघदूत काव्य का नाट्य रूपान्तर प्रस्तुत करते गया प्रयोग किया है जो काफी सफल रहा है। 'बापू ने कहा था' महात्मा गांधी के अन्तिम क्षणों का ऐतिहासिक वातावरण प्रस्तुत करता है। इनके नवीनतम नाटक 'आम की

जिम्हनी और 'घघारों की मौत' क्रांतिकारी अहीरों के जीवन पर लिखे गए हैं, जो मुख्य में हैं। मेहक के बाद तथा ग्रन्थ एकांकी 'एकांकी संकसन सभी सभी प्रकाशित हुआ है। इसमें पञ्चकोटि के प्यारह एकांकी हैं और जीवन के भिन्न भिन्न पहलुओं पर मार्मिक ग्रन्थ प्रस्तुत करते हैं। उनकी सैकड़ों की नाट्य रचना का मर्म पकड़ में आ गया है।

## नाटकों की ओर प्रवृत्ति

सन् १९३९-३३ में श्री सक्सेना को लाहौर किसी कार्यवश आ गया। वहाँ हिन्दी जीवन के सचात्क भी देखकर मारंग में अनुरोध किया कि हमें बच्चों के लिए पात्र ही एक नाटक लिखकर दीजिए। यह एक अजीब माँग थी। वे घंटे तिसी पाठ्यपुस्तक में सम्मिलित करना चाहते थे। सक्सेना जी के लिए एक नया प्रयोग था। उनकी माँग की वे सम्मेलन न कर सके और समायस के कथानक ही एक प्रश्ना लेकर 'आद प्रम' नामक एक पौराणिक बालोपयोगी एकांकी लिख दिया। यह एक सफल रचना थी। बाद में यह एकांकी 'गंगाबली' नामक संग्रह में आया। उनकी इस सफलता में विकास की एक नई विद्या मिली। एक नई तरफ उनकी शुद्धात्मक कृति लभने लगी। बच्चों के मस्तिष्क को एक नई विकास विद्या देने के लिए उन्होंने एक एक करके सप्त एकांकी लिखे जो 'गंगाबली' में आये। इनमें एकांकी की टैनीक का कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया। केवल बच्चों की संवाद के रूप में कोई आकर्षकता की आवश्यक बना कर ही गई है। इन एकांकियों में नाटकीय प्रिन्सिपल का आत्मनिर्माण या हृदय विद्या आदि की ओर नाटककार की दृष्टि नहीं गई है। 'गंगाबली' के प्रकाशन के बाद स्कूलों में इसका प्रचार बढ़ा। बच्चों के लिये एकांकी वे नहीं। स्कूलों में कहा तहाँ इनका अभिगम भी हुआ, यही में बच्चों को बलि हुई। इस सफलता से इनके बालोपयोगी एकांकियों की माँग निरंतर बढ़ती रही। अतः उन्होंने बार और एकांकी लिखे जो "वस्त्र" नामक संग्रह के नाम से प्रकाशित हुए। "गंगाबली" को श्री रामलील विद्यालय मेहता, नामक एक गुजराती लेखक ने विशेष पसंद किया और दोनों संग्रहों का अनुवाद गुजराती में लाया। उन्होंने यह भी माँग की कि रामायण के ग्रन्थ मर्मस्पर्शी स्थलों को भी एकांकियों के रूप में प्रस्तुत किया जाय। इस पर सक्सेना जी ने "पंचवटी" नामक पाँच और एकांकी लिखे। ये पहिले की प्रशंसा परिपूर्ण हैं। इनमें नाटकीय प्रिन्सिपल, पात्र सृष्टि और अभिगम का ध्यान

भी रखा गया है। उनके समुचित बराबर चलते रहे। फलतः 'पर्सकुटी' संप्रह में पांच और पौराणिक धार्यवादी नाटक लिखे गए। इस प्रकार रामायण नामा के चार एकांकी संप्रह तैयार हुए। इनमें प्राचीन भारतीय संस्कृति धारणों और पौराणिक जीवन की मध्य प्रक्रियाएँ हैं। कथाएँ कुछ तो रामायण से सीधे ही क्यों की त्यों थोड़े बहुत अंतर से भी गई हैं। कुछ मौलिक हैं जैसे 'पंचवटी' 'तापती' आदि। "पल्लुकी" संप्रह के सब एकांकी अधिकतर मौलिक हैं। कथा की पृष्ठभूमि रामायण की है, केवल सब काम नाट्यकार की मौलिक प्रतिभा की देन है। कथोपकथन में सरसता भर म्यान है। शारीरिकता से दूर रहने का प्रयत्न है। वे बहुत छोटे रहें मिलते बच्चे घासानी से उन्हें हृदयवश कर सकें यह विरोध म्यान रखा गया है। इस रामायण-नामा के रचनाकाल में साथ साथ बच्चों के कई अन्य नाटक भी लिखे गए। कुछ नाटक जिनमें 'साधनापथ' आता है प्रीतियों के लिए लिखे गए।

इनके अनन्तर 'समाई' नामक एक बड़ा सामाजिक समस्या-एकांकी लिखा गया। एवम प्रवा की वे बहुत बुरा समझते रहे हैं। इसी प्रकार की अन्य सामाजिक विद्रोहात्मक जीवन की कथा कथु बना सकती हैं इसका परिचय हमें इस नाटक में मिलता है। इस नाटक की प्रस्ता में 'आलोचना' विस्मोयक ६ ( इतिहास दोषांक जनवरी १९२३ में 'हिन्दी रंजन' और नाट्यरचना का विकास' दीर्घक लेख में भी जयवीराजी माधुर लिखते हैं— 'हाल ही में बीकानेर में शंभू दास सक्सेना की 'समाई' पढ़कर आभास हुआ मानों हिन्दी नाटक नामा में एक नया मोती गुंथा हो। इस नाटिका में समस्या का उद्घाटन होता है बलाघों के द्वारा नहीं बल्कि पात्रों के आचरण के द्वारा।

"विद्यापीठ" सन् १९४१ में लिखा गया था। इसमें सुविचारित कथा है। भारतीय युवक के त्याग और संयम के धार्यों को प्रेरित करने की सफल चेष्टा है। इस एकांकी को विरोधी आलोचनाएँ भी हुईं। कुछ प्रगतिशील आलोचकों ने इसकी धार्यवादिता को पक्ष नहीं किया। लेखक का उद्देश्य उस धार्य की रक्षा करना ही रहा है। यह धार्यवादिता उनके नाटकों में सज्ज थाया है। "सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय" यही उनकी नीति रही है।

"मन्दराभी" एकांकी संप्रह १९२० में प्रकाशित हुआ। इनमें 'भाग्य का घर' और 'मन्दराभी' पौराणिक पृष्ठभूमि पर लिखे हुए मौलिक एकांकी हैं। दोनों में

‘बीबरमारिछी’ संघर्ष के एकांकियों में गति बिना कुछ परिवर्तन के साथ आई है। इसमें वे बौद्धकाजीन इतिहास से विशेष प्रभावित हैं। उनमें बुद्ध द्वारा जीवन के हटाये हुए आनन्द, तथा हिन्दु धर्म के कलाबदीपन को गुर करने के प्रयत्न से विशेष प्रेरणा मिली है। कुछ एक युगान्तरकारी नेता के सिग्होंने अपने बिचार और वाली से हिन्दु बिचारबिच और शार्मिक पद्धति को बिलकुल नया रूप प्रदान किया था। और उससे बिद्वान से लेकर साधारण जन तक बच्चे बुद्ध, रानी, दुस्य, पनबान, परीब, मुदियों से लेकर महुलों तक के व्यक्ति प्रभावित हुए। बुद्ध के इस प्रभाव को हटाने के लिए समाजनी हिन्दुओं को बड़ा संघर्ष करना पड़ा था। यदि मुसलमानों का प्रभाव न होता तो शायद हिन्दु बौद्धों का संघर्ष बहुत दिनों तक और बहुत व्यापक रूप से चलता रहता। हिन्दुओं के कार्य को इस्लाम की तरफार में घुरा किया था। बौद्ध बिचारधारा का महुं से समाज लोप हो गया। जहाँ बुद्ध के जीवन की कुछ मध्य स्मृतियों को इन एकांकियों में सम्मिलित किया गया है। पात्र प्रमा बौद्ध धार्मिक कथाओं से लिए गए हैं। उनको केवल प्रभावशाली बनाने के लिए कुछ कल्पना का स्वर्ण कराया गया है। इसलिये वे अपनी दृष्टि से नीतिक हैं। इन एकांकियों में बौद्ध दर्शन की साम्यताएं अभिव्यक्त की गई हैं जिन्हें साधारण जन भी सब के रूप ग्रहण कर सके। उनमें साथ का आभास है। वहाँ तक युक्तियों का प्रकाश है जो स्वाभाविक रूप से वैमिक सामाजिक जीवन में साथ हैं वे लेखक की अपनी मायताएं हैं। उदाहरण के लिए ‘बुद्धवाली’ एकांकी में बुद्ध कहते हैं “मेरा आदेश है धान्य! कि इस समझान में जलाई हुई कम्पाओं की उपरिचल करो कि ये अपनी कम्पा को पहचान लें।” कहिनी और धान्य बुद्ध की और देखते हैं, बिनासे प्रकाश चारों ओर बिकीर्ण हो रहा है। )

बुद्ध—“ममतामयी ममता की ओरासी हजार कम्पाय् दुती समझान में जाताई

का चुकी हैं, फलती होमल घोर दुःख सी पवित्र । ये रही है । महिषी देको बोनो, तुम इनमें से किस कम्पा के लिए बिलाप कर रही हो ? तुम माता हो, ममतामयी हो और ये सब पुत्रियाँ । तुम इनमें से किस एक के लिए ध्याकुल हो ?

—बुढ़वाणी

इसमें लम्बायात दो केवल इतना ही है कि इस प्रकार की घटना साधारण जीवन में संभव नहीं है, किन्तु इसके द्वारा लेखक ने यह बहुत बड़ा सत्य हमारे सम्मुख प्रस्तुत किया है कि माँ अभी तक मोहावृत्त में रहती है जब तक वह विधाय व्यक्तिगत की अपना सामझती है । जब यह तथ्य उसके समक्ष आ जाता है कि उसकी कम्पा की तरह ही सारी क्षमतायाँ भी हैं वे भी उसी प्रकार काल-कलित होती रहती हैं, तो उसका मोह और प्रतापनमिर दूर हो जाता है और जीवन के महान् से महान् दुःख सहने की उसमें क्षमता हो जाती है । इस सहनशीलता की उपलब्धि जिसको हो जाती है उसे संसार में कुछ पाने की साधना नहीं रहती, तथा माँ की वांछी बत्ती के मुह से इस प्रकार निकलती है—

— 'बहिरावती नदी के तट पर, इस क्षान्त संध्या में धाव मेरा नया जन्म हुआ है । मैं सर्वज्ञ बुद्ध, उनके धर्म और संघ की धारण करती हूँ ।

इसी प्रकार बौद्ध धर्म के संभव में निम्नलिखित विचार भी स्वयं लेखक को साम्य हैं :—

बबली— "मेरा बिल धाव पुरो तरह निर्मल है देव ! मैं समझ रही हूँ कि संसार दुःखपूण है । प्ररीर के पोछे जरा घोर मृत्पु लभो हुई हैं । उनसे राजा रक किसी का निस्तार नहीं है । निर्मल रामहीन मन से उन्हें जीता जा सकता है । मैंने अपने अन्तर की व्यापक विजय पा ली है ।"

—बुढ़वाणी

**सकसेना जी की सामाजिक विचारधारा तथा प्रभाव**

धार्मिक क्षेत्र में धर्म के धूल सत्त्वों पर छाया रखते हुए और जीवन में पूर्णरूप से अरितार्थ करते हुए भी उसके बाह्याङ्गपर तथा बनावटीपन से सकसेना जी को बचपन से ही नृणा रही है । इस बाह्याङ्गपर पर उन्होंने सदा धर्म्य किया है । यदि यह धार्मिक जीवन में हो अपना सामाजिक जीवन में । उसका फल यह हुआ कि जीवन की धर्मार्थता से वह साक्षात्कार हुआ, तब तबकपित बिलावती धर्म पर से उनका बिदबात



उठ गया ।

सकसेना जी के बड़े भाई श्री सचस्तीप्रसाद जी सकसेना पूर्ण साक्षिक थे । पूजा पाठ, नियम, धर्म धारि का वे पूरी तरह पालन करते थे और उनका प्रभाव पूरी तरह सकसेना जी के ऊपर भी पड़ा था । वे सभी हिन्दू पद्धतियों का सारा धावरण करने लगे थे, लेकिन उनको स्वतः इन सबके पीछे व्याप्त बीबापन बनाबदीपन और डोंप मात्तूम हुआ । उन्होंने अनुभव किया कि या तो धाबुक जनता अज्ञानबद्ध धर्म और सबाचार, कर्मकांड धारि में भिन्न रहती है या उसके द्वारा अपना स्वार्थ साधन करती है । इसलिये धर्म और धर्माचरण के सारे प्रयत्न निष्फल हैं । उनका मान्य न करने मनुष्य बुद्धावरण और सबाई द्वारा अपने कर्तव्यों का पालन कर सकता है । यह सिद्धांत धारा उनके सामाजिक एकाधियों में विशेष रूप से पाई जाती है । एक ओर वहाँ उनके मन में बनाबदीपन और डोंपपूर्ण सबाबडा तथा धर्म के प्रति दुरा और म्मानि उत्पन्न होती गई वहाँ दूसरी ओर व्यक्ति के प्रति प्रेम भाव बकता ध्यर । बुरा है बुरा व्यक्ति भी क्यों न हो, उसे वे एकान्त बुरा नहीं मानते हैं । कई बार उनके जीवन में ऐसे दुर्बल बरिष्ठ व्यक्ति आये हैं, लेकिन उन्होंने व्यक्ति से दुरा न कर उन्हें अपना प्रेम ही दिया है । अनेक बार इसमें खोसा भी हुआ है । परन्तु कई बार जोसा देने वाले व्यक्तियों में हृदय परिवर्तन भी देखने को मिला है इस अनुभव को वे व्यक्ति के प्रति साझावाद होने के लिए प्रबल समझते हैं ।

एक बार की बात है कि उनके किसी विश्वस्त मित्र ने उनके वहाँ एक नीकर रखा दिया था । उसकी विश्वसनीयता की प्रशंसा भी की थी । लेकिन मधार्थ में उस नीकर में थोरी और जुगा डेसने की आगत थी । वह विश्वसनीय न था । मित्र की सिफारिश के कारण सकसेना जी को कभी उस पर समझ नहीं हुआ । वे समझ करने का कोई कारण ही न समझी थे । जब परिवार में व्यक्ति तक उसे बुरा बुरा कहते थे और उसे हटाने की मांग पैदा करते थे स्वयं सकसेना जी उसे निभाये गए । एक बार उन्होंने उसे ४०) डेकर किसी कार्यवास में भा बह दो तीन घण्टे पञ्चाशु मीटकर प्राया और टीनी सी चुरत बनाकर बहने लया कि अपने छोटे किसी ने मेब में से निकाल लिए हैं । इस पर लगने कहा कि इसने अगर उन पैसों की किसी काम में लया लिया है । लेकिन सकसेना जी ने कहा कि दोनों बातें सम्भव हैं । इस प्रकार अपने दुराये भी जा सकते हैं । फिर कोई १२-२० दिन बाद किसी कार्य में लिए उसे

१३०) रुपये दिये। वह लेकर गया और जाम तक नहीं बीया। जब देर हो गई तो माया छनका। बाधिर वहां गया? पुण्याप की जा रही थी कि उसी मौक़र का संदिग्ध पुनित स्वेघन से घाया कि पुनित ने कुमारियों पर छापा मारा था और प्रथम कुमारियों के साथ उसे भी पकड़ ले गई थी। सकसेना जी को सब विश्वास हुआ कि वास्तव में वह कुमारी ही था और जब उसने पहले भी बुझा देता होगा। दो दिन बाद जब वह पुनित से दूर कर सकसेना जी के पास आया तो बहुत भुसा और व्यासा था। उसने अपने सारे कुर्मी को बचोकार कर लिया। सब क्या किया जाय? सकसेना जी ने कहा “सब तुम्हें हम मौक़र नहीं रखेंगे।” वह बोला “सब हम कहां जाय? घुबे हैं। कौन हमें मौक़र रखेगा?” सकसेना जी का मानना उरा और कहने लगा, “वह व्यक्ति कठोरनाक है। इसे निकाल बीजिए। रात्रि में न जाने क्या कर गुजरे। वह उसे छहराने के पक्ष में न था। सकसेना जी ने कहा “धम्मरा, छहर जाओ।” इस प्रकार वह दो तीन दिन और रहा। और जाते समय एक बूकानवार से सकसेना जी के नाम से एक मन चीनी ले गया। वह तो उसे बेच कर खाना ही गया। बूकानवार आया और उसने चीनी के नाम बोले। वे अस्मित हो गये। इसली क्या इतना बौका। यह दो बागों पर चलने वाला जानवर कैसा बौकाबाज ही सकता है। उन्होंने बूकानवार को आश्वासन दिया और उस व्यक्ति की तलाश चारन की। एक दिन यकामक वही मौक़र आया और मेज पर २००) ५० रख कर कहा, “वह तीजिए आपके रुपये। पहले और बाद के, इस रुपये व्याज के।” सब अस्मित थे। हैरान थे। सकसेना जी बोले, “तुम्हारे व्याज के रुपये हम नहीं लेते। लेकिन पहले यह बताओ कि ये सब रुपये तुम कहां से लाये हो? उसने कहा “हम घर से आकर रुपये लाये हैं। हमने आपका विश्वास ली लिया था। उसी का मुस्य दे रहे हैं। आपके यहां ही मौक़री करना चाहते हैं। उन्होंने कहा, “तुम हमारे नाम से उधार चीनी ले गए?” उसने बूकानवार के रुपये भी बुकाये। इनके बाद भी वह निरन्तर मौक़री का प्रयत्न करता रहा। जब उसके घर से जाए हुए कारे रुपये सखा हो गए, तो फिर एक दिन आया और मौक़र रखन के लिए आग्रह किया। न रुपये पर कुपचाप सकसेना जी के कमरे से उनकी छड़ी उठा ले गया। इस समय वह व्यक्ति कैम में है। लेकिन कभी उन्होंने उससे कृपा न की। वे मनुष्यों की सद्गुणियों पर विश्वास करते हैं। वृष्टि से वृष्टि व्यक्ति में भी ईश्वरत्व है। उसकी अग्रदाइयों पर उनका पूर्ण विश्वास रहता है।

उनके सामाजिक एकात्मियों में प्रायः दो प्रकार के पात्र पाये हैं (१) बाहर से श्राव्य और सम्य पर शम्बर से कोलमे रहने वाले बंभी बोखेबाब (२) बाहर के कराम श्रुति परित्यक्त पर शम्बर से प्रख्याद्यों भारत करनेवाले समाज के व्यक्ति, जो परिस्थितियों की शक्ति से बहुत पक्ष का अनुसरण कर रहे हैं। इसमें उनका दोष नहीं दोष उस समाज तथा उस परिस्थितियों का है, जो उनकी प्रख्याद्यों को पनपने और निकलित होने का अवसर नहीं देते। उन्होंने अपने पात्रों के अन्त-स्वयं की छूने और अपने सामने उजागर करने का प्रयत्न किया है। इनमें उनका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण भी पाया जाता है।

‘विजया और बाकली’ संघर्ष के प्यारह सामाजिक एकात्मियों में ऐसे पात्रों का विश्लेषण है, जो समाज में ऊँचा और मान्य स्थान पाये हुए हैं, किन्तु जो वस्तुतः समाज के लिए घनिष्ठता हैं। ‘मनेरिया संवादक’ एकात्मिक के भाव्य ने यह चेहरा मचा रखा है कि वे प्रत्येक कार्यकर्ता हैं। जैसे अन्तर्गत की सेवा ही करते हैं पर वस्तुतः वे स्वार्थ साधन ही करते हैं। मनेरिया कीड़ों से उन्हें कोई सहानुभूति नहीं है। उनके नाम पर वे लूब स्वयं सुटते हैं उनके लिए घाई हुई बचावें हड़प कर जाते हैं उनके लिए घाई हुई सहायता अपने निजी काम में लया लेते हैं। इसी प्रकार ‘एक हजार का संवाद’ एकात्मिक में एक पत्रकार अस्थाना है। वे संवाद इकट्ठा करते हैं और यह देखते हैं कि इन सबकों की कौन सी कीमत बटाई जा सकती है। सुराणा नामक एक सेठ उनको रैलगाड़ी में मिलते हैं जो अश्रुत का काम करते हैं। गंगा, मुक्तान लेवी केवी विस्वी बाजार, सेठ मन्नी यही उनका संसार है। सेठ सुराणा ने अश्रुतातीत वर्ष की यात्रा में एक अस्पृश्यका कन्या से विवाह किया है। तीन वर्ष पूर्व उनकी पत्नी का वैवाह्य हो गया था। जब उन्हें यह पुरानी मिली तो उन्होंने उससे विवाह कर जता। अस्पृश्य का एक छोटी की विवशता। रैल में लफ्फ करते करते यह सब कुछ सेठ सुराणा पत्रकार अस्थाना से कह जाते हैं। सुराणा अपनी नई पत्नी के साथ बिचा हुआ कोटी विवशता है। अस्थाना बस लड़की को पहचान लेते हैं। वह किसका मेहतर की लड़की की जो तीन वर्ष से गुम थी। सेठ सुराणा ने महिला आश्रम में सादी की थी। इस अस्थाना की बचाने के लिए पत्रकार अस्थाना उनसे २५) व चाहते हैं। इसी बीच राधा लल्लो बाड़ी ने अश्रुतकर कुछ पड़ती है। बाड़ी एक जाती है। विवशों में इसका होता है। कोई बट गया रे, कोई मर गया रे।” बाड़ी ठहर कर अन्धो बड़ती है। अब

अस्पृश्या बहनामी को बचाने के लिए छाई सी से कम नहीं सेना चाहते। गुराणा उर खाता है। पाड़ी ठहर जाती है। धीरे धीरे बढ़ जाता है। हृष्या के पुर्म से दरा कर अस्पृश्या सेठ गुराणा से एक हजार रुपये बहुत कर लेते हैं।

हमारे सामाजिक जीवन में इस प्रकार का दुरिष्ठ व्यापार करनेवाले खिलाडी जेहुरों की कमी नहीं है। समाज में भ्रष्टाचार, मिथ्याचार बोलबाली करने वाले ऐसे व्यक्ति बहुत मिलते हैं। नाटककार भी संशुद्धयान सकसेना ने ऐसी सामाजिक दुर्बलताओं सामाजिक बिडूषताओं और बोलबालियों का अच्छा नमूना फोड़ दिया है। कहीं कहीं ऐसे भी व्यक्ति मिलते हैं जो अपने गरीब भातहत्तों कलकों, कपरासियों या कलवारों तक का रुपया न चुका कर उन्हें बोलका बैकर या पनपड़त वालें बनाकर ठगते हैं। सकसेना जी ने "विजया और बाकली" में "लोक सचक" पत्र के सम्पादक शर्मा जी के रूप में एक ऐसे ही निहित बोलबाल का ध्वंश बित्र प्रस्तुत किया है। इसमें पत्रकार बन्धु में पाई जाने वाली अनेक निर्बलताओं का ध्वंशपूर्ण बित्र खींचा गया है।

इस प्रकार सम्यना और शिक्षा का ऊपरी धाना पहिने हुए हमारे समाज में जो शिष्ट व्यक्ति अपनी बाहरी छान बनावे छिपे हैं, उनकी वास्तविकता सकसेना जी ने प्रकट की है। उनके एकानियों में छान की बाहरी और सम्य बिम्बगी की लकवाई पाई जाती है। सामाजिक जीवन के बाह्याङ्गमर मध्यमर्च के बबालिक जीवन प्राबिक और सार्वजनिक समस्याओं इच्छाओं, धाकासाओं कु ठाओं बिडम्बनाओं और पिड्डितियों को उन्होंने सबके सामने प्रकट कर दिया है कि हम इस दनाबटीपन से मुक्त हों और जीवन की सत्यता मारण करें। जिन्हें हम छुल से सामाजिक जीवन का देखता समझ बैठे हैं उनकी असलियत समझें और बरखें या जिन्हें हम दुरा करतें हैं उनके देखत को पहिचानें। जीवन संतान है जीवन देखना है जीवन टप है जीवन सज्जन है, यह जाने। हमारे सामाजिक जीवन में कहीं जूटियां या गई हैं समाज की मैथिली में जीवनता पुर्मी घिसकर प्यराब हो गया है जिसको बचन डालना चाहिए, यह सकसेना जी ने अपने नाटकों में दिखा दिया है।

### सकसेना जी के सामाजिक आदर्श

अन उल्ला है भी संशुद्धयान सकसेना के सामाजिक आदर्श क्या हैं ? ऊपर लिख

जराहूरतों को दिया गया है वे नकारात्मक (Negative) हैं क्योंकि वे उन व्यक्तियों के विरुद्ध हैं जिन्हें वे नापसन्द करते हैं। वह कौन से व्यक्ति हैं या कौन से घातक हैं जो उन्हें प्रिय हैं।

प्रथम बात तो यह है कि सामाजिक जीवन में छोटी-छोटी बातें सबसे अधिक नापसन्द हैं। यह छोटी-छोटी बातें किसी भी रूप में धीरे-धीरे बिलकुल व्यक्ति द्वारा किया जाय, उन्हें सह्य नहीं हैं। सोपित वर्ग के प्रति लम्बी सहानुभूति और जीवन-वर्ग के प्रति रोष सब सब लम्बे-लम्बे किया है। यह स्वर तकलेगा की की १९४० के सम्मेलन की अनेक कविताओं में भी सुझावित हुआ है। "सर्वहारा" जीवन एक कविता की निम्न पंक्तियों में हमें उनके सामाजिक नवनिर्माण सम्बन्धी विचार और हृदयकी-मिलता है —

“तो, उठो सर्वहारा अरोप  
 माँकी मजदूर का है विहास  
 है कड़ी प्रतीक्षा का अनास;  
 आभी, ग़ाबो सब क्षति-गल।  
 वह धई, कहां मिलिब रोष ?  
 रह गया एक मानव समाज।  
 बलुन-बल मे गुने देश  
 सब एक प्राण बा रहे आन।  
 हम एक हमारा एक करें—  
 भीक्षित मानवता का विकास।  
 हम एक, हमारा एक करें—  
 अमानवता का विनाश।  
 तो उठो सर्वहारा अरोप  
 हावों में ले लो सब मुनास।  
 गहरा बंधना लो उठो जो न  
 पूँजी-मानव का फिर विहास।  
 लो मिलो सर्वहारा अरोप

हम एक ध्येय, हम एक पाति ।  
 नर कौन, कौन सारी अमान  
 अमिको-कृपको की एक पाति ।  
 हम स्पष्टि-स्पष्टि मिल एक राष्ट्र,  
 यह धर्म जहाँ प्राचीन आज ।  
 है प्रत्येक कुलीनों का न स्वयं,  
 आनन्द म पतितों का समाज ।  
 मिट्टी में निर्मित रुच नीन  
 अमरीका गली ग्रीन फ्रेंच ।  
 बिकरा पग पग बल बल समान  
 है मानवता का हाक मोच ।  
 जो, मित्रो सबदारा अशेष  
 बाँहों में बाँहें बाल बाल ।  
 अब बल बग पुष्ट नौम  
 बाल्य-देव जब हट कराए ।”

छापरल का जाहे कोई भी बप क्यों न हो वे जससे बड़ा करते हैं । अतः जहाँ  
 तत्त्विक सामाजिक जीवन में बाह्य भी किसी प्रकार का सीपल देखा जाय तब  
 तब और आन्तरिक सङ्गठन पाई, जसे निर्जीवना से उद्धार कर दिया । जससे जसपास  
 नृमानियों और नातकों में अनेक पात्र हमारे सामने से गुजरते हैं, कुछ सगल कुछ  
 जल । सगल कित्त तरह से दुर्बल का सीपल करते हैं यह कई स्थानों में जहाँने प्रक  
 किया है ।

### भारतीय संस्कृति के प्रति धृष्टा

अतीत भारतीय संस्कृति में सचनेना भी भी अत्यन्त धृष्टा है । वे जानते हैं कि  
 संस्कृति का निर्माण पुर्व एतिहासिक काम से लेकर अब तक के विभिन्न व्यक्तियों  
 दिया है वे सभी हमारे लिए धारण हैं और अनुकरणीय भी हैं । सभ्यता के प्रगोपन का  
 जो इतिहास है वह वास्तव में बाहुओं की अविनीत भाषा का इतिहास है  
 जिसमें उनकी विजय के मोत और उनकी हिला का व्यापार वर्तित है । जसमें न जन

के पुनीत प्रांसुओं का इतिहास है, न जनपदों की समकक्ष प्राप्ति का प्रतीक है। इस विप्लव इतिहास ने घर घर में धीकारें छटा दी हैं। आदमी को आदमी से आति को आति से, मस को बंस से, राह को राह से, हृदय को हृदय से पुनः कर दिया है। इसकी अपेक्षा ऊँह जनता और गरीब कमियों से पूरी सहानुभूति है। यह सून और पत्तीने हैं। जनता के सर्वार्थ का इतिहास लिखना प्रसन्न करते हैं। इतिहास ऐसा ही बित्तमें जनता के जीवन संघर्ष तथा उसकी निजी वैयक्तिक समस्याओं का व्यापार अतिवृत्तियों का चित्रण हो। "इतिहास नामक कविता की निम्न पंक्तियों में उनकी यह विचारधारा इस प्रकार स्पष्ट हुई है :—

‘फाक कैंको इतिहास ।

हमें तुमसे, तुमको हमसे करता वो दूर

दे रहा बगबाद को जन्म,

मुदी के साथ,

न जिसके पास मिलान उन्हेय

न जिसके साथ में सद्भाव

पूठ ही जिसका मोहन मन्त्र

विभावन प्राण ।

यह राष्ट्र-आति ठगान

आज किसका कतूबे ?

क्या जगो नहीं इसमें अबु व कर प्राण ?

मित्र नहीं गये क्या कीर्तों से विस्फर

बिनकर मानव-समूह अन्धकार ?

आह भी जिसके मुख से बड़ी नहीं

, किन्तु कहाँ वे आज, कहाँ उनके स्मारक ?

वे गात्र कुतूब वे तुर्ग, मकन, आलेख

कहा किसके धर्म से निर्मित ?

कहा है वह इतिहास ?

गुण गुण के लोक जीवन का अभुषण

विभित करदे यथार्थ ।

भो-बी-बगी हो म जहाँ

बर्थो-राष्ट्र हो म जहाँ

अनता अनार्दस हो,

कृपक, भूमिक, सैठ कारीगर हो समस्त ।'

प्राचीन भारतीय संस्कृति के प्रति उनकी अछा तथा आबधों के प्रति प्रेम स्नान स्नान पर प्रकट हुए हैं। उनका आबे से अधिक नाटक-साहित्य इसी विषय पर है। 'मन्वन्तर' शीर्षक इस कविता की कुछ पंक्तियों में उनका भारतीय संस्कृति प्रेम स्पष्ट रूप से प्रकट हुआ है। कुछ पंक्तियों को उद्धृत करने का सोच हम संवरत नहीं कर सकते —

✓ "अपने मन्वन्तर में हमने अपनी संस्कृति को प्राण दिया।

श्रुक्, नाम यजुष की बाणी सं

स्मृति ह्यन बीचापाणि इ से

गौरी सोमा कस्याणी से

देवादिदेव के चरणों में तो पहला अणु प्रदान किया।

अपने मन्वन्तर में हमने अपनी संस्कृति का प्राण दिया।

त्रिष्टुप गावरी गायाए

मय नभ छन्दों की मायाए,

संहिता और वे शान्ताए,

रचकर प्रभु अर्चना का मधुपक्षि नया निर्माण।

अपने मन्वन्तर में हमने अपनी संस्कृति का प्राण दिया

प्राचीन संस्कृति के प्रति उनका अधिक आस्था होते हुए भी हर एक पुरानी वस्तु के प्रति उनमें अन्ध विश्वास या अन्ध-भ्रम नहीं है। प्राचीन के मोह में अर्वाचीन का, अथवा पुरातन की धुन में मूलतः का आकारण विरस्तार करना सचसेना को भी नहीं सीखा है। कीटिमाल विगत के साथ-ही-साथ उबीयमान धामत का भी ममन करने में उन्होंने सदा धुन का अनुभव किया है। पुरानी प्रथास्त परम्पराओं को अनुष्ण रखते हुए भी उन्होंने समय समय पर नवीन प्रवृत्तियों और विचारधाराओं का स्वागत किया है। "पुराकास" शीर्षक कविता में आपने यह विप्राया है कि जिस प्राचीन बात के प्रति हमारा बहुत मोह है उसमें भी सब कुछ अचढ़ा ही अचढ़ा था। उसमें भी अनेक



पुराणों की जो समान रूप से निरीहों को सताती रही हैं। इस कविता में व्यक्त कास की विद्रूपताओं के अनेक बिज हैं। देखिए—

“कर मुक्त शताब्दों के गवाह  
कवि देख रहा वह यमकुंड  
अपनी मीथवाता से अशाम  
जो इस दुष्सा न्या बह मुक्त  
वह पुराणाल का क्रूर काल  
से होतागच्छ से रक्तमिथु  
न्या गया उन्हें ही यमकुंड  
हो गये प्रास से मोक्ष हस्त ।  
शपथ होती थी काल काल  
से बिह्व जैसे महाकाल  
साही भी उनकी नहीं प्राय  
प्रमुखा-महत्त्व का क्या सवाल ।  
कर मुक्त शताब्दों के गवाह  
कवि उस निरीह पशु के समीप  
आना से से दो चार किन्तु  
है बगा रहा कुछ स्नेह दीप ।

व्यक्ति विरोधाभासों से निर्मित है। संस्कारों से निर्मित मानव का जीवन भी उसके विरोधासों पर ही अर्पित होता है। मनुष्य कष्टों को भी मानता है, उनकी भी घिरोभार्य करता है और शान्ति शान्ति के सामने भी अपना सिर झुकता है। उसे आदर्शों से भी प्रेम है वह हार्थों से प्रतिमा को बनाता है और फिर उसी के सामने अपनी बम्बला के फूल बड़ाता है। जीवन में ऐसे विरोधाभास (Contradictions) चलते ही रहते हैं। ऐसे अनेक पात्रों का बिजल उनके दुर्कावियों में पाया जाता है।

### सकसेना की राजनैतिक माय्यताएँ

प्राक्कल के राजनैतिक जीवन के विषय में उनकी भारलार्थ धन्दी नहीं है। जो प्रसन्न कार्य जो जन संहार जो विवाद या झूटनीति प्राक्कल काम में ली जा रही है, वे

जैसे मानव के लिए बड़ी हानिकार समझते हैं। राष्ट्र संघ का ग्याय और कानून की बारीकियाँ केवल विकाने माना के लिए ही हैं। उनमें तथ्य कुछ भी नहीं है। "जहाँ न ग्याय राजरि माना" नामक एकाकी में पात्रिया मोहारों के पुरजा भीजी भी के मुह ॥ जो बाक्य प्रनायास ही निकले है, वे लाइयकार के मस्तक्य की प्रगट करते हैं :-

"भीजी भी : छि: छि: आज की राजनीति ! छि: छि: आज की कूटनीतिक माया । क्या सचमुच सच्य युग में ये सारी बिजबनार्द चल रही हैं -- आज अपने मोहों के इस प्रत्याचार का समर्पण करते हैं ।"

जो सबल है उसका प्रत्याचार भी हमें कर्तव्य के रूप में गले के नीचे उतारने के लिए कहा जाता है। विश्व की राजनीति में आज यम बग पर यह सत्य प्रत्येक व्यक्ति की अनुभव होता है। यह निर्णय करना ही साधारण आवभी के लिए कठिन हो गया है कि किसका विश्वास किया जाय। एक ही समय में हंगरी का बिरोह बचाये जाने के लिए दो राष्ट्र की बोलियाँ धुन पड़ती हैं और दोनों ही अपने को उस देश और जनता का क़द्धारकर्ता बतलाती हैं। इस प्रकार प्रत्येक भ्रमना पर विश्व में ही इस अपने छाप बन जाते हैं, जो एक दूसरे के बिरोधी हैं और बिरोध से ही समस्याओं का निर्णय करना चाहते हैं। "जहाँ न ग्याये राजरि माना" नामक एकाकी का निम्न अंग्र विचारणीय है :-

'भीजी भी : तो हंगरी का जन सहार रोका नहीं जा सकेगा ? राष्ट्र-संघ कुछ नहीं कर सकेगा ?

जाहू भी : जब तक राष्ट्र संघ ग्याय और कानून की बारीकियों पर बिबार करता रहेगा, तब तक कस बेघ-मछों को कुचल डालेगा ।

धकडर : जतने नायो सरकार के लक्ष्यों को जम्मी बना लिया है। साम्यवादी क़द्धार की जो विघने दिनों बरब्भुत कर दिया जा पराकड़ कर दिया है। कसी के नाम पर ध्वस्त-कार्य चल रहा है।

जाहू भी : सभी ऐतान किया जा रहा है कि कसी हंगरी की जनता के बुलाने पर ही पाये हैं। प्रतिक्रियावादी एहारों से मुक्त कराती ही उनका काम समाप्त हो जायगा ।

धकडर : हाँ हाँ यही तो यही तो ।

राणा भी : मतलब यह है कि क़द्धार ही हंगरी की जनता है क़द्धार ही हंगरी को

सरकार है ? कत बेचारा तो निमग्नित अस्थिति है ?

मीचो जी : दि. दि. आज की राजनीति । दि. दि. आज की दृष्टान्तीय भाषा ।  
यदा सबमुक्त सम्प्रभुय में ये सारी निबन्धनार्थ चल रही हैं ?

( कस के बाहर हस्ता पुस्तक होता है । राजनाम पर स्त्री  
बच्चों, कुर्तों और कबानों की भीड़ घांटी दिखाई देती है । )

राजनाम जी : हैं यह क्या ?

मीचो जी : कुछ नहीं, कुछ नहीं । कसियों ने इन गहनों से हुंनरी की कनता को  
मुक्त किया है ।

मीचो जी : घरे, ये कोमल स्त्रियां घोर कुतूहल कन्धे भी पृथार हैं, बैरा-प्रोही  
हैं । इनके पुत्र से कुछ भी घबरी नहीं होता है ।

अन्तर : ऐसा मत कहिये ऐसा मत कहिये । नहीं तो कभी यहां भी घा  
बायेंगे । हम विप्लवों के लोक में भी कायरों स्तानि अघनी  
तानाशाही शुरू कर देंगे ।

कांग्रेस की विचारधारा और कार्य पद्धति पर सत्तेना जी को पूर्ण आस्था है ।  
वे स्वयं कांग्रेस के मेम्बर रहे हैं । १९२० से वे कांग्रेस प्रांतीयस्तन में सक्रिय कार्य कर रहे  
हैं । सन् १९२२-२३ से इलाहाबाद में कांग्रेस की कार्य पद्धति के अनुकूल कार्य कर रहे  
हैं । सन् १९३० में राजस्वाम में लीकानेर आकर भी अपने कांग्रेस विचारधारा को  
बनाये रखा । अपने साप्ताहिक पत्र 'तेजानी' में कांग्रेस की विचारधारा का स्पष्ट  
समर्थन ही किया है लेकिन कम्युनिज्म और सीप्रसिज्म के मुल सिद्धान्तों पर भी कभी  
आस्था है ।

कांग्रेस ने जब तक समाजवादी दृष्टिकोण नहीं अपनाया था, तब भी उनका  
विचार यह था कि कांग्रेस का मतलब इसी में है कि वह समाजवादी विचारधारा को  
अपना ले घोर देश में उसे कार्यान्वित करे किन्तु कम्युनिस्ट कार्य-प्रणाली और उनकी  
भाषा, तीर तरिका से आरंभ से ही विरोध रहा है । कांग्रेसियों में प्रविष्ट भ्रष्टियों का  
सत्तेना जी ने कभी समर्थन नहीं किया है ।

उदाहरण के लिए जबका "यमराज भारती" नामक एकान्ती लीब्ररी ।  
इसमें कहीं 'यमराज' के सम्पादक "भारती जी" और जिला कांग्रेस अध्यक्ष "जिंदगी जी"  
के चरित्रों पर धर्मघातक प्रकाश डाला है । भारती जी तथा जिंदगी जी की निम्न

बलवीर बेकिंग कितनी व्यंग्यपूर्ण है तथा वर्तमान राजनैतिक पार्टियों की बेसी छीसासेबर करती है —

“भारती जी : साम्यवादियों से साठ-गाँठ की बात इसी बस-बूते पर कर रहे थे ? मुफ्तखोर धूर्त, बेईमान ! इन सफेदपोश भईमानों ने घँसकर कांग्रेस की बबला तालाब बना दिया है ।

कुमुद जी : ( चौक कर ) किससे नाराज हो रहे हो भारती जी ?

भारती जी : यही जो “ममभूत” खरोखने धाये थे ।

कुमुद जी : पूरा बाम नहीं थे रहे हैं ?

भारती जी : बैसे पूरा बैसे । विधान सभा की कुर्तों का मोह छाटा प्रसोमन नहीं है । फिर कार्यकर्त्ताओं में असंतोष बढ़ रहा है । ग्रामीणों में भ्रम सुलभ रही है ।

कुमुद जी : भला क्यों ?

भारती जी : धान विकास की बड़ी बड़ी रकमें ऊपर ही ऊपर हड़प गये हैं । काम का नामोलिखान नहीं । बाँट कर खाया नहीं जानते । सब अकलें ही पेट में धूँसे जा रहे हैं ।

कुमुद जी : तो ममभूत को डैले क्यों नहीं ?

भारती जी : समय आने पर बैसे ।

कुमुद जी : समय कब आयेगा ?

भारती जी : समय आने से पहले ही काबू में आजायेंगे ।

कुमुद जी : धीरे काबू में धाये कि सात जून माफ !

भारती जी : हर नेता आज अपने पीछे एक बखबार लेकर बसना चाहता है, धीरे समझता है कि उसकी आड़ में उसका कारबार चलता रहेगा । उसे यह पता नहीं “हिज मास्टर्स वायस” बासे पत्र की जनता में कोई पूछ नहीं होती । उसमें धाये तथ्यों को लोग झूठा बखबार समझते हैं -- ---- समयत समय-सोतीं बर दिन सोयीं ने कब्जा कर लिया है वे निष्पक्ष पत्रों को धूर्तों मरने पर बिबाद कर डैले हैं । जनता में न जागृति है न पत्रों की भूत ।

कुमुद जी : हाँ, बात तो ठीक है । विज्ञापन इन लोगों के हाथ में, पैसा इनके

कमरे में नेतृत्व इनके अधिकार में कैसे कोई इनसे पैसा चाये ?

भारती जी : छात्रा की कसियों पर भी ये बीरे बीरे जमे जा रहे हैं ।

कृमुद जी : जब लखरे को सोय अनुमति नहीं करते ?

भारती जी : लोगों की अलमियत का पता ही नहीं चलता । जहर पहल बहनकर ये शेष भक्तों में शामिल हो गए हैं । सरकारी अनुदान और छात्रवृत्ति की बड़ी बड़ी राशियाँ इनके ही हाथों से खर्च होती हैं । इनके ही ग्रुप सब जगह जाये हैं । इनके अकादमियों में बुझाचार प्रचार चलता है । इन्होंने अनेक प्रकार से अपना काम फैला रक्खा है । बर्म उत्कृष्टि, कला, साहित्य और समाज के नाम पर इनके कारबार की इमारत बड़ी है । पैसा कीम है जो इनसे थोड़ा नहीं जाता ? इनकी धर्म को उड़ान बम भी नहीं भ्रम कर सकते ।'



## दूसरा खण्ड

### सकसेना जी की भाटम-बत्सा

कथाबस्तु तथा उसका निर्माण

जी शंभुदयाल जी सकसेना के अधिकांश एकांकी विचार प्रधान हैं किसी मूल विचार, समस्या या घटना विशेष को आधार बना कर उसे स्पष्ट करने अथवा समस्या का हल प्रस्तुत करने के लिए ही वे अपने नाटकों के कथानकों का निर्माण करते हैं। मूल विचार या समस्या ही पहले उनके मन में अवित होती है। यह विचार तथा समस्याएँ या तो ध्यावहारिक जीवन से प्राप्त होती हैं, अथवा साहित्य से प्रेरित होती हैं। कभी कभी मौलिक उद्भावनाएँ भी होती हैं। जैसे “लाश का घर” एकांकी में महामारत में वंशित बालकों की विजय के उपरांत पाण्डव-माता कुन्ती का यह सोचना कि उसके यक्षस्त्री पुत्रों ने धर्म का उद्धार किया है। शासमुद्र बुद्धी के स्वामियों की माता को याद किसी भी बात की कमी नहीं है? उसके द्वारे पर आज उसका पराक्रमी बेटे परती से स्वयं तक स्वर्ण पथ तैयार करा सकते हैं। वह सबेह स्वर्ण जाना चाहती है। वह चाहती है कि उसके पुत्र मुचिन्दर धर्म का एक ऐसा सेतु तैयार करें जिससे उसका मान्य गुप्तकर हो। यह विचार मनमें आते ही सहसा उसके सामने सत्या बाइमली की प्रिया या जाती है और वह उसे याद दिलाती है कि वह अमित न हो क्योंकि उस जैसे घरीब व्यक्तियों के रक्त पर ही उसके साम्राज्य की नींव पड़ी है। यह विचार सर्वथा नए और अनूतपूर्व हैं।

“मन्दराजी” एकांकी में सर्वत्र विचार तथा स्पष्टीकरण की मवीनता है। मन्दराजी मणोरा अपने घर में बँधी हुई है। दुःख के अनेकाने से पीड़ित घाम सर्वत्र व्यापी दुःखता में डूब गया है। विचारों में कोई मन्दराजी की कल्पना में तारे जीवन का हृदय तबीय हो उठता है और वह याद करती है कि किस प्रकार यमुना के तट पर देवकी कभी उसे मिली थी और अपने दुःख की कथा उसके घामे सुनाई थी। कथोपकथन में यह तारी बात प्रकट हो जाती है। उसे स्मरण हो उठता है कि उसने बड़ी सहानुभूति

पूर्वक यह बचन दिया था कि वह अपनी संतान को सड़क में जातकर उसके बच्चे की रक्षा करेगी जो कभी किसी माँ ने नहीं किया है। इस प्रकार एक नए रूप में आत्मनस का निर्माण किया गया है।

“अग्निप्रहृत” एकांकी के कथानक के शुरू में गंभीरता है। यह सर्वथा मौलिक है। योपा ( यशोवरा ) बुद्धदेव के संन्यास ग्रहण कर लेने के पश्चात् किस प्रकार जीवन व्यतीत करती है, और किस प्रकार उन्हीं की स्मृति में कोई रहती है, यह प्रकरण लेकर एकांकी प्रारम्भ होता है। एक राती सुने कम में बीपक बजाती है। फिर भी योपा का ध्यान कम नहीं होता। वह अन्धकार की ओर देखती रहती है। उसकी देखकर राती कहती है कि भगवान् कम स्वाभिनी की तपस्या पूर्ण करने। रातुन आकर माँ की अग्निप्रहृत स्नान के लिए रोहिली तट पर बसने को जो पूर्व आयोजित था कहता है, परन्तु गोपा के जीवन की आयोजना जो पूरी तरह क्षिप्त भिन्न हो चुकी है, उसे इस स्थिति में नहीं रहती कि वह किसी बात को याद रख सके। वह अब कुछ चुन जाती है। उसे दो केवल एक बात याद रहती है कि उसके जीवन में जो अग्निप्रहृत गया है, वह सायद जीवन में कभी छूटेगा नहीं। परन्तु उसे यह भी विश्वास है कि उसकी तपस्या कभी पूर्ण होगी। उसके जीवन का अग्निप्रहृत कभी हृदय और बुद्धदेव जो उसे स्थापन कर सार की सोच में निरस्त गए हैं, कभी उसके गहन धार्ये। रातुन के वह चुनने पर कि आखिर उसके पास ऐसी कौनसी वस्तु है जिसके लिए उन्हें धाना होना तो योपा कहती है कि तु, मेरा पुत्र, ही ऐसा कम है जिसके लिए उन्हें धाना होना ही पड़ना। इसमें योपा के मनःसंघर्ष तथा अस्तर्हण की गंभीरता है। उसी को स्पष्ट करने के लिए इस एकांकी की रचना हुई है।

पुराने रामायण काल के कथानकों में सब्र भावों या विचारों अथवा अन्तर्द्वारों की गंभीरता पाई जाती है। “पंचवटी” में राम के मन का अस्तर्हण ही प्रारम्भ से अन्त तक एक नए रूप में प्रस्तुत किया गया है। राम यज्ञ करने से पूर्व तीर्थयात्रा के लिए निकलते हैं और वे पंचवटी में जाते हैं। सब राम कहते हैं, “यही तो वह स्नान है, मेरे जीवन का तीर्थ। यज्ञ की बीसा लेने से पूर्व तीर्थ स्नान का कुछ बलिष्ठ का धार्ये। मैं समस्त तीर्थों का स्नान कर आया तो भी अन्तर की ज्वाला तो बेली ही जल रही है। रोष रोष हुआ था रहा है। अपने इस यात्रा तीर्थ में स्नान किये बिना उतते क्या कभी निस्तार हो सकता है। ( ऊपर ऊपर दृष्ट कर ) आह, यहाँ का वातावरण बीसा

सीतास है। भगता है बीसे कीई कपूर और बम्बल सिङ्गु रहा हो।”

उनके मन की ये भावनाएँ, यह पुष्प अमरहन्त आज तक किसी नाटककार ने नहीं देखा है न इस नए कल्प में चित्रित करने का ही प्रयत्न किया है। सक्सेना जी ने राम के चरित्र के एक सर्वथा नवीन पहलु पर प्रकाश डाला है। उनके चरित्र की उच्चता, भावन पवित्र प्रेम सीता जी के प्रति प्रयादु अनुराग अपने विभ्रम कल्प में एक नए ढंग से स्पष्ट हो गया है।

अंतर यही समझता है कि राम ने सीता को स्थाय किया, जब कि सच्चाई यह है कि राम ने अपने जीवन के सुख को अन्यास दे दिया। इसमें राम क हो कम व्यक्त किए गए हैं और उन्होंने अपने अंत की मर्मावा के लिए सीता का परिस्थान किया, परन्तु प्रती के कल्प में राम सीता को एक जल के लिए भी धुन नहीं सके हैं और इसीलिए समस्त सीतों में धूम कर भी अब तक वे पंचवटी की यात्रा नहीं कर सके तब तक वे अपने को अग्रान्त पाते हैं। उनका रोम रोम फुका जाता है। तात्पर्य यह है कि इसमें राम के कर्तव्य पर प्रेम की विजय चित्रित की गई है।

“सीते की मूर्ति नामक एकाकी में राम के चरित्र के मर्मावा पुरपोत्तम बप का चित्रण करते हुए बहु प्रशंसित किया है कि अन्त में वे अपने अंत हृदय को संश्लिष्ट कर देते हैं। प्रेम की महिमा को ही प्रमाण मानते हैं। जब बहिष्ठ जी राम से यश की मूर्ति के लिए दुबारा विवाह का प्रस्ताव रखते हैं तो वे मज्जते हैं कि “यद्यपि उनकी अर्द्धांगिनी सीता के सिवा वह स्थान कोई नहीं ग्रहण कर सकती। सीता क स्थान पर सीता की सीते की मूर्ति ही रखी जायगी। इसके लिए यदि आत्म भी बहसना पड़े तो राम उसके लिए मस्तुत हैं।

सक्सेना जी की कथावरण विविध विषयक है किन्तु फिर भी हम उन्हें चार भागों में विभाजित कर सकते हैं :—

१— पौराणिक कथानक :— बीसे रागायल और महाभारत की घृष्टमूर्ति पर एकाग्रियों की रचना। इसमें पंचवटी, सीते की मूर्ति, सत्य की शीघ्र दिग्गज तन्तु तपोवन पार्वतुरी, बत्कल भानुप्रभ, श्वयवर-यात्रा, सीताहरण पंचा पक्ष गीमा का कठार, शक्तिभारण, ग्रहरी, आतिथ्य हठ विद्या, जनपथ तापसी, आदेश साज का घर मगदनी विद्यापीठ।

२— ऐतिहासिक कथानक :— ये प्राय बीडकासीन भारत से लिए गए हैं। इस वर्ग



में उनके बुझवाली अभिकृपा शुभा की माँसे धार्यनार्ग, चन्द्रप्रहृष्ट, श्रीवरचारिणी धप-सम्पदा राधमयी साधनायम् ।

३— सामाजिक कथानक — इनमें समाज के सभी वर्गों का चित्रण है। बच्चों से लेकर युवकों तथा वृद्धों तक की विभिन्न सामाजिक स्तरों का चित्रण है। इनमें रेडक्रॉस, सहाचार, मिथ्या ईश्वर भूख आदि कुप्रथाएँ, कुछ बिरोधाधिकारों का दुरुपयोग, श्रीशेखारी कलाबलीयन आदि पर व्यंग्यात्मक रूप से प्रकाश डाला गया है। इस वर्ग में सकसेना जी के राखी समाई चित्रण और बास्ती, राज का कवि सुभास कुपटना मनेरिया सम्पादक एक हृषार का सम्पाद, धर्मा जी का व्यंग्यपूर्ण आदि सामाजिक चित्रण के कथानक रहे जा सकते हैं। नए एकांकियों में भानु जी हार माँ और मुक्ति का वर्णन आदि भी अनेक सामाजिक समस्याओं से सम्बन्धित हैं।

४— राजनैतिक कथानक — इस वर्ग में व्यंग्यमयी शैली में राजकल को राजनीति पर भीठी कुदकियाँ ली गई हैं। नारायणपेठा देवता और जानवर कहाँ न व्याप्य राजनीति भाषा समराज्य भारती बापुनेकहूँ भाष्यार्यों की नीति आदि।

एक मूल भाव लेकर उसे स्पष्ट करने के लिए परिस्थितियों का निर्माण करते हैं उसी के अनुकूल पात्रों का निर्माण करते हैं। पात्रों बढ़कर जन पात्रों का भी स्वतन्त्र व्यक्तित्व बन जाता है। इनकी चारित्रिक चिन्नेकताएँ भी पुनः पुनः मिल जाती हैं। कथावस्तु को मनोरंजन बनाने के लिए कुछ कल्पना का गुट भी दे देते हैं। कुछ घटनाएँ तो सत्य हैं; कुछ सत्य के आधार पर कल्पित हैं। सत्य और कल्पना के सम्मिश्रण से रोचकता उत्पन्न करने का प्रयास है।

५— बालोपयोगी कथानक :— इस वर्ग के एकांकियों में बालकों के चरित्रों का उत्थान और नीतिश्रुता नीरता भंगीनान देवमरिच, आदि का विकास करनेवाले कथानक रहे जा सकते हैं। शौराष्ट्रिक और ऐतिहासिक पुण्ड्रपुत्रि है। कुछ कल्पित घटनाओं पर भी हैं। इस वर्ग में सकसेना जी के “रतुबाँकुरा राजकुमार”; “राखी” “कृष्ण सुशमा” “याथा साम्या” “मुकुट”; “विजय” आदि रहे जा सकते हैं। इनका कथा नाग सरत और जलकी गति स्पष्ट है। उसमें किसी प्रकार की बदलिता नहीं है। सकसेना जी बालकों के मन से परिचित हैं। अतः वे ऐसे कथानक चुनते हैं जो बालक सहज ही में पकड़ लेते हैं तथा उनके द्वारा

उनका व्यावहारिक व्यवसाय उनके चरित्र का एक अंग बन जाता है। उनका उद्देश्य बच्चों का नैतिक और आर्थिक उन्नयन है।

पात्र — सकसेना जी की पात्र-सृष्टि बहुत पुरानी है। पौराणिक पात्र अधिकांशतः व्यक्तियों (Individuals) का प्रतिनिधित्व करते हैं। कछ तो ऐसे पात्र हैं जिनकी कल्पना पुराणों में जहाँ से ये लिए गए हैं, उसी प्रकार बलिष्ठ जैसा उन्हें सकसेना जी ने नाटकों में चित्रित किया है; परन्तु अधिकांश पात्र ऐसे हैं जिनके नाम तो पुराणों में हैं, परन्तु नाटकों में उनके चरित्र की सम्भावना मौलिक रूप से की गई है। जैसे “विद्या मोठ” में कच और देवयानी ‘सत्य की शोष’ में विरवामित्र सत्यकाय ‘लावण का घर’ में धाया पात्र सत्या व क्षुब्धी। तात्पर्य यह है कि इन एकत्रियों में इन पात्रों का जिस रूप में चित्रण है, वह सर्वथा नवीन और मौलिक है। उन्हें लेखक ने अपने हृदय से चित्रित किया है। ‘मन्दरानी’ में यशोदा का जीवन के सम्मुख में इस दृष्टिकोण से देखना कहीं भी चित्रित नहीं है। मन्दरानी के निम्न पात्र तथा उक्तियाँ सर्वथा मौलिक हैं इस रूप में कृष्ण को किसी भी विचारक ने नहीं देखा है —

मन्दरानी— “ऊँचो, मेरे बैठे ने मुझे कर्तव्य करने की सलाह दी है। मेरी मोह से यही धाँकी में उल्टे जाल की ज्योति बपाई है। जिसके ऊपर बुनिया के गुप्त गुप्त का भार है उसे मैं अपनी शीर्ष में छिया रखना चाहती थी। यह मेरा सम्पाय था वस्तु। मेरे कर्तव्य के दोनों ही रूप सत्य हैं। प्रेम के क्षेत्र में वह सम्मनन है जगुदानन्दन है, राविकारमण्डल है। कलम के क्षेत्र में भयमान् वासुदेव। परी धोर से देखनी से कहना कि वह अपने धन का पालन करे। प्रेम का प्रतीक मेरा जो कर्तव्य है उस पर अपना अधिकार न बताये। राजराजेश्वर कृष्ण को मैंने उसके लिए छोड़ दिया है।”

“पंचवटी” में केवल दो पात्र हैं, बासन्ती और राम। बासन्ती का नाम “उत्तर रामचरित” में सीता की लक्ष्मी के रूप में धाया है। बात इतना ही आधार “पंचवटी” को लिया गया है। शेष राम और बासन्ती का चरित्र चित्रण स्वयं लेखक की कल्पना से निर्मित है। राम के प्रेम और कलम का इन्द्र इतने सख्त नवीन है। पंचवटी की बासन्ती की अवस्थिति ने बहुत अधिक भाविक बना दिया है।

पौराणिक पात्रों को हम कई वर्षों में चित्रित कर सकते हैं —

धर्म संरक्षक के प्रतिष्ठापक महर्षियों व ऋषि पत्नियों का चित्रण, जैसे “सत्य की शोष” में विरवामित्र, धीरे ‘सोपान’ में अग्नि और जगुनुया व अग्न महर्षि;

“विद्यापीठ” में सुजाबाय, “सीने की मूर्ति” व ‘सिन्हा तन्तु’ एकांकियों में वसिष्ठ मुनि। ये ज्ञानवान् धर्मवीर, विन्तन प्रथम विचारों को अभिव्यक्त करने वाले हैं। ये विचारक सत्कामीन समस्याओं के विश्लेषण के द्वारा आशंकन की समस्याओं पर भी प्रकाश डालते हुए से प्रतीत होते हैं। जैसे ‘सत्य की शोष’ में विश्वामित्र के निम्न विचार आधुनिक सांस्कृतिक संघर्ष पर प्रकाश डालते हैं और आशंकन की समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करते हैं। रेजिष्ट्र—

**विश्वामित्र** : महर्षिओ जर्मों और संस्कृतियों के नाम पर जो महान् संघर्ष चल रहा है मानव-रक्त से निर्गत बरती सीधी जा रही है बसके लिए जीवन बोयी है ? यही आज सबसे अधिक विचारणीय है।

**सत्यकाम** : महामने, आपने जो प्रश्न रखा है उसका उत्तर देने का साहस इस महर्षि मण्डल में आवस्य ही कोई करे। जर्म और संस्कृति की छीमा बहुत आर्य जाति तक ही सीमित मानी जाती है वहाँ इसका क्या उत्तर हो सकता है ? हमारा जातिवाद, हमारा वर्णवाद हमारा वर्णवाद हमारा कुलीनतावाद इसका उत्तर देने से हमें रोकते हैं।

**विश्वामित्र** : सत्यकाम तुम्हारे हृदय की भाव को मैं जानता हूँ। इस लौटी की भाव में तुमने जिस सत्य का वर्णन कर पाया है वह सिर के पकाने पर भी नहीं होता। तुम धन्य हो।

**बुढ़ महर्षि** : वैदिकियों के उद्घाटा महर्षि विश्वामित्र हैं। सामने इस बुढ़ की जितने आशय को सत्य मानने में ही केश पकाये हैं जीवन जातिना ? इस समा के सबसे बड़ा अज्ञानकुलीन तपस्वी सत्यकाम जैसे तत्वदर्शी ही हो सकते हैं। मैं अधिक क्या कहूँ।

**विश्वामित्र** : आप सर्वाधिक पुराने हैं। आप ही वह भार्य बसाइये जिसे रक्तपात बके, विपाक बातावरण दूर ही भागव जाति पर भंडरानेवाले काते मेघ छंद आर्य। सबको रहने के लिए धर, पानि की रोटी, दरीर डकने को बरत और सोचने की स्वच्छ बातावरण की सुविधा हो। धर्मों की विजय और अनाथों की वासता से उत्पन्न समस्या का समाधान आज हमें दीजिये। आप अखिल मानव जाति के अद्वार का सहज उपाय सुझाइये।



- अमार्शन : ममबान् मुझे स्वीकार कीजिए ।
- बुद्धदेव : धर्ममार्ग के अनुयायी, तुम्हारा कल्याण हो । बड़ाभ्रातृ प्रशस्त हो ।
- अष्टिपत्नी : प्रभो हमारा पानी कौन मरेगा ? कठिन शीत में जल-स्पर्श सभी का काम है भी करते करते धाये हैं ।
- बुद्धदेव : मैं ध्यात्म-निर्भर बनो । अनुभूतों को मनुष्य की वास्तव से मुक्त होने दो ।
- अष्टिपत्नी : किन्तु सेवक सेवक की परम्परा तो अनादि से है ममबन् । उसे भ्रमकर देने से व्यवस्था बिगड़ जायगी । व्यवस्था का भंग क्या धर्मानुमोदित होगा ?
- बुद्धदेव : यह व्यवस्था भंग नहीं है देवी । बन्धन कभी व्यवस्था नहीं हो सकते । स्वेच्छा से व्यक्ति का निर्माण होने देने में ही कल्याण है ।
- अष्टिपत्नी : स्वेच्छा, कल्याण — कुछ समय में नहीं आता । अपने हाथों से पानी भरने का काम तो मैंने कभी नहीं किया है देव ।
- बुद्धदेव : इस मैं व्यवस्था के प्रयोग में स्वस्थ मानवता का विकास होगा । सेवक वास्तव के भार से हलके होकर अपने और सेव्य भ्रातृनिर्भरता की शोभा ग्रहण कर सकीय हों । पुत्रिका को मुक्त करके तुम बंधती हो इस दृष्टिकोण से धोपना बन्द कर दो । तुम्हारा कल्याण होगा । अपने पति की सहज अनुयायिनी बनो धुने ।
- अष्टिपत्नी : मैं दुर्बल नारी यह मानने में असमर्थ हूँ देव । मेरे कल्याण का बहुत बड़ा अथ पुत्रिकाओं की निरंतर परिचर्या पर ही अवलम्बित है पर मैं भयंकर अनुशोच कैसे सामान्य कहूँ ? मैं पुत्रिका को मुक्त करती हूँ ।
- इस प्रकार सामान्य पात्रों में भी अचर पर धौदिक चेतना का अद्भुत होना प्रकट किया गया है । उनमें भी मानव जीवन के अरुण उत्कर्ष की उपलब्धि दिखाई पड़ी है । सरकारण पात्र में भी महानता उच्चचिन्तन दूरदर्शिता और लग्नता निहित हो सकती है वह भी अपने अनुभव और अनुभूति के बल पर भीतर बाह्य सोच और कह सकती हैं । यह धौदिक चेतना सकेता भी के साधारण पात्र पात्रियों में पाई जाती है ।
- सामानिक एकाग्रियों के बाध हमारे दैनिक जीवन और समाज के ये जाने पहचाने व्यक्ति हैं भी अथ रूप में बुधु ही नीति अपनाये हुए हैं । समाज उन्हें बाहरी दृष्टि से

प्रतिष्ठा दिये हुए हैं। वे धिन्ध्र प्रसिद्ध हैं- मुख्य सम्पादक, संपादक, संपादक कार्य के मन्त्री, हाइप फो डरो के मासिक अनुवादक, एक बीजेयर, एक के मासिक मगर के नेता लोग, सम्प्रेतन के मन्त्री गुरु आदि हैं। राजनीति में इनका हाथ है, समाज में इनका आवाज है। लोग इन्हें अपना मानते हैं और बाहर से पर्याप्त आदर और सामाजिक प्रतिष्ठा भी देते हैं।

किन्तु नाटककार लक्ष्मीना जी ने इन सबों की सामाजिक प्रतिष्ठा का झूठा चेहरा हटा कर इनके सामाजिक स्वभाव को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। उनके अधिकांश सामाजिक एकांकी (जैसे मोरिया सम्पादक एक हजार का सम्पादक बिजया और बाबली दुर्वहता अस्वामयेला देवता और जानकर पर्याजी का घण्टा घिस कहीं न कहीं रहकर भयावह घण्टा घण्टी सुबह का आवाज का बरि) पात्र सामाजिक विद्रूप के एकांकी हैं। समाज के सामाजिक जीवन में हुए जिन व्यक्तियों को समाज की नाक मानते हैं वे इन एकांकियों के पात्रों में अपना प्रतिबिम्ब देख पायेंगे और देखेंगे कि नाटककार ने कितनी गहराई में उनके चरित्रों के गुप्त पहलुओं को उजागर कर दिया है।

लक्ष्मीना जी स्वयं कागजर सम्पादक और प्रेस के मासिक हैं। इस व्यापार में लगे हुए अनेक व्यक्तियों से आगूत निष्ठ परिचय है। इस क्षेत्र में होनेवाली विद्रूपताओं को अपने अपने कई एकांकियों में स्पष्ट किया है। दृष्ट और मोरियाज जो व्यक्ति दिक्कतों के सहारे लगे हुए उन्हें मिले हैं उन्हें उजाड़ (Expose) दिया है।

उदाहरण के लिए "नवयुग के सम्पादक मार्गक को जिनका घण्टा घिस 'मोरिया सम्पादक' नामक नाटक में जीता गया है ही निरीक्षित।

मार्गक मोरिया पीड़ितों के लिए उपाय और दया प्रार्थना कर रहे हैं। लेकिन उपायों की अपेक्षा दया उन्हें अधिक चाहिए। उपायों को ही सुनना देखने में कठिनाई आती है पर दया तो किसी न किसी प्रकार अपने काम में लगाया जा सकता है। वह अपने बर्तन बाहरी की मोहरी में हटा देना चाहता है लेकिन उपाय जितना साफ नहीं करना चाहता। बार नहीं ले उपाय देना पड़ा है। बाहरी देकरा अपना एक दिन का वेगट समुल कर लेता है। पूजा क्या करे? गंदे बैंगन मासिक हैं खेता ही मोहरी को बचना पड़ता है। वह दया लाकर ला जाता है हिमाय नहीं देना मनोघात समुल कर लेता है और रजिटर में उपाय नहीं करता। जब ऊपर ऊपर गया जाता है।

बिनों का पैरोका से घाता है। झूठी खबरें छाप कर पीसे बना सेता है। बाह्य प्रवेश करता है, वो मार्ग उससे भगकता है। इस पर बाह्य उसकी कतई चीतते गुण कह देता है :— “यहाँ बना करने के बाद फिर कुछ निकल नहीं सकता। तनकबाह छाप देना नहीं जानते, फिर हम क्यों किसे ?”

### कथोपकथन (Dialogues) —

सकसेना जी ने अपने नाट्यकौशल को सुन्दर और नर्मस्पर्शी संवादों द्वारा प्रकट किया है। ये दो प्रकार के हैं १— विचार प्रधान २— भाव प्रधान। दोनों में सरलता है और स्पष्टता का भी ध्यान रखा गया है। विचारप्रधान संवाद अपेक्षाकृत कम हैं और भाव प्रधान अधिक हैं। विचार प्रधान संवाद प्रायः तर्कसंचित हैं। स्वाभाविक हैं। यह मान्य नहीं होता कि बरजस इस हाँसकर एक दिव्य पक्ष हैं। इनमें नम्रकार सकसेना जी का बुद्धिकौशल और तर्क-सम्मतता प्रकट होती है। उदाहरण के लिए पर्युक्ती से इस छंदी का एक कथोपकथन नीचे —

**बुद्ध महर्षि**      शिव मंत्रों के उद्घाता नहीं विस्वामित्र के सामने इस बुद्ध को जिसने असत्य को सत्य मानने में ही क्या पलायन है, कीन जानीगा ? इस सभा के सम्मुख ब्रह्मा अज्ञात कौशल तपस्वी सत्यकाम जैसे तत्त्वदर्शी ही हो सकते हैं। अधिक मैं क्या कहूँ।

**विस्वामित्र**      महामात्र छाप बाकिष्ठी परम्परा के जनक हो। आप सर्वाधिक बुद्ध हो। आपको कीन नहीं जानता ? आप ही वह मार्ग अनाइये जिससे रक्षय्य के विपाक बातावरण दूर हो। मानव जाति पर मँडरानेवाले काले मेघ छँट जाय, सबकी रहने की घर आने की रोटी, शरीर डकने की वस्त्र और सीखने की स्वच्छ बातावरण की सुविधा हो। प्राणी की विजय और अनायी की शान्ति है अल्पकाल समस्या का समाधान आप हमें भीजिए। आप अद्विज मानव जाति के उद्धार का सहज उपाय सुझाइये, महापुने ।

**बुद्ध महर्षि**      जो सृष्टि की भी अभिप्रेत नहीं वह कुछ मुन्दते कराना चाहते हो ? वर्ण और वर्ग न कभी मिटे हैं न मिटेंगे। उसके लिए प्रयत्न करनेवाले स्वयं बिल जायेंगे। तुम्हारे आसनों की आयु से मेरे मुँह के ये शब्द

अधिक शीर्षवीची ही बिहवात रही। नहियीं धीर मनीषियों की इस  
तना में अब मेरा कोई काम नहीं है।

( साठी डेकते हुए धीमता से प्रस्थान। कुछ नहिये के पीछे धीर भी कितने ही  
नहिये नहिये छठ कर चले जाते हैं। )

भाव-प्रधान कथोपकथनों में पात्रों का मानसिक अन्तर्दृष्टि विभिन्न किया गया  
है। यह हमारे अन्तर्भूत को छूते हैं। नम्बरानी अन्तर्दृष्टि और पंचवटी दोनों एक-ही  
भाव प्रधान हैं। माता का हृदय अस्तित्व विधोय नृपार तथा मर्मस्पर्शी बेहना की  
मानसिक शक्ति का मिलावट है। पात्रों में एक काव्य जैसा आनन्द आता है। लेखक ने नारी  
और पुरुष दोनों के ही हृदयों का अन्तर्दृष्टि दिखाया है। पंचवटी में पुरुष तथा  
नम्बरानी में नारी के आत्मिक-स्नेह का मर्मस्पर्शी विभाज्य है।

सकसेना की मूलतः एक भावुक कवि है। नाटककार से भी पूर्व उनका कवि का  
रूप प्रकट हुआ था। और कव्य विधोय नृपार आदि रसी से श्रोतश्रोत अनेक सुन्दर  
कविताएं आपने हिन्दी साहित्य को प्रदान की हैं। अतः उनके नाटकों का साहित्यिक  
सौन्दर्य भाव प्रधान कथोपकथनों में विभेद रूप से पाया जाता है। नृपार रस के श्रोत  
श्रोत एक कथोपकथन सीमित कितना आवश्यक है —

धुमा : मेरे पक्ष को प्रकट कर रहने में कोई लाभ नहीं है युवक। किसी  
तरह के प्रतीकन मुझे मेरे मार्ग से विचलित नहीं कर सकती। इस  
अधीर के प्रत्येक क्षण से मैंने आत्मिक हटा भी है। मेरे लिए वे ठीकरे  
के समान हैं।

बेवदत : हो नहीं सकता। गोरी गोरी कमलनाम ली ॥ बाहें किसी विराघ के  
गले का हार बनने को आतुर न हों? हो नहीं सकता ये बर्णात्मवी  
रसमरे नयन एकान्त आदमी रातों में किसी के लिए बेधन  
न ही उठते हैं। है बह्मचारिणी, तुम कायाय बर्तों में अपने  
को कितना ही आनेच्छित करो परन्तु मन के भीतर सदा  
हिन्दी में निवास मनसिज को हृदय प्रदान नहीं कर सकती।  
इसलिए मैं कहता हूँ कि तुम नहीं करो जो सदा से प्रस्ताव करती आ  
रही हैं। ये तुम्हारे स्वर्ण-कला रेशम की जंजुकी में रहने लायक हैं। ये



तुम्हारे जगत गितम्ब फूलधम्या भर विषाम पाने योग्य हैं। ये कोमल कलावर्षा मरिचि बहित स्वर्ण-मंकरों की मङ्कार से कानों में रस बरसाने के लिए हैं। ये कोकनर से सुकुमार तुम्हारे पाँव देवरस की निरप बंदन के अधिकारी हैं। सुधीने जोसो क्या इसमें रसी भर भी भूठ है ? जो जमेसी के फूलों की यह माता बारस करो तुमपने और इस सहृदय में लिपटी हुई भावबीजता की तरह तुम मेरे सरीर से लिपट जाओ। विषोप की क्वाला में सब और अधिक न कनी सुनेंछलि ! मेरी शकुन्तले उरो नहीं। देवरस दुष्यन्त बंसा जेसी नहीं है। वह तुम्हें माँझों में द बज करके रखेगा।

शुभा                      बाणी से समझने योग्य दसा नहीं है तेरी।

वीर रस का एक उदाहरण 'सावना-वध' में से दिया जा सकता है। सावना-वध एक माकपुर्ण ऐतिहासिक नाटक है। इसमें वीरा की प्रति का उन्माद तो मुख्य रूप से है, लेकिन वीरा रूप से वीर रस भी छाया है। पानीपत का कुछ होने ॥ पूर्व रम्या छाँदा, उस युद्ध की कल्पना मन में करते हैं और इस प्रकार उसे अपने ज्ञान-नीचों के सम्मुख प्रत्यक्ष देखते हैं जैसे सब कुछ सामने हो। वह युद्ध के वीरों की बीसी कल्पना करते हैं, वह कुछ दिन उपरान्त उसी रूप में बहित होता है। लोरी हारता है बम्बर विजयी होता है :—

‘राजा                      मुझे बीज रहा है निकट भविष्य का वह उल्लसत जालीक। उसमें प्रतिबिम्बित है विजयी और काकुल का संघर्ष। क्षितना स्पष्ट है मेरा सोचा हुआ परिणाम। इतिहास जिते कम लिखेगा उसे मैं प्राब देख रहा हूँ।                      शबर मुस्तान सिन्धु के बाँझों की रसा करता, परन्तु वह क्यों करता ? भाग्य के साथ तो लिये जा चुके हैं। जितने उरजगत हैं वे लैज।’

‘शारदेय और “किन तन्तु” एकान्की कसल रस से घितायीत हैं। ‘शारदेय’ के कथानक का निर्माण राजा शारद के उस शारदेय पर हुआ है जो देकर जाहोंने मुनना की राम के लान मेजा है कि इनको मुनना की लीज करा कर कापस से भागा। और शारद राम बंसा कि उनका हृद निरधरी स्वभाव है अपने बचन से न छिरे तो उनसे कहना कि लीजा की तो लीजा ही है। इसमें निम्न स्थल आये हैं जो शारदस्वन की पू देते हैं —

सीता ( राम से साथ रहने की हठ पर ) मेरा आपके साथ रहना हठ है ? बाँदनी का बाँद के साथ रहना हठ है ? छाया का छाँरीर के साथ रहना हठ है ? सोरम का फूल के साथ रहना हठ है ? यह मैं क्या भुन रही हूँ आपके मुँह से ? संकट में बाँदनी क्या बाँद का साथ छोड़ देती है ? छाया क्या बुद्धि में छाँरीर से विलय हो जाती है ? भुरभि क्या सुकान में फूल का परित्याग कर उड़ जाती है ?

सीता ( सुमन्त के प्रति ) धर्म, धाय जैसे बड़ों के सामने मुझे बोलना बड़ रहा है । यह अनुचित है, बर क्या किया बाप । इस समय बुप रहने से काम नहीं चलता । धाय मेरे सात-सतुर के बरलों में मेरा बारम्बार प्रतिपन्न निवेदन करके इतना कहियेगा कि जगहूँने जो पिता मुझे दी थी उसे मैं भुनी नहीं हूँ । स्वामी की सेवा में जीवन का सर्वस्व समर्पित कर देने से बड़ कर मेरे लिए इस सवार में कोई प्रलोभन नहीं है । कोई भय, कोई संकट, कोई बाधा, कोई अनाय मुझे इनके बरलों से प्रलय नहीं कर सकता । मुझे विद्वान्त है मेरे साम सुतर मेरे इस बरत में किसी प्रकार की सक्रियता नहीं पावेंगे । धीरे धाय भी किसी तरह का विलय न जानेंगे । "

सुमन्त निस्तर हो जाते हैं । वे लाम्बी रब लेकर वापस जाते हैं । राम की धाँकों में धाँपू करी हैं । सीता प्रबल में मुँह दिया लेती है । नदयग धूम्य में साकने लगते हैं । धाँबे पोंछते हुए धीराम सुमन्त को सहारा देकर रब के लभीय ले जाते हैं । धीरे रब पर चढ़ते हैं, रातों हाथ में ले लेते हैं । धोड़े ध्यावा से हिनहिमाते हैं धीरे रब धरपरा कर चल चढ़ता है । सम्पूर्ण प्रकृति भी जैसे कचल हो रही होती है । हवा के बँदों के साथ बरो धीरे धुनि कर रब के बहियों से निपारते जाते जाते हैं । "

"दिग सन्तु" एकान्ती में वह भीना धूम भी अक्षित हो जाता है जो लेकर धब तक धरपरा अक्षित वे धीरे राजमहलों में छोड़ी बहुत आया थी । निम्न उद्धरण कँकपी के चरित्र को तो ऊँचा उड़ता ही है साथ ही कचल राम का छोत प्रभावित करता है । जो कँकपी राम के अनन्त के समय भी हड़ धीरे निपुन जाती रही थी वह धाम हबित होकर धूमि हो जाती है ।

महाराज रोते हैं। कैंकेयी घाती है भगिन बहन, सुन्दर ध्यान बिचारे बैठा, निष्काम व्योमिषि धिक्ता की तरह मुह पड़ाये लम्बे सामने खड़ी हो जाती है। कैंकेयी कहती है :—

“सुमन्त, सखि ! रघुवंश के महामंत्री ! मैं त्रिभुक्ति नारी जन्म या मोक्षमार्ग प्रदर्श कर सकती हूँ किन्तु आपके हाथों में तो राजवंश का हित सुरक्षित माना जाता है। प्राण हमारे राजकुमारों और पुत्रवधू को जन्म में कैसे छोड़ दायें ? क्या आपके इसी लिए भेजा गया था कि जाली रज लेकर लौट दायें ? यह काम तो राजमहल का एक सुन्दर सेवक ही कर सकता था ! बचपन के सखा होकर आपने अपने प्रिय मित्र के प्रति कर्तव्य का पालन नहीं किया है। कैंकेयी के दुर्भाग्य की याचिका निवास्ता के हाथों प्रारम्भ हुई थी। कुछ सुमन्त के हाथों प्राण बह पुरी हो गई। फिर अभिषेक भरण की आशा के अनुसार को दुनिया में कौन समझेगा ? उसका कौन अपना है दाह !”

( अपने दोनों हाथ भाँचे पर माँझी और मुद्रित होकर बिरती है। कौमल्या, सुमित्रा और परिचारिकाएँ चीकती हैं। )

कथोपकथन मिल मिल सम्पादित के हैं पर अधिकतर छोटे और स्वाभाविक ही हैं। कुछ एकांकी दो पात्रों की प्रारम्भिक चालों से प्रारम्भ होते हैं। यह वास्तविक एक एक राज्य या राज्य की लेकर बीरे बीरे बढ़ती जाती है। वास्तविक में पात्रों की वय, शिक्षा सामाजिक स्तर बुद्धि विकास, परिस्थिति इत्यादि के अनुसार स्वाभाविक और तर्क संपत्ति का विवेक ध्यान रखा जाता है। कुछ ऐसे संवाद भी हुए हैं, जिनमें एक पात्र का कथन प्रगल्भी वास्तविकता का प्रेरक बनता जाता है और इस प्रकार कथावस्तु की स्वाभाविक गति प्रदान करता है। प्लास स्वतः जुलता है। प्रत्यक्ष घाती जाती है। “भानु की हार” एकांकी का अंतिम नाम है, जिस प्रकार वरम-सीमा ( climax ) पर लाकर समाप्त किया गया है। भानु नाम अम्मापक की विद्याभिमो द्वारा दिया हुआ नाम है, जो बच्चों की उम्र के और से सुनारने के लिए विख्यात है, परन्तु प्रस्तुत एकांकी का चरित्र नायक बालक भानु अपनी इच्छा से उसके जन्म पर उसका ही प्रभाव डाल देता है और उसे यह स्वीकार करने के लिए बाध्य कर देता है। बालकों की ही प्रभाव नाम बना कर उन्हीं की वांछी में और उन्हीं के जीवन के इच्छों की पूर्ति करने वाले एकांकीयों की रचना का यह एक बड़ाहरण है —

“भानु : ( भानु से ) जानते हो ये कौन हैं ? ( भानु की ओर संकेत करता है। )

- मनु : जानता हूँ ( मकड़ कर बड़ा रहता है और एक सड़ती लुट्टि मानु पर बैठता है । )
- गुनु : क्या जानते हो ? तुम्हारे कपड़ों से सारा घर बुरेबान है ।
- मनु : मुझे इनके साथ जाना होगा, यही न ?
- गुनु : हाँ ।
- मनु : किसलिए ?
- गुनु : इनके अडे में बाबू है । संतान सड़कों को बहु पालतू बना देता है । तुम तीन महीने इनके घर रहोगे ।
- मनु : ( हड़ता के साथ ) ये तीन मछे जी मुझे रखना पसंद नहीं करेंगे ।
- गुनु : ( हाँ में कोड़ा कटकाटता है । )
- मनु : कोड़ा मेरा क्या कर सकता है ?
- गुनु : बहु खान जीव देता है ।
- मनु : मनुको तो नहीं जीव सकता । बेकार है ऐसा कोड़ा । मैं उससे नहीं डरता ।
- गुनु : तुम्हें इस कोड़े से डर नहीं लगता ? ( गुन कोड़ा कटकाटता है । )
- मनु : नहीं बिस्कुल नहीं ( पहले ला ही कम कर बड़ा रहता है )
- गुनु : लड़के इसके नाम से कांपते हैं । ( पंतरा बरसता है । )
- मनु : मुझे तो ये जिसीना सा लगता है । लाली, बेबू तो सही । ( हाथ बढ़ाता है । )
- गुनु : ली, बेबू । कोड़ी केर में इससे तुम्हारा बसा पड़ता है ।  
( कोड़ा हाथ में ले देता है । )
- मनु : ( कोड़ा हाथ में लेकर बोलता है ) बिस्कुल हस्का है ( मुझे डार की ओर लाटकर ) लीला, नीला, बीबी घायो बीबो, बेबो कसा हस्का है ।  
इसे कोड़ा कहते हैं । हा हा हा । कोड़ा, इसे हमने डार लख नरेंद्र ।  
( मरोड़ता है, भय और धक्कर से पीली पड़ी हुई लीला, नीला का प्रवेश )
- लीला : मेरे बोलें नय्या ।
- नीला : मेरे इयाय कहूँया ।

बनिमा मेरे छोटे--

( बाबी तुफान की तरह भड़कती हुई मंच पर आती है । )

बाबी क्या हुआमा क्या रखा है । छोड़ो मेरे बच्चे को । मेरे हास को । मैं उसे ले आती हूँ । कब-कब, जो इतने किछो ने हाथ लगाया । कोड़ा मैं चुम्बे मैं भोज्यती हूँ तुम्हारा । ( बम्बू के हाथ से कोड़ा छीन लेती है । )

बम्बू कोड़ा मुझे बीबिए । वह मेरा है ।

बाबी तुम्हारा है, तो वह तो ( तोड़ मरोड़ कर उसके ऊपर फेंक देती है । )

बम्बू मैं इसे मा क्या कर सकता हूँ । जब तुम सब इसको बिपाकुने पर ही तुली हो ।

[ निराश हो जाती है ]

बम्बू ( प्रतीत में जो जाता है ) ऐसा लड़का तो मैं भी होना चाहता हूँ । सबका लाइसा सबका प्यारा । छोह ! मनमौजी, जल्दाली वर स्वतन्त्र व्यक्तित्व वाला ।

सीता देखो बम्बू कितना बबल क्या है ।

नीता : देखो बम्बू कितना गुम्बर हो गया है ।

बनिमा और कसका कोड़ा कितना सुहावना लगता है ।

बम्बू : ( बाबी की ओर से )

नहीं पढ़ेंगे नहीं पढ़ेंगे ।

बैत-धारम हम नहीं पढ़ेंगे ।

हम बालक हैं, हम बग़र हैं ।

बाहर हैं, बितने अन्धर हैं ।

विद्यार्थी को सुधारने के स्वभाव वर स्वयं अध्यापक सुपर जाता है । उसे अपनी पुरानी बड़ प्रयोग वाली अध्यापन पद्धति के प्रति चला ही जाती है और वह बच्चों को शारीरिक बंड देना छोड़ देता है ।

माटकीय कीशस —

सकसेना को के एकाधिक्यों में माटकीय स्वभाव का चुनाव बड़े कीशल से किया जाता है । इसके लिए पुच्छभूमि के रूप में मातापरल का निर्माण करके माटकी की

क्यावस्तु को बीरे बीरे कलारमक रूप से घटाया जाता है। जब उस नाटकीय स्थल का चरम बिन्दु (climax) प्रकट हो जाता है तो घटना कम स्वभावतः दूसरी ओर झुकता है और उक्त नाटकीय स्थल पर्यंत बिखर की तरह पुनः दिखाई देता है। पाठक या दर्शक बिचलितचित्त या उसे पकड़ा या देखता है। पाठक या दर्शक के हृदय को अधिक न अधिक स्पर्श करने वाली घटना का समावेश करने के बाद कथानक को चरम बिन्दु के लिए मोड़ देते हैं। नाटक को जिसका छोटा कम बिधा है, उसमें उतना ही नाटकीय मौलान दिखाया है। "पलकुरी" भी पृष्ठों का छोटा सा रत्नाकी है, जिसमें कथानक बहुत छोटा है। इसमें राम और सीता से सम्बन्धित एक छोटी सी घटना है। इसमें राम सीता के वनवास के जीवन की एक भाँकी यात्रा है। भीराप दुष्यहाय बनाकर सीता का भ्रू पार कर ही रहे हैं कि इसने में सीता भी के पार्श्व में कीई चीज धाकर लकड़ी है जिससे सीता कुछ चीकती सी हैं। राय की पार्श्वें जल उठती हैं। यह अवस्था द्वारा बँका हुआ बाध है। यहाँ से एकाकी का घटना कम घुमता है। अवस्था पुनः की घोट से मानता है। राम प्रत्येक बढ़ाकर पीछे बीकते हैं। सीता राम की सीठाती हैं। राम फिर भी उसके पीछे चले जाते हैं। सीता कहती है 'रानी होना ही वाप है जिसके लिए संसार में प्रायः से अधिक कुछ लड़े जाते हैं। राम के बापों से वापस अवस्था फिर उसी स्थान पर प्रकटा है कि सीता से क्षमा मांगे। सीता वहाँ से राम के पीछे पीछे चली गई है। राम फिर धाकर अवस्था को पकड़ कर बन्ध देना चाहते हैं। सीता धा जाती है। अवस्था सीता की के चरलों पर मिरना चाहता है। सीता की के अनुमति पर राम अवस्था को छोड़ देते हैं। सरलप्रायस अवस्था को बुझी में स जाता है और सीता उसकी चिकित्सा का प्रयत्न करती है। इस छोटी सी घटना को इस रूप में प्रस्तुत किया गया है कि प्रस्तुत तक चलि गयी रहती है।

कुछ एकाकी ऐसे हैं जिनमें समस्याओं पर कुछ बिचार व्यक्त किए गए हैं और कोई संदेश दिया गया है। इनमें नाटकीय स्थल का समावेश बड़ी कुशलता से किया गया है और वह ध्यान रखा गया है कि कहीं नाटक शुष्क या घटना शुष्क न हो जाय या घटना कम में झुकता न जा जाय। उदाहरण के लिए 'साय की घोष' एक संक्षिप्त एकाकी है जिसमें सीता स्वयंवर की घटना का एक दृश्य दिखाया गया है। सीता स्वयंवर ॥ केरम इतना ही सम्बन्ध है कि सीता-स्वयंवर देखने के लिए राजा और राजकुमारों के समूह के साथ ज्वलि मुनियों का समुदाय भी इकट्ठा हुआ है। ज्वलि

बलिया

मेरे छोटे--

( बाबी तुफान की तरह जपटती हुई मंच पर आती है । )

बाबी

बया हुआमा बया रखा है । छोड़ो मेरे बच्चे को । मेरे साल को । मैं उसे ले जाती हूँ । जबरन, जो इसे किसी ने हाथ लगाया । कोड़ा मैं चूम्हे में भोंकती हूँ तुम्हारा । ( बम्बू के हाथ से कोड़ा छीन लेती है । )

बम्बू

कोड़ा मुझे बीजिए । वह मेरा है ।

बाबी

तुम्हारा है, तो यह जो ( तोड़ भरोड़ कर उसके ऊपर चोंक देती है । )

बम्बू

मैं इसे ला गया कर सकता हूँ । जब तुम सब इसकी बिपाड़ने पर ही तुली हो ।

[ निराश हो जाते हैं ]

बम्बू

( मंतीत में खो जाता है ) ऐसा सड़का तो मैं भी होना चाहता हूँ । सड़का लाड़ला सड़का प्यारा । ओह ! मनमोही, उत्पासी पर स्वतन्त्र व्यक्ति बनना ।

नीला

: देखो बम्बू कितना बदल गया है ।

नीला

: देखो बम्बू कितना सुन्दर हो गया है ।

बलिया

: और उसका कोड़ा कितना सुहाबना लगता है ।

बम्बू

: ( बाबी की ओर से )

मैंने नहीं पढ़ा है ।

बैठ-साहज हम नहीं पढ़ेंगे ।

हम बालक हैं, हम बम्बर हैं ।

बाहर हैं, मिलने बम्बर हैं ।

बिद्यार्थी की सुधारने के स्वार्थ अध्यापक तयार जाता है । उसे अपनी पुरानी बंड प्रयोग वाली अध्यापन पद्धति के प्रति चला हो जाती है और वह बच्चों की शारीरिक बंड देना छोड़ देता है ।

नाटकीय कीशस्त —

सकसेना जी के एकांकियों में नाटकीय स्वयं का चुनाव बड़े कीशाल से किया जाता है । इसके लिए पृष्ठभूमि के रूप में जातावरण का निर्माण करके नाटक की

कथानक को धीरे धीरे क्लमात्मक रूप में उठाना जाता है। जब उस नाटकीय स्थल का चरम बिन्दु (climax) प्राप्त हो जाता है तो घटना कम स्वभावतः दूसरी ओर मुड़ता है और उच्च नाटकीय स्थल पर्वत शिखर की तरह वृषक बिखाई देता है। पाठक या दर्शक बिभ्रतिहित सा उसे पढ़ता या देखता है। पाठक या दर्शक के हृदय को अधिक से अधिक स्पन्द करने वाली घटना का समावेश करने के बाद कथानक को चरम बिन्दु के लिए मोड़ देते हैं। नाटक को जितना छोटा रूप दिया है, उसमें उतना ही नाटकीय कीर्तन दिखाया है। "पल्लवुटी" भी पृष्ठों का छोटा सा एकांकी है जिसमें कथानक बहुत छोटा है। इसमें राम और सीता से सम्बन्धित एक छोटी सी घटना है। इसमें राम सीता के बनबाध के जीवन की एक खांकी भाग है। श्रीराम पुष्पद्वार बनाकर सीता का श्म श्म कर ही रहे हैं कि इसने में सीता जी के पाशों में कोई चीज धाकर लपटी है जिससे सीता कुछ चौकती सी हैं। राम की खांकी बन बैठते हैं। यह अय्यन द्वारा चेंका हुआ भाग है। यहाँ से एकांकी का घटना कम घूमता है। अय्यन वृत्त की मोड़ से भागता है। राम प्रायः कहाकर पीछे धौकते हैं। सीता राम को लौटाती हैं। राम फिर भी उसके पीछे चले जाते हैं। सीता कहती है 'रभी होना ही पाप है जिसके लिए संसार में प्राये से अधिक दुःख लड़े जाते हैं। राम के बाणों से प्रायः अर्धत फिर उसी स्थल पर घाता है कि सीता से समा जाने। सीता वहाँ से राम के पीछे पीछे चली गई है। राम फिर धाकर अय्यन को पकड़ कर रब्ध देना चाहते हैं। सीता भा जाती है। अय्यन सीता की के चरखों पर गिरना चाहता है। सीता को क अनुमत्त पर राम अय्यन को छोड़ देते हैं। मरचल प्रायः अय्यन को कुटी में ले जाते हैं और सीता उसकी चिकित्सा का प्रबन्ध करती हैं। इस छोटी सी घटना को इस रूप में प्रस्तुत किया गया है कि अन्त तक रुचि बनी रहती है।

कुछ एकांकी ऐसे हैं जिनमें समस्याओं पर कस बिचार व्यक्त किए गए हैं और कोई समाधान दिया गया है। इनमें नाटकीय स्थल का समावेश बड़ी कुशलता से किया गया है और यह प्पान रखा गया है कि कहीं नाटक शुष्क या घटना घुम्य न हो जाय या घटना कम में अक्षता न हो जाय। उदाहरण के लिए 'सत्य की खांकी' एक संक्षिप्त एकांकी है जिसमें सीता स्वयंवर की घटना का एक हृदय दिखाया गया है। सीता स्वयंवर से बेबाद इतना ही सम्बन्ध है कि सीता-स्वयंवर देखने के लिए राजा और राजकुमारों के समूह के साथ अग्नि मुनियों का समुदाय भी इकट्ठा हुआ है। अग्नि



बनिया मेरे छोटे

( बाबू तुफान की तरह झपटती हुई मंच पर आती है । )

बाबी क्या हुआमा मचा रखा है ! छोड़ो मेरे चप्पे को ! मेरे सान की ! मैं उसे आती हूँ । लबरेदार, जो इसे किसी ने हाथ लगाया । कोड़ा मैं खुन्हे में भोंकती हूँ तुम्हारा । ( चम्पू के हाथ से कोड़ा छीन लेती है । )

भाबू कोड़ा मुझे बीबिए ! वह मेरा है ।

बाबी तुम्हारा है, ओ यह ओ ( लौड़ मरोड़ कर उसके ऊपर खेंक देती है । )

भाबू मैं उसेमा क्या कर सकता हूँ । अब तुम सब इसको बिगाड़ने पर ही तुली हो ।

[ निराश हो आते हैं ]

भाबू ( घटीत में जो आता है ) ऐसा लड़का तो मैं भी होना चाहता हूँ । सबका लाड़ला, सबका प्यारा ! ओह ! मनमौजी, डल्लासी पर स्वतन्त्र व्यवस्थित आता ।

सीमा : देखो, भाबू कितना बड़ा मया है !

मीना देखो भाबू कितना गुम्बर हो गया है !

बनिया घोर लतका कोड़ा कितना तुहालना मचता है !

चम्पू : ( बाबी की ओर से )

महीं बड़ों में नहीं बड़ों ।

बैर-प्राप्त हूँ महीं बड़ों ।

हूँ बालक हूँ, हूँ बन्दर हूँ ।

बाहर हूँ जितने जगह हूँ ।

बिछाई की सुधारने के स्वान पर स्वयं अध्यापक सुधर आता है । उसे अपनी पुरानी बंड प्रयोग वाली अध्यापन पद्धति के प्रति बुरा हो जाती है और जहाँ बच्चों की प्राथमिक बंड देना छोड़ देता है ।

नाटकीय बीशस —

सकसेमा की के एकांकियों में नाटकीय स्वत का चुनाव बड़े कीमत से किया जाता है । इसके लिए पुष्कलुमि के रूप में आशावरण का निर्माण करके नाटक की

कन्यावत्सु को धीरे धीरे क्लृप्तार्थक रूप से घटाया जाता है। जब उस नाटकीय स्वन का चरम बिन्दु (climax) प्राप्त हो जाता है तो घटना क्रम स्वभावतः दूसरी ओर मुड़ता है और उक्त नाटकीय स्वन नर्तक शिखर की तरह पुनः विसाई देता है। पाठक या दर्शक बिभ्रलचित्त सा उसे पढ़ता या देखता है। पाठक या दर्शक के हृदय को अधिक से अधिक स्पर्श करने वाली क्लृप्ता का समावेश करने के बाद कथानक को चरम बिन्दु के लिए मोड़ देते हैं। नाटक को जितना छोटा रूप दिया है उसमें उतना ही नाटकीय कौशल दिखाया है। 'पल्लुट्टी' भी पुच्छों का छोटा सा एकांकी है जिसमें कथानक बहुत छोटा है। इसने राम और सीता से सम्बन्धित एक छोटी सी क्लृप्ता है। इसमें राम सीता के ब्रम्हास के जीवन की एक झंझी मात्र है। श्रीराम पुष्पगुह्य बनाकर सीता का शू नर कर ही रहे हैं कि इसने में सीता जी के पार्श्व में कोई चीज आकर लपटी है जिससे सीता कुछ भीकती ली हैं। राम की जानें लग पड़ती हैं। यह कथन द्वारा कैसा हुआ जाता है। यहाँ से एकांकी का घटना क्रम घूमता है। कथन शुरू की घड़ी से समाप्ता है। राम प्रार्थना बढ़ाकर पीछे बीड़ते हैं। सीता राम को नीटाती हैं। राम फिर भी उसके पीछे चलने जाते हैं। सीता कहती है स्त्री होना ही पाप है जिसके लिए संसार में प्रायः से अधिक दुःख बढ़े जाते हैं।" राम के बालों से घायस कर्णत फिर उसी स्वन पर जाता है कि सीता से क्या माने। सीता वहाँ से राम के पीछे पीछे चली गई है। राम फिर आकर कथन को बकड़ कर दण्ड देना चाहते हैं। सीता भा जाती है। कथन सीता को के बरतों पर विरमा आहता है। सीता जी के अनुमय पर राम कथन को छोड़ देते हैं। सम्मल घायस कथन को कुटी में ले जाते हैं और सीता उसकी चिकित्सा का प्रबन्ध करती हैं। इस छोटी सी घटना को इस रूप में प्रस्तुत किया गया है कि प्राप्त तक शक्ति बनी रहती है।

कुछ एकांकी ऐसे हैं जिनमें समस्याओं पर कुछ विचार व्यक्त किए गए हैं और कोई संदेश दिया गया है। इनमें नाटकीय स्वन का समावेश बड़ी कुशलता से किया गया है और यह ध्यान रखा गया है कि कहीं नाटक शुष्क या घटना घुग्य न हो जाय या घटना क्रम में बढ़ता न हो जाय। उदाहरण के लिए "सत्य की ओर" एक संक्षिप्त एकांकी है जिसमें सीता स्वर्णर की घटना का एक दृश्य दिखाया गया है। सीता स्वर्णर से बेवस इतना ही सम्बन्ध है कि सीता-स्वर्णर देखने के लिए राजा और रामभारती सभुह के साथ शक्ति पुनिषों का अनुयाय भी इकट्ठा हुआ है। शक्ति

मुनियों की सभा में महर्षि विश्वामित्र कुशीनतावाद के विपक्ष में भावलि देते हैं। मानव मान के लिए समान सुविधाओं की बकासत करते हैं। यह सुनकर सत्यकाम कहता है कि महर्षि प्राय बी कह रहे हैं यह सत्य है। लेकिन यहां कौन आपकी बात सुनेगा। इस पर बालिष्ठी परम्पराओं के एक बूढ़ महर्षि जाड़े होकर बतार बैठे हैं कि बरुं और बरुं सबा रहे हैं और सबा रहेंगे, और इनका जो विरोध करेंगे उन्हें तप्य ही जाना पड़ेगा। इस संकेत पर कुशीनतावादी सत्यकाम को आहत करते हैं और आहत सत्यकाम जब विश्वामित्र के समक्ष जाता है तो वह उससे विधान करने में लिए कहते हैं वरन्तु वह यह कह कर जाता जाता है कि "मेरा काम अभी पूर्ण नहीं हुआ है।" तो विश्वामित्र कहते हैं "निर्मय युवक आधो तुम्हारे बसिवाल से मुनियों को सत्य दृष्टि मिले।" तत्पश्चात् और राम उसकी रक्षा का अनुरोध करते हैं। इस पर विश्वामित्र कहते हैं कि जब सत्यकाम जैसे निर्दोष और सदाचारी युवक कुशीनता की बेबी पर बसिवाल हो जाते हैं, तभी बुद्धि का सचाई का ज्ञान होता है। यही एकांकी समाज होता है।

संक्षेपता की के नाटकीय कौशल की विशेषता यह है कि वे इस बात का ध्यान रखते हैं कि जो विरोधों के बीच से कथा का सफ़र प्रस्तुति हो और वह उत्तरोत्तर विकसित होता जाता जाय। कभी कभी विरोधी पात्रों की सृष्टि से वह विरोध प्रवर्धित किया जाता है। कभी विरोधी परिस्थितियों के माध्यम से इसका निर्माण किया जाता है। कभी घटनाक्रम के घाने पोछे घूमने से वह बनता है। कभी पात्रों के मन के भीतर के विरोधों अन्तर्द्वंद्वों या मानसिक संस्कारों या जीवन के प्रति विरोधी मायमताओं के आचार नर उसकी सृष्टि होती है। इसके बिना कथानक में गति नहीं आती; घटनाओं में एकीकता नहीं होती और नाट्य कौशल सुस्त ( अतिबिहीन ) होकर खर्च हो जाता होता है।

उदाहरण के लिए 'लाज का घर' एकांकी में कुम्ती के मन में यह पर्व उदबुद्ध होता है कि वह मुनिया में आज सबसे अच्छी है। और वह जाड़े ती सवेह स्वर्ग का सक्ती है, जो कभी जीवन में किसी दूसरे को प्राप्त नहीं हुआ। उसके पुत्र आज इतने समतावान हैं कि वे सीने की सीढ़ी चढ़ी कर सकते हैं। तभी उसके हृदय में उसके पर्व को खर्च करने वाला विचार-संक्राण्ड उदित होता है और जलना जल को घाने में चलाता है।

इसी प्रकार 'विजया और वास्ती' संग्रह के "तुवाल" एकांकी में विरोधी

बिचारों वाले पाशों की सख्त करके कबालक को गति प्रदान की गई है। इसमें पुलिबिबी, सतीजा, झीलबन्ती, बम्पादेबी, बिद्यापरी आदि सभी नारी पात्र एक दूसरे के विपरीत बिचार वाले हैं। इसी प्रकार पुरुष पाशों में रायत समर्प, सिंह आदि भी पृथक् पृथक् मान्यता रखनेवाले व्यक्ति हैं। इन्हीं की विरोधी मान्यताओं पर इस एकांकी का सबन निर्मित किया गया है जो एकांकी को पूर्ण उत्कर्ष प्रदान करता है।

झीलबन्ती और पुलिबिबी का संवाद देखिए, जिसमें बेध्या झीलबन्ती आचकन के सम्म परिवारों द्वारा सज्जन और मृत्यु पीत के फैसले को अपना लेने के विषय में कहती है—

- झीलबन्ती : हमारा पैसा खिन गया है। आच घर घर में फैसले की तक भटक मृत्यु पीत फैल गया है, जिसके लिए मोय हमारे पास आते थे।
- पुलिबिबी : तुम हमारे घरेलू जीवन पर कुदृष्टि काम रही हो।
- झीलबन्ती : मैं तप्य बता रही हूँ। समाज ने ही हमें बनाया है। वही हमें बिगाड़ रहा है। यही फरियाद लेकर मैं आपके पास आई हूँ।
- पुलिबिबी : मैं तुम्हारे पैसों में भरोसा हूँ। क्यों ?
- झीलबन्ती : नहीं ?
- पुलिबिबी : तो आखिर तुम चाहती क्या हो ?
- झीलबन्ती : मैं कहती हूँ या तो हमें मार डालो या जीवित रहने दो।
- पुलिबिबी : अर्थात् ?
- झीलबन्ती : यदि यह काम बुरा है तो घर की बहू बेदियों को बतसे बचाओ। उन्हें फैसले को पुनर्निर्माण बनने से रोको मृत्यु पीत की मारक बाइली पिसा कर उन्हें प्रवर्तित न करो। बेध्या के नाम को तो उठा दिया गया है पर घर की बहू बेदी को मराने लगे इसी से हम मर रही हैं।
- पुलिबिबी : हूँ। ( बिचारमग्न हो जाती है )
- झीलबन्ती : सभी कोड़ी बेर पहले जो बहिन आपके पास से गई हैं उनकी सज्जन क्या मुझसे अधिक उम्मादक नहीं है ? मैं बेध्या हूँ और वे गुहिली हैं, यह जो न जानता हो वह क्या सुन नहीं कर बैठेगा ?

इसके आगे पुलिबिबी की बुझी बिद्यापरी घाय की सपट की तरह जाती है। वह डीठ बैसी है जैसा कि बेध्या झीलबन्ती ने कहा है। आधुनिक ढंग की फैसलेनुत

बेज मुया, पीठ पर दो बेलियाँ होठीं पर कुमिम लाली शालों पर पाउडर हाथों के नाकून रमे हुए । भोहों को काजम की मीठ से तोका किया गया । कमर पेटी की इस डंग से, जसा है कि कमर और नीचे का भाग उमर घाये है । पेटों में कीमती संडल । घने में महिला सबन के बन्ने से घरीबा गया सोतियों का हार । हाथ की जयसियों में दो हीरों की छ पुठियाँ बोरी बोरी कलाह्यों में सोने के जड़ाऊ कंगन । फिर पिछाबरी की बात-बीत भी जसी विषय पर होती है । बहु माँ की रिहर्सन में जाने की चुपना बेने घाई है और यह दिखाने घाई है कि वह उसके उगपुछ बेज गुपा में है धनका नहीं । माँ रोखती है पर बिद्या नहीं छकती । इस पर झीसबन्ती उन्हें इस स्थिति से उबारते हुए कहती है —

झीसबन्ती 'धनपन भी कंसा बेचिकी का घातम है । प्यारी नीसी बन्धा । बैककर घाँस घीसल होती है ।

पुलबिबी ( होश में आकर ) मैं इसे कतई पताच नहीं करती ॥ पर क्या कर बमाने की रपतार केहेंगे है । तुमने मेरी घाँसों पर नया बन्धा लया दिया है ।

पुलबिबी का निम्न बल्लभ्य हमारे आजकल के राज्य जीवन की क्यु घातोचना है । बैलपू—

इधर इसारे धरेनु जीवन में सात्र नू पार घनाचल्यक क्य से बहु गया है । आज कोई भी घायोशन बहु-बलियों को नचाये बिना सम्भल नहीं होता । अतिवि घाये तो नाच घाचिकारी घाये तो नाच नेता घाये तो नाच । हमारी संस्कृति बीते नाच, गान की ही संस्कृति हो । बासिकाए नाचती हैं किशोरियाँ नाचती हैं बालाप नाचती हैं । घालाओ घाघनों और संस्वाओं में सभी जबहु लबला सारंघी कडम उठे हैं । मृत्य-संवीत की कसाएँ बड़ापद गुल रही हैं । नगरनगर में तिमैमाघर हो गए हैं । यह बबलक बड़ाकारी है । यह संक्रमक रोग है । हमारे युवकों की अतिवि इसी बात ॥ होती है कि वे लड़कियों को चितना देखते हैं ।

झीसबन्ती और लड़कियाँ भी गित गई लजबज से क्या उन्हें इसके लिए प्योता नहीं देती ?

पुलबिबी : ये उन्हें लड़काने का पुरा सारंजाम करती हैं ।

दूधरी और सयाम में व्याप्त अष्टाचार का पर्वाकाश किया गया है । परबर्चन

सूचना देता है—

महर्षि : सरकारी हितों में निरोधक प्रभावक का पट्टे हैं :

पुलिवी : फिर ?

महर्षि : — आप सब केन्द्रों के कर्मचारियों को अपनी तरह समझा  
दीजिए कि जिसकी रकम के सामने हस्ताक्षर करते हैं उतना ही  
बेतरन बतावें ।

/

X

Y

कम्पाइनी : यह रही है वहिन जी कि उस मछली के समान भीड़ में सब भंडाखोड़ कर  
रिया है । कह दिया है कि हमें पचीस क्या देते हैं और साथ पर  
हस्ताक्षर करवाते हैं । सामान कोई प्राप्ता नहीं है और खर्च निका जाता  
है । इसी तरह न जाने क्या क्या कहा है ।

इस नाटक में केंद्र परस्त समाज की स्थितियों का चित्रण है । दूसरी ओर साधारण  
जीवन व्यतीत करने वाली श्रेणियों के रहन सहन का निर्देश है जो दोनों की स्थितियों से  
मिल नहीं पाता किन्तु सामाजिक विद्वम्बना है कि उनको ऐसे जीवन में रहना पड़ता है  
जो उनके उपयुक्त नहीं है ।

यह विरोधी वातावरण विरोधी घटनाओं विरोधी परिस्थितियों का निर्माण और  
विशेष प्रायः नाटकों में देखने को मिलता है और उनके सौभाग्य व सफलता का एक  
मुख्य कारक है ।

**अभिनयशीलता —**

भी अनुभवाल भी सकलेश के अधिकारी नाटक अभिनेय हैं । उनके कुछ नाटक ऐसे भी  
हैं जो कठिनाई से अभिनय करने योग्य हैं । जिनमें बहुत कम पात्र हैं और भावुकता  
अधिक है कथन लम्बे हैं वे अभिनय योग्य नहीं हैं जैसे 'पंचवटी' । कुछ प्रारम्भिक  
रचनाएँ अभिनय का दृष्टि में रख कर लिखी गईं नहीं प्रतीत होतीं । जैसे 'ध्यात्री' की  
कुछ एकांकी । इन्हें चलने के लिए आवश्यक है कि समयानुसार कुछ परिवर्तन कर  
लिया जाय यद्यपि ये नाटक ही रूढ़ों में प्रायः लेने जाते हैं । "राष्ट्री नाटक भी कई  
रूढ़ों में विद्याविधियों द्वारा सफलतापूर्वक अभिनय किया जा चुका है । 'विजया और  
बापुजी', 'पर्यटनी' आदि संघर्षों के सब एकांकी अभिनय के योग्य हैं । रंजनी

सात्त्विक यह है कि छोटे होते हुए भी लकड़ेना जी के रंगमंच निर्देश अपने धाय में मूर्ख होते हैं। उनमें पात्रों के रूप, वय और चरित्र की भी संक्षिप्त चर्चा मिल जाती है। इस प्रकार के संकेतों से पाठक अपने मन में पात्रों के चरित्र की कल्पना कर लेता है। जैसे—

विष्णु    अलिप्त सुन्दर थोड़ीसी चारबिंसासिनी ।  
 अम्बिका    एक आप्तवयस्का निम्नली ।  
 मोहिनी    देख-देख के रूप में एक मूर्त ।

इन संकेतों के कारण एकांकियों को कथा-रूप में पढ़नेवाले कल्पनाशील और भावुक पाठक भी पूरा आनन्द उठा लेते हैं। उन्हें पात्रों की अनुवृत्तिशीलता और साव्यम्य प्राप्त हो जाता है। लकड़ेना जी के ये रंगमंच निर्देश कथावस्तु को लचीलता और रोचकता प्रदान करते हैं। यही कारण है कि रंगमंच की अपेक्षा पढ़ने के शौकीन अध्ययनशील पाठकों में ये नाटक विशेष लोकप्रिय हुए हैं।

नाटकों के गीत —

श्री संतुदबाल लकड़ेना ने अपने कुछ एकांकियों तथा नाटकों में मार्मिक पौलों का भी प्रयोग किया है। बिछापीठ, सवाई लालनाथ ठाणसी बरकत खाति में गीतों का प्रयोग हुआ है। ये संक्षिप्त हैं और एकांकी के मूल भाव तथा घटना के साथ सम्बद्ध हैं। परिचिति का पात्र की बीबी मनोरमा है वह इनमें बह निकली है। इनकी लक्ष्मि बड़ी विवेकता इनकी सरलता सरसता और सहजता है। अम्बों की कहीं ठू लठांत नहीं है। बीसे नाम के मनोनाथ स्वता बेचना की अधिकता से बह निकले हैं। वह कोई विशेष प्रयत्न (Effort) करता हुआ नहीं दीकता प्रत्युत सहज भाव से अपने मन का हाहाकर अर्थों में उल्लेख देता है। इनमें जीवन की सत्यता और माधुर्य है।

बिछापीठ में पड़ता पीठ है—

“कैसे मन की बात कहूँ ?

सखि, मैं जलती छद्म रहूँ ।

पागी में भी मील बिछारी

ता भी ठर बिछारी,

ओ भरे मुन्ठरी ।

सखि मैं जलती छद्म रहूँ ।

कैसे जी का बात कहूँ।

देवयानी के हृदय में कब के प्रति जो प्रेम उमड़ पड़ा है उसी को इस पीत में अभिव्यक्त किया गया है। नदी के किनारे लड़ी हुई लहरों में काव्य की कल्पना करती हुई देवयानी कहती है कि रात्रि के स्वप्न सुन्दर होते हैं, पर सत्य नहीं। दिन में स्वप्न सत्य भी होते हैं और सुन्दर भी। उनके इस कवन को उसकी शक्तिमां सत्यकामा और पूर्ण आकर भुन लेती हैं और प्राये को उनका संवाद चलता है। उनसे देवयानी का मायक प्रेम और भी अधिक उमड़ पड़ता है जो इस पीत में व्यक्त हुआ है। यह पीत देवयानी की मनोवस्था की मार्मिकता से व्यक्त करता है। परिस्थिति के सहज अनुकूल हैं।

स्वयं उच्च कोटि के कवि होने के कारण श्री दधुदय्यन सकलना ने प्रत्येक वाक्य के मनोवाचों का अच्छा विनयेपशु प्राप्त किया है। बिद्यापीठ का दूसरा पीत पाँचवें हृदय के आरम्भ में देवयानी के मुँह से पाया जाता है जो भीजे उद्धत किया जाता है —

“मेरे माग मुहाग भरे हैं, यह मैं कैसे मानूँ ?

पर बैठे आ गये देवना, क्या इतना कम जानूँ ?

पर पूजा श्रीकार कहाँ है ?

पल पल उठता कबार यहाँ है ?

मिम को पारा न बने ठगे कह प्यार हार क्यों मानूँ ?

मेरे माग मुहाग भरे हैं यह मैं कैसे मानूँ ?

मुनय रही अन्तर में लज्जा

मुनय रोम राम हो दाला।

तलकिरण की आली बजते जो किमान में तानूँ ।

मेरे माग मुहाग भरे हैं, यह मैं कैसे मानूँ ?

दरौन-मुण्ड जसाली दुमा

भर कर भी यह जगल विदुना ।

बन बन भरत भरत पथ की रज में आगि हो दानूँ ।

मेरे माग मुहाग भरे हैं यह मैं क्या मानूँ ?



यह गीत कुछ अद्वितीय है। देवयानी के हृदय में कब का प्रेम दीर्घकाल से पोषित हो रहा है। वरन्तु उसे कब की ओर से किसी प्रकार का प्रत्युत्तर नहीं मिलता। कब भीसे प्रेम की पाठशाला का कलम भी नहीं धागता इस प्रकार का आचरण करता है। उसे देवयानी के मन की रक्षा का रंज माच भी जान नहीं है। इसी मनोदशा में देवयानी उस पीत में अपनी व्याधा को व्यक्त करती है। कहती है कि मैं इस पर कैसे विचारमग्न कि मेरा भाग्य सीधाम्य से पूर्ण होया। क्या इसी को मैं अपना सीधाम्य मानू कि मेरे देवता मुझे घर बैठे आकर मिल गए हैं। मेरा प्यार जब तक नहीं बाँध नहीं पाता तब तब मैं उसे कैसे प्रेम का हार लपटू ? मेरे हृदय में एक अग्नि जल रही है। रोम रोम में छाये पठ धाये हैं। मैं भावों के झिलने भी जान समती हूँ वे सब मेरे लिए चलाने वाले हो जाते हैं। उन्हें देखने से हृदय चलता है और मेरा हृदय-कलस जाली का जाली रह जाता है। ये भाव बड़े ही कोमल हैं तथा एक नवयुवती के मन का सच्चा परिचय प्रदान करते हैं। सबों में कहीं भी निष्पक्षता या भावों की दुष्प्रकृति नहीं है। सहज भाव से जैसे यह गीत उसके हृदय से बह निकलता है।

अन्तिम पीत सबसे हृदय के आरम्भ में आया है जब संजीवनी विद्या प्राप्त करके कब देवलोका को जाने का निश्चय कर चुका है और यह सध्य देवयानी की ज्ञाता हो चुका है। उसका चिर-पोषित प्रेम का स्वप्न टूट चुका है। उसी को वह अपनी लक्ष्मियों के समस्त निम्न लिखित गीत में व्यक्त करती है। भाव उसके पास छिपाने के लिए कुछ भी नहीं है। सज्जा और संकोच सब कुछ त्याग कर वह पूर्ण और सत्यकाया के समस्त उस भय की प्रशिक्षण करती है जो भावी जीवन की अज्ञानता लाने वाली है —

सखि, वे सचमुच आर्यगे ?

प्राण विखेगी इस विवर में

तकप तकप रह आर्यगे ?

कब हो बूढ़ स्थानि जल मी

य आचन-धीप न पार्यगे ?

यही सगगने हुए प्यार के

से पीये मुरमुर्यगे ?

झोस-बूढ़ से चिर संश्रित

क्या सब आरमान निस्तार्यगे ?

सखि, वे सचमुच आर्यगे ?

बीत का भावार्थ स्पष्ट है। ईश्यानी कहती है "क्या है तबमुक्त जैसे आर्यो घोर मेरे विपरीत प्राप्त इसी प्रकार घोर कपो विजरे में तड़पते रहेंगे ? क्या इन सोचन कीर्ति को समझा दर्शन कपी स्वातिवत का एक बूँद भी दुर्लभ हो आगमा ? क्या मेरे प्रेम का पोषा को समी बुनिया को भी नहीं देखा पाया है, इसी प्रकार भुम्हा आगमा ? कूल पतिपों पर पड़ी हुई घोर जैसे प्रयास की किरणों से विमुक्त हो जाती है क्या उसी प्रकार मेरे हृदय के विर संवित धरमान विमुक्त हो आर्यो ? हाय ! क्या है तबमुक्त जैसे ही आर्यो ?

कसके इस बीत के पात्र को घुसी घोर सत्यकामा बिना बताये ही समझ लेती है। अधियों के आगम में जी प्रेम उसी प्रकार अपने नीड़ बनाता है जैसे गृहस्थों के घर में। यह स्वाभाविक मानवी व्यापार सरोजन के आतावरण को छेद कर अनुपम की नैतिक दृष्टियों को ही व्यक्त करता है। परन्तु यह देखनोट से भाये हुए दमस्तेवासी (साध) कब के हृदय पर कोई प्रभाव नहीं डाल पाता। वह जैसे इस सारे व्यापार को हृदयमय ही नहीं कर पाता।

'साधती' नामक एकाकी में विपरीतनी जनिता अपने अरोहे में बँधी हुई घीने कंठ से गा रही है। अरोहे के नीचे सरसु का जल जलकन करता हुआ कहता जा रहा है। ऊपर से जनिता की घालें आँसुओं की कड़ी सपाये अपनी लम्बी बेरवी को बाँध कन्धे की घोर से हाथों में लिए हुए। यह सार्यदाल की निस्तब्धता में सहज भाव से पुनपुनाने लगती है —

जिम बेरवी को गूँथ गये थे,

उसको मैंने लोखूँ ही।

रस मानस में बोल गये थे,

उसमें बिज कपो खोजूँ ही।

बेहो को हृदय में लिए हुए विपरीत-भुक्त जनिता कहती है कि जिस अर्हति जनि के दुर्ब अपने हाथों से गूँथ का जा जैसे मैं कैसे खोजूँ ? जिस हृदय में वे रस घोल गए थे उसमें मैं बिज कैसे खोजूँ ? यह नर्न बेरना बार पंक्तिपों में ही जीवन की बहुत बड़ी कहानी कह देती है। विपरीत क लम्हे बीरह कर्ण उस तपस्विनी ने बिना भूपाय बिदे

जैसे संकट से व्यतीत किये हैं, इसका सामास इन पंक्तियों में व्यक्त होता है। इसी एकान्ती में भावे बस कर पीत की रंग पंक्तियाँ और हैं जो नीचे उद्धृत की जाती हैं —

“वे तपते मैं शीतल हाती ।

वे बन में मैं घर में छोटी ।

वे प्रभु का बरसायुत पीये ।

मेरे जीवन के दिन रीने ।

मैं छावू से पलकें बोटी ।

वे तपते मैं शीतल होती ।

उमिता को विधोष जगता है, परन्तु वह उसे अपने प्रिय के माग में जलाहना या बाबा के रूप में ग्रहण नहीं करती। वह उसे प्रसाद के रूप में अपने हृदय में संभोकर रखना चाहती है। वह कहती है कि उनके रूप से मैं अपने छावूको भीतल अनुभव करती हूँ। मेरी पलकों में जो छावू जमड़ते हैं वे मेरे हृदय को ठंडा करते हैं। यद्यपि वे अपने प्रभु के लक्ष्य पड़कर उनका बरसायुत पान करते हैं और यहाँ मेरे जीवन के दिन सूने हैं, फिर भी मुझे कोई शिकायत नहीं है।

‘नम्बरानी’ में सुरवास का एक पद उपयुक्त स्थान पर उद्धृत किया गया है। इसी प्रकार ‘सायनायक’ में भीरा के पद यत्र तत्र भीरा के मुक्त से ही बचाये गए हैं। इसमें भीरा को बेदना तो व्यक्त ही हुई है साथ ही इस कबानक की वह वाणी होने के कारण किसी प्रकार की

नहीं आने पाई<sup>१</sup> तब प्रतीत होता है जैसे वे भी रखना का पद  
में ऊँची । सुरवास का पद बचाया गया है ।

“सबाई” पालतु दिल्ली के बच्चे

तब १००० गाकर पते

ओ बाबा



जैसे संकट से व्यतीत किये हैं, इसका आभास इन पंक्तियों में व्यक्त होता है। इसी प्रकारों में आने तक कर भीत की छँ पंक्तियाँ और हैं जो नीचे उद्धृत की जाती हैं —

“वे तपते मैं शीतल होती ।

वे वन में मैं घर में सोती ।

वे प्रभु का चरखामुत पीते ।

मेरे जीवन के दिन रीते ।

मैं छात्र से पलकें खेती ।

वे तपते मैं शीतल होती ।

जमिना की विभोग जलाता है परन्तु वह उसे अपने प्रिय के माथ में उलाहता या बाधा के रूप में ग्रहण नहीं करती। वह उसे प्रसाद के रूप में अपने हृदय में संजोकर रक्षता चाहती है। वह कहती है कि उनके उप से मैं अपने आपको शीतल अनुभव करती हूँ। मेरी पलकों में जो छात्र उमड़ते हैं वे मेरे हृदय को ठंडा करते हैं। यद्यपि वे अपने प्रभु के समीप चहुँकर उनका चरखामुत पान करते हैं और वहाँ मेरे जीवन के दिन घूमे हैं, फिर भी मुझे कोई शिकायत नहीं है।

“नन्दराजी” में सुरदास का एक पद उपभुक्त स्वाम पर उद्धृत किया गया है। इसी प्रकार “तावनापद” में भीरा के पद यत्र तत्र भीरा के मुक्त से ही पचाये गए हैं। इसमें भीरा की वैदना तो व्यक्त ही हुई है ताव ही इस कनावक की वह पात्री होने के कारण किसी प्रकार की कुत्रिपता नहीं आने पाई है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे वे जी रचवा का मन हों। इसी प्रकार नन्दराजी में ऊँची के मुक्त से वह सुरदास का पद पचाया गया है।

सामाजिक दुकाँकी “तवाई” में पृष्ठ २८ पर बीछा अपने वाल्मू बिस्ती के बच्चे को गोद में लेकर नुस्ताने का अभिषेक करती है और बच्चों की तरह लोरी गाकर उसे सुलाती है। यह भीत छँ पंक्तियों का है :—

असल उनीवी अ सियाँ दुगहारी, सो जाओ मैयन धो जाओ लासन ।

आँद गगन में घूल करन में, घोने हैं मुक्त से सो जाओ लासन ॥

आर करो न बमार करो मत मया के मोहन, सहना के बीरन ।

रसियाँ म जागो, अन्धियाँ उनीवी आ जाओ कमगुन, सो जाओ लासन ॥

आँस नहाई राव को लेने आये अरन के बूत छाने ।

छाने से घाव में बीजना जेजना मधुरे द्योता घूल के रोने ॥

सकसेना जी ने लंबाई लीरियाँ लिखी हैं। बार पाँच पुस्तकें केवल लीरियों की ही खरी हैं। उनमें आत्मजीवन का विवरण है और वे न तो और बच्चे के हृदय की बहुत मार्मिकता से व्यक्त करती हैं। ऐसे समय पर उनमें तो कोई भी लोरी उपयुक्त हो सकती थी। यह लोरी की विशेष क्य से यहाँ की गई है, आत्मता कोमल और गेय है। इसमें मधुर मय तथा संतुष्ट है। बीछा और मयना की राष्ट्रियों के सम्पर्क से हममें कुछ हास्य का भी समावेश हो गया है। मागों के अपने बच्चे को ही चुना रही हों। न तो का हृदय भँसे भर निकला है।

सकसेना जी के पीछों में साहित्यिक तो हरी हैं। उच्च कोटि की कलात्मकता है। इनकी आत्मकता सीधी पाठक के हृदय में प्रवेश करनेवाली है। नाटकों के गीतों में सकसेना जी का कवि बहुत ही सरल-स्निग्ध क्य में पाठकों को प्रमोदित करता है। कई एक गीतों की मार्मिकता गेयता और आत्मकता तो हृदय की खीरती सी जाती है। "तपाई" का एक गीत लिखिए—

“मन-पक्षी, तू भटक न ओ रे ।  
 अन्ध दूर है साकल बारे, साकल बारे ।  
 मन-पक्षी, तू भटक न ओ रे ।  
 कटिन पथ है, भूमि झटपटी, मागर खार चढ़ो रे ।  
 मन-पक्षी, तू भटक न ओ रे ।  
 अन्ध दूर है, साकल बारे, साकल बारे ।  
 मन पक्षी, तू भटक न ओ रे ।

परीख माँ काव की लोरी कया बीछा के लिए कोई घर नहीं तैयार होता। परन्तु उसने अपने हृदय में बचपन के साथी की अपना सम्म रखा है। उसके हृदय में उसके प्रति अनजाने ही पूर्ण राग का मधुर मय मया है। माँ के नाम उसका जो पथ धाया है जिसमें कोई प्रेम सम्बन्ध नहीं है, न हृदय की कोई पुष्ट या प्रकट भावना है; उसे ही लेकर बीछा गुन गुनबब कर रही है और माँ तथा बहिन के बड़ोस के घर में, जहाँ विवाह की पुनर्वास है जैसे जाने पर अनेकपन का लाल बरकर बीछा उस पथ को बार बार पढ़ती है और मागों में बिछोर होकर ऊपर लिखा गीत गाती है जिसमें परिवर्तित का आभास भी है और उनके हृदय की वेदना भी।

और उसके हृदय में जमा हुआ प्रेम का प्रचुर भी बीते बीरे प्रस्तुत हो रहा है। स्पष्ट प्रत्यक्ष शार्मिक और हृदयपरवी है।

बाल नाटकों, जैसे "रघुबीर रावकुमार"; "रासी" आदि में बीरता, शौर्य, साहस तथा जाति वैरा और बरक़्ति-प्रेम की भावनाओं से ओतप्रोत प्रमेय गीत हैं। वे मौलिक हैं, बालोपयोगी शिक्षापूर्ण और सरस भाषा में लिखे गए हैं। "रघुबीर रावकुमार" में पांच बीर-रस पूर्ण गीत हैं। बच्चों को प्रसाद प्रदान करने तथा उनके अन्दर बीरता और वैरा प्रभ के भाव बाहुल्य करवाने हैं। पराहुरत के रूप में जीये हृदय के प्रारम्भ में बिना तुषा गीत देखिए। पहाड़ी के पत्थर पर बैठा हुआ चारल पा रहा है। वह उद्बोधन पीत है —

‘हमने नर-नाहर उपचाये  
हमने और-बरा रचाये।

मृग रहे हैं वीर हमारे।  
बढ़ते हैं रणवीर हमारे।  
मातृभूमि पर सब कुछ बारे।  
जीन शूर को उन्हें प्रचारे।

नर-नाहर ऐसे उपचाये।  
शत्रु उठा भिनसे धरने।

सब मुरख के डेर लगाते।  
रखचरबी को निश कसाते  
शत्रु-जही में लूट मगाते  
रखचरबी क्षमि कहलाते।

नर-नाहर ऐसे उपचाये।  
बमुखा भिनके बरा से दुलै।

**हृदय विधान और सकलत प्रय —**

कलम गद्यकार को हृदय विधान की कला से परिचित होना आवश्यक है।

अनियत कला की दृष्टि से एकांकी के नामा दृश्यों का निर्माण इस प्रकार हो कि संकलन त्रय की रचा होते हुए दृश्यों का विधान होता रहे। एक दृश्य के अन्तर्गत ऐसे दृश्य धार्य, जिनका सम्बन्ध है निर्माण किया जा सके। जब दर्शक बैठे, तो सामने दूसरे दृश्य का सामान्य संसार रहे। संकलन कार्य और स्वाभाव की इकाई (Unit) का नाम भी होता रहे। संकलन त्रय की आवश्यकता एकांकी में विशेष रचना रखती है क्योंकि यह जीवन की एक घटना एक स्थिति या एक वस्तु को व्यक्त करती है। यह एक संक्षिप्त रचना है। कुछ एकांकीकार न दृश्य-विधान का ध्यान रखते हैं, न संकलन-त्रय की ही महत्त्व देते हैं। इन दोनों के अभाव में नाटक या एकांकी सिखा का अभाव है। ऐश्वर्य नाटकों में इसकी कमी दृष्ट है। पर स्टेज पर जसमें स्वाभाविकता नहीं आती तथा एकांकी का जोर और प्रभाव कम हो जाता है। स्वाभाविकता आती रहती है। कड़े में जैसे और साहित्यिक दृष्टि से अच्छे होते हुए भी ऐसे एकांकी तत्काल नहीं बड़े का सकते हैं। एकांकी का जो इतना प्रचार और लोकप्रियता बढ़ रही है उसका एक कारण यह है कि जिला किछो बाह्याङ्गमर या स्टेज की बड़ी संख्या के उन्हें रंगमंच पर उतारा जा सकता है। साहित्यिक और दार्शनिक संरमाओं द्वारा वे समय समय पर पूर्ण मनोबोध से ज्ञान अभिव्यक्तियों द्वारा जैसे करते हैं।

जी संस्मरण सक्तेना के एकांकियों में दृश्य-विधान का ध्यान रचा गया है। कुछ एकांकी, जैसे "विद्यापीठ" ऐसे भी हैं, जिनमें दृश्यों की संख्या अधिक हो गई है। यह इसलिए हुआ है कि कहीं-कहीं बड़ी पौराणिक या ऐतिहासिक कथा से ली है। आरम्भिक स्थिति तथा आन्तरिक संसार करने में ही उन्हें कई दृश्य रखने पड़े हैं। तब एकांकी में तेजी आई है। यह रोककता धीरे धीरे जाने लगी है। जल्द तक पहुंचते पहुंचते रहस्य प्रसिद्ध होगी है। वे कड़े एकांकी अभिनय की प्रवेसा कल-नाटक की ही बनते हैं। यों बोले बहुत परिवर्तन से और स्टेज की साधारण लबाबट से इन्हें अभिनीत किया जा सकता है। विभिन्न दृश्य जैसे-जैसे चरम-सीमा की ओर बढ़ते हैं, जैसे जैसे रंगमंचिक प्रभाव घटता हुआ जाता है। जनों का ध्यान अब बड़ी सुन्दरता से विभाजित गया है।

सक्तेना की के 'गम्हरानी' एकांकी में संकलन त्रय का निर्माण नहीं हो पाया है। एक घटना वास्तविकता की है तो दूसरी पुनरावृत्ति की। यह एक स्वप्न नाटक है। अपनी दृष्टि से निष्कूल गया है। नाट्य कौशल से इसकी कथाबस्तु बढ़ी गई है। इसमें



धीरे उसके हृदय में बना हुआ प्रेम का अक्षुर भी जैसे धीरे धीरे प्रस्फुटित हो रहा है। स्वतः प्रत्यक्ष मार्मिक धीरे हृदयस्पर्शी है।

नाम नाटकों; जैसे "रखवाँकुरा राजकुमार"; "राखी" आदि में बीरता, शीर्ष, साहस तथा जाति, देश और संस्कृति-प्रेम की भावनाओं से प्रोत्प्रेत अनेक गीत हैं। ये भीमिक हैं बाजोपयोगी सिद्धापूर्व धीरे सरल भाषा में लिखे गए हैं। "रखवाँकुरा राजकुमार" में पाँच बीर-रस पूर्ण गीत हैं। बच्चों को उत्साह प्रदान करने तथा उनके अन्तर बीरता और देश प्रेम के भाव जागृत करनेवाले हैं। उदाहरण के रूप में नीचे हृदय के आरम्भ में दिया हुआ गीत देखिए। पहाड़ी के पत्थर पर बैठा हुआ बारण पा रहा है। यह अनुवीचन गीत है —

‘हमने नर-नाहर उपचाये  
हमने बीर-बद्ध रचाये।

बूझ रहे हैं बीर हमारे।  
बढ़ते हैं रथपीर हमारे।  
मातृभूमि पर छत्र कुल्लु बारे।  
कोन शूर जो उन्हें प्रचारे ?

नर-नाहर ऐसे उपचाये।  
शत्रु छद्म बिनसे बरिसे।

कपट मुख के डेर समाये।  
रथ-पराधी को निरु बसाये  
रक्त-नदी में बूझ गहाये  
रथवाँके क्षमि कइसाये।

नर-नाहर ऐसे उपचाये।  
बहुधा बिनके करा से कइये।

हृदय विधान और संकसन अर्थ —

सफल नाटककार को हृदय विधान की कला से परिचित होना आवश्यक है।

प्रतिपक्ष कला की दृष्टि से एकांकी के नाम। हथों का निर्माण इस प्रकार ही कि संकलन-त्रय की रखा होते हुए हथों का विधान होता रहे। एक हथ के उपरान्त ऐसे हथ आये जिसका सम्बन्ध से निर्माण किया जा सके। जब एकांकी उठे, तो सम्बन्ध दूसरे हथ का सामान्य तैयार रहे। सन्ध बायें, धीरे स्थापन की इकाई (Unity) का मानन भी होता रहे। संकलन-त्रय की आवश्यकता एकांकी में विशेष स्थान रखती है क्योंकि वह जीवन की एक घटना एक स्थिति या एक चरण की भाँती मान है। वह एक संक्षिप्त रचना है। कुछ एकांकीकार न हस्त-विधान का ध्यान रखते हैं न संकलन-त्रय को ही महत्व देते हैं। इन दोनों के समान में मात्रक या एकांकी लिखा जा सकता है। ऐडिजो मात्रकों में इसकी सुनी छुट है पर स्टेज पर उसमें स्वाभाविकता नहीं आती तथा एकांकी का धीरे धीरे प्रभाव कम हो जाता है। स्वाभाविकता आती रहती है। वृत्त में जैसे धीरे साहित्यिक दृष्टि से प्रवेश होते हुए भी ऐसे एकांकी सफल नहीं रहे जा सकते। एकांकी का जो इतना प्रकार धीरे लोकप्रियता बढ़ रही है उसका एक कारण यह है कि बिना किसी बाह्यसम्बन्ध या स्टेज की बड़ी संभवों के उन्हें रचनात्मक बन उतरा जा सकता है। साहित्यिक धीरे सांस्कृतिक संघर्षों द्वारा के समय समय पर कुछ मनोबोध के बात प्रतिपक्षियों द्वारा कहे जाते हैं।

जो संघर्षाल सफलता के एकांकियों में हस्त-विधान का ध्यान रखा गया है। कुछ एकांकी, जैसे "विष्णुपीठ" ऐसे भी हैं जिनमें हथों की जल्पा प्रतिक ही गई है। वह इसलिये हुआ है कि उन्होंने बड़ी पौराणिक या ऐतिहासिक कथा से ली है। प्राचीनक स्थिति तथा वातावरण तैयार करने में ही उन्हें कई हस्त रखने पड़े हैं तब एकांकी में तेजी आई है। यह रचनात्मकता धीरे धीरे आगे बढ़ी है। अन्त तक पहुँचते पहुँचते यह सब प्रगति जुती है। ये कई एकांकी प्रतिपक्ष को प्रेरणा बटन-बाटन की ही बस्तु हैं। जो कोई बहुत परिवर्तन से धीरे स्टेज की साधारण सजावट से उन्हें प्रतिपक्ष किया जा सकता है। विविध हस्त जैसे-जैसे चरण-सीमा की धीरे बढ़ते हैं, जैसे जैसे रचनात्मक प्रभाव प्रकट होता जाता है। पार्श्व का अन्तर्गत बड़ी सुन्दरता से दिखाया गया है।

सकलना की के "सम्बन्धाली" एकांकी में संकलन त्रय का निर्वाह नहीं हो पाया है। एक घटना वास्तविकता की है तो दूसरी युवावस्था की। पर यह एक स्वयं मात्रक है। अपनी दृष्टि के विस्तृत गया है। माध्य-कोशले से इसकी अपावस्तु पड़ी गई है। इसमें

और उसके हृदय में जमा हुआ प्रेम का प्रकुर भी जैसे बीरे बीरे प्रस्फुटित हो रहा है।  
स्वतः अस्पष्ट मार्मिक और हृदयस्पर्शी है।

जाम नाटकों जैसे "रत्नबाँकुरा राजकुमार"; "राखी" आदि में बीरता, शीर्ष,  
साहस तथा जाति, देश और संस्कृति-प्रेम की भावनाएँ से शोभप्रोत अनेक चीत हैं। ये  
मौलिक हैं जालीपयोगी भ्रष्टाचूर्ण और सरल भाषा में लिखे गए हैं। "रत्नबाँकुरा  
राजकुमार" में पाँच बीर रस पूर्ण चीत हैं। बच्चों को उत्साह प्रदान करते तथा उनके  
अन्दर बीरता और देश प्रेम के भाव जागृत करनेवाले हैं। उदाहरण के रूप में जीने  
हृदय के धारण में किया हुआ चीत देखिए। पहाड़ी के पत्थर पर बैठा हुआ चारल बा  
रहा है। यह उद्बोधन चीत है —

‘हमने मर-नाहर उपजाये  
हमने बीर-बल रचाये।

मरू रहे हैं बीर हमारे।  
बढ़ते हैं रणधीर हमारे।  
मासूमि पर सब कुछ बारे।  
भीम शूर को उन्हें प्रचारे।

मर-नाहर देखे उपजाये।  
शत्रु सदा भिनसे मरिगे।

कदम मुचक के ठेर लगाये।  
रणबन्धी को निल जगाये  
रक्त-नदी में लूण गहाये  
रणबाँके धूमिल कइसाये।

मर-नाहर देखे उपजाये।  
शत्रु भिनके मर छे काये।

हृदय विधान और सकसन श्रय —

तपन नाटककार को हृदय विधान की कला से परिचित होना आवश्यक है।

अभिनेय प्रता की दृष्टि से एकांकी के भावा दृश्यों का निर्माण इस प्रकार हो कि संकलन प्रय की रखा होते हुए दृश्यों का विधान होता रहे। एक दृश्य के उपरान्त ऐसे दृश्य आये, जिनका सम्बन्ध है निर्माण किया जा सके। जब परी उठे, तो सम्बन्ध दूसरे दृश्य का सामान्य तैयार रहे। समय काय धीरे स्थान की इकाई (Unit) का पालन की होता रहे। संकलन-प्रय की आवश्यकता एकांकी में विशेष स्थान रखती है क्योंकि बहु जीवन की एक घटना एक स्थिति, या एक बहुत की भांकी मात्र है। यह एक संक्षिप्त रचना है। कुछ एकांकीकार न हृदय-विधान का ध्यान रखते हैं न संकलन प्रय को ही महत्व देते हैं। इन दोनों के समाज में नाटक या एकांकी निष्ठा का सचता है। रेडियो नाटकों में इसकी सुनी हुई है पर स्टेज पर उसमें स्वाभाविकता नहीं आती तब एकांकी का धीरे धीरे प्रभाव कम हो जाता है। स्वाभाविकता आती पड़ती है। पहले में जैसे धीरे साहित्यिक दृष्टि से प्रयोज्य होते हुए भी ऐसे एकांकी सफल नहीं बड़े का सकते। एकांकी का जो इतना प्रकार धीरे लोकप्रियता बढ़ रही है उसका एक कारण यह है कि बिना किसी बाह्यसम्बन्ध या स्टेज की बड़ी क्षमताओं के उन्हें रम्यक पर उतारा जा सकता है। साहित्यिक धीरे संसलित संस्थाओं द्वारा वे समय समय पर पूर्ण मनोबोध से बाल अभिनेताओं द्वारा किये जाते हैं।

यही अनुभवान लक्षणा के एकांकियों में दृश्य-विधान का ध्यान रखा गया है। कुछ एकांकी, जैसे "विद्यापीठ" ऐसे भी हैं, जिनमें दृश्यों की संख्या अधिक हो गई है। यह इसलिए हुआ है कि कहीं-कहीं बड़ी पौराणिक या ऐतिहासिक कथा से ली है। प्रारम्भिक स्थिति तथा अन्ताराल तैयार करने में ही उन्हें कई दृश्य रखने पड़े हैं, तब एकांकी में ठेकी गई है। यह रोचकता धीरे धीरे घाटे बढ़ी है। अन्त तक पहुंचते पहुंचते दृश्य घनिष्ठ सुती है। ये बड़े एकांकी अभिनेय की धर्मता बढन-बढन की ही बस्तु है। जो कोई बहुत परिवर्तन से धीरे स्टेज की सामारण सम्बन्ध से उन्हें अभिनीत किया जा सकता है। विविध दृश्य जैसे-जैसे अरुण-सीमा की ओर बढ़ते हैं जैसे जैसे रंजनीय प्रभाव प्रकट होता जाता है। भावों का अस्पष्ट-रूढ़ बड़ी सुन्दरता से दिखाया गया है।

अभनेता की के "अम्बरानी एकांकी में संकलन प्रय का निर्वाह नहीं हो पाया है। एक बहना वाक्यकाल की है तो दूसरी युवावस्था की। पर यह एक स्वप्न नाटक है। धरती दृष्टि से विस्तृत नवा है। नाट्य-जीवन से इसकी कथावस्तु नहीं गई है। इसमें

और उसके हृदय में जमा हुआ प्रेम का धक्का भी बीते बीते प्रसूतित हो रहा है।  
स्वयं प्रत्यक्ष मार्मिक और हृदयस्पर्शी है।

बाल नाटकों; जैसे "रत्नबीकुटा राजकुमार" "राखी" आदि में बीरता, वीर्य  
साहस तथा प्राप्ति, वैद्य और संस्कृति-प्रम की भावनाओं से ओतप्रोत प्रत्येक चीज है। ये  
मौलिक हैं वास्तविकीय शिक्षापूर्वक और सरस भाषा में लिखे गए हैं। "रत्नबीकुटा  
राजकुमार" में पाँच बीर रत्न पूर्ण गीत हैं। बच्चों को प्रस्ताव प्रदान करने तथा उनके  
प्रत्यक्ष बीरता और वैद्य प्रम के भाव जागृत करनेवाले हैं। जवाहरलाल नेहरू के रूप में बीर  
हृदय के आरम्भ में विद्या हुआ गीत देखिए। पहाड़ी के पत्थर पर बीठा हुआ भारत पा  
रहा है। यह उद्बोधन गीत है —

“हमने नर-नाहर उपजाये  
हमने बीर-वश रचाये।

जुझ रहे हैं बीर हमारे।  
बढ़ते हैं रथबीर हमारे।  
मातृभूमि पर सब कुछ बारे।  
कीन शूर को उन्हें प्रचारे।

नर-नाहर ऐसे उपजाये।  
शत्रु सदा भिनसे बर्तये।

सब कुछ के छेद लगाये।  
रथबीरों को निश बगाये  
धन-मदी में लूट नहाये  
रथबीरों के क्षत्रिय कहाये।

नर-नाहर ऐसे उपजाये।  
शत्रु भिनसे बश से छाये।

हृदय विधान और सकलान्त्रय —

लाल नाटककार को हृदय विधान की कला से परिचित होना आवश्यक है।

अभिन्नय शला की दृष्टि से एकांकी के नाया दृष्टों का निर्माण इस प्रकार हो कि संकलन-त्रय की रसा होते हुए दृष्टों का विधान होता रहे। एक दृष्ट के उपरान्त ऐसे दृष्ट धार्य, निम्नका धार्य से निर्माण किया जा सके। जब पर्यं उन्हें तो धार्य दूसरे दृष्ट का सामान्य संसार रहे। समय कार्य और स्थान की इकाई (Unity) का गानन भी होता रहे। संकलन-त्रय की आवश्यकता एकांकी में विशेष स्थान रखती है क्योंकि यह जीवन की एक घटना एक स्थिति या एक बहुषु की मांकी मात है। यह एक कोलित रचना है। कुछ एकांकीकार न दृष्ट-विधान का ध्यान रखते हैं न संकलन-त्रय को ही गहन लेते हैं। इन दोनों के अभाव में नाटक का एकांकी लिखा जा सकता है। ऐश्वर्यो नाटकों में इसकी चुनौती पड़ है पर स्टेज पर उनमें स्वाभाविकता नहीं छाती तथा एकांकी का और और प्रभाव कम हो जाता है। स्वाभाविकता छाती रहती है। पढ़ने में भी और साहित्यिक दृष्टि से प्रयोग होते हुए भी ऐसे एकांकी सफल नहीं रहे जा सकते। एकांकी का जो इतना प्रकार और लोकप्रियता बढ़ रही है उसका एक कारण यह है कि विचार किसी बाह्याङ्ग्य या स्टेज को बड़ी प्रसन्नता के साथ रंजन पर उतारा जा सकता है। साहित्यिक और ऐश्वर्य संस्थाओं द्वारा वे समय समय पर पूर्ण समोमय से आन अभिनेताओं द्वारा लेने जाते हैं।

जी संयुक्तता सफलता के एकांकी में दृष्ट-विधान का ध्यान रखा गया है। कुछ एकांकी, जैसे "विद्युत्पीठ" ऐसे भी हैं, जिनमें दृष्टों की संख्या अधिक हो गई है। यह इतिहास हुआ है कि उन्होंने बड़ी पौराणिक या ऐतिहासिक कथा से भी है। प्रारम्भिक स्थिति तथा नाट्यवरण तैयार करने में ही उन्हें कई दृष्ट रचने पड़ है, जब एकांकी में ऐसी छाई है। यह रोचकता धीरे धीरे घावे बढ़ी है। अन्त तक पहुंचते पहुंचते दृश्य प्रणि चुनौती है। वे यह एकांकी अभिनय की अपेक्षा बल-बाल की ही बस्तु हैं। यों बीड़े बहुत परिवर्तन से और स्टेज की साधारण सजावट से उन्हें अभिनीत किया जा सकता है। विभिन्न दृष्ट जैसे-जैसे चरण-धीमा की और बढ़ते हैं जैसे जैसे रंजनोपय प्रभाव प्रकट होता जाता है। नाटकों का समझें यह बड़ी पुनरुत्पत्ति से विज्ञाया गया है।

अभनेता की के "मन्दराली" एकांकी में संकलन-त्रय का निर्माण नहीं हो गया है। एक घटना नाट्यकाल की है तो दूसरी घुमावटवा की। पर यह एक स्वप्न नाटक है। अपनी दृष्टि से विस्तृत गया है। नाट्य-कोशल से इसकी कथामस्तु मुरी गई है। इसमें

भी यह ध्यान रखा गया है कि एक ही स्थान पर धारे जीवन की घटनाएँ इस प्रकार रंगमंच पर लाई जायें, जहाँ वे जीवन के बहुत मोड़ों से समय में ही बड़ी हों।

पर्यटुड़ी, पंचमंडी, बिजया और बारहली और बीबरधारिणी के सब एकांकियों में एक लम्बे दृश्य में ही सम्पूर्ण कथानक प्रस्तुत किया गया है। ये एक बार स्टेज समाकर सरमत्ता से अभिनीत हो सकते हैं। राखी और बस्करन कई स्थानों में बड़ी सफलता से खेले गए हैं। इनमें धारा कथानक एक दृश्य के भीतर आ जाता है। इनमें रंगमंच और दर्शकों का विशेष ध्यान रखा गया है। जहाँ कोई बतथा किसी भी मानिक और प्रभावशालिनी क्यों न हो उसे अधिक सम्भाव्यमान नहीं किया है। बीता होने से दर्शकों को अव्यक्त या बीरस न प्रतीत हो और वे अभिनेताओं की रंगमंच पर दिखाने में भी अधिक और प्रभावशालक बिलम्ब न करना पड़े। कभी कभी तकतेना भी वे इस बात का विशेष ध्यान रखा है कि जो दृश्य पल रहा है उसके उपरान्त धारिता का दायता दृश्य ऐसा हो कि पहले दृश्य में कार्य करनेवाले अभिनेता को सजाकर या तैयारी के लिए पर्याप्त अवकाश मिल जाय। जैसे छोटे से 'तपोवन' एकांकी में धनैक पात्र हैं किन्तु उन्हें स्टेज पर कार्य करने के लिए पर्याप्त समय मिल गया है। केवल अवसर पर ही उन्हें रंगमंच पर आना पड़ा है। तकतेना भी वे पुरानी कृत्रिम प्रभावशालिनी जैसे स्वस्त कथन, नैपथ्य, आकाशवाणी करा प्रयोग नहीं किया है।

“बदावली” ; “बस्करन” तथा बाल एकांकी नाटकों में संकलन त्रय का विशेष ध्यान नहीं रखा गया है, क्योंकि इनको रचना का बहुदय संवाद के रूप में ही कथावस्तु को हृदयमन कराना था, परन्तु बाद के नाटकों जैसे नन्दरानी बीबरधारिणी पर्यटुड़ी संझों के नाटकों में संकलन त्रय का पूर्ण निर्बाह किया गया है। बिजया और बारहली के नाटक इस दृष्टि से सर्वाधिक सफल रहे हैं। इनमें एक ही स्वतः सिद्धा है वहीं धारे पात्र आ गए हैं और समय की बरिधि में एक ही अवह वे सारी कथावस्तु की प्रदर्शित कर बैठे हैं। तकतेना भी संकलन त्रय को बहुत आवश्यक समझते हैं।

**शीर्षकों का सौम्यर्य तथा सफेसात्मकता —**

तकतेना भी वे एकांकियों के शीर्षक कुछ तो बिजयबोधक हैं जैसे छोटे की सुति, आठ-अठ राखी स्वयंवर सजा सीताहरण; कुछ प्रटना निर्देशक हैं, जैसे बतराई “सिता का बहार”, “शक्तिबाण” कुछ ऐसे शीर्षक हैं जो संकेत के द्वारा कथावस्तु

के विषय को स्पष्ट करते हैं। इस वर्ग में विजया और वादली, वैष्णव और बानवर, बरामदेष्टा दुर्गन्धना चन्द्रप्रह्लाद, साधु का घर, बुधाल आदि हैं। कुछ ऐसे हैं जो पात्रों के नाम पर हैं। इनमें प्रमुख पात्रों का चरित्र विचित्र ही प्रमाण है। जैसे मन्तरानी, समिक्या; आदि। कुछ का नामकरण एकांकी में प्रमुख एक मुक्त भाव (Central idea) को लेकर किया गया है जैसे प्रादेश, शिवालय, सत्य की घोषा हूत। कुछ ऐसे हैं, जो स्वतन्त्र विचार के निर्देशक हैं। इन स्वतन्त्रों पर जो बहुत दिनों से भारतीय साहित्य में परिचित स्वतन्त्र हो गए हैं जो कुछ एकांकियों का नामकरण हुआ है, जैसे पंचवटी, तनोचन, और विद्यापीठ। एक सफल "बीबरवारिणी" है। इसमें बीबरबीचन तथा बीबरबीचनम्बी पात्रों तथा घटनाओं का ही समावेश हुआ है। बीबरबीचन साधुओं का वस्त्र है। यह बीबरबीचन का संकेत करता है। इस वर्ग में बुडवाली समिलता, बुधा की आँखें आर्यमार्य चन्द्रप्रह्लाद बीबरवारिणी और उपसम्भवा इत्यादि एकांकी आते हैं। इस प्रकार एकदम ही ने उपपन्न नामों का प्रयोग किया है। ये निस्सन्देह आश्चर्य हैं। उनका भीतर सौन्दर्य और साहित्यिकता है। यदि ध्यान से इन तीनों पर विचार किया जाय तो सम्पूर्ण ग्रंथ और कथानक धीरे धीरे स्पष्ट हो जाता है।

### वातावरण (Atmosphere) —

एकदम ही ने वातावरण निर्माण को ध्यान दिया है। जैसी कथावस्तु चुनी है, वही ही वातावरण बनाया है वैसे ही शब्द, सम्भाषण के रूप में सादर-सज्जा, बोधाक, और शब्द आदि का वर्णन किया है। उनके सम्बन्धीय सामाजिक एकांकियों का वातावरण प्रापुनिक सम्पत्ति के घरों तथा वहाँ की विभिन्न स्थितियों से मिलता जुलता है। पत्रकार, लेखक कवि नेता इत्यादि को ध्यान के समान है कर्तव्य है अपने अपने विभिन्न वातावरणों में ही प्रस्तुत किए गए हैं। "विजया और वादली" संग्रह के सभी एकांकी भाग के सामाजिक दृष्टि से हमारा परिचय कराते हैं। बहुतों केवल नेता किन्तु स्तर तक पतित और पण्डित ही चुके हैं, यह इन सामाजिक एकांकियों से प्रकट हो जाता है। अर्थव्यवस्था और वस्त्रधारणी, गये और पुराने, छोटे और बड़े सभी परिवारों का व्यवहार और सफल विचार इन बातों में देखने को मिलता है।

बीबरबीचन तथा बीबर संतुष्टि पर विनित एकांकियों में बीबरबीचन वातावरण को स्पष्ट करते हुए घटनाक्रम को निबोधित किया गया है। जैसे "बुडवाली" में



रंगमंचीय निर्देश ही में रंग कुटी का आमतौर इस प्रकार दिया गया है —

‘रंग कुटी में भगवान् बुद्ध विराजमान हैं। संघा समय जितनेनाले पुष्पों की बरुर बब बायु के भँडोरों के साथ सब ओर फैल रही है। रंग कुटी के आसपास बौद्ध धम्म अथवा विनयों में सत्तन हैं। परन्तु नीबुलि बेला के आगत साध्वान्य में किसी प्रकार का शोभ पैदा न हो अतः लिए रंगबत्ता सभी समय। उनकी प्रत्येक हस्तगत आस्ता बुद्ध की उपस्थिति की परिचायक है।

इसमें रंग कुटी के नाम की सार्थकता पुष्पों के जितने और उनकी सुगन्ध का बायु के साथ फैलने का निर्देश है।

इस रंग के एकांकियों में जहाँ सभी ओर सम्बोधनों तथा बौद्धकासीन परम्पराओं का वासन है। जैसे बुद्ध के लिए जगन्नाथ आस्ता जन्ते कच्छानिवाण अक्षरलक्षरल्य आदि सम्बोधनों का प्रयोग है। स्वान भी बौद्ध साहित्य में मिलनेवाले हैं जैसे ‘जैतवनसंधाराम’, ‘आवस्ती इत्यादि। मुख्य पात्रों के अतिरिक्त कल्पित नाम भी बौद्धकासीन तथा बौद्धसाहित्य में मिलने वाले हैं। जैसे कुशा गौतमी पद्मावारा, आनन्द, धम्मि जगार्दन पूर्ण इत्यादि। बुद्ध की विचारवादा इन एकांकियों में सर्वत्र व्याप्त है और यह विषयानुसृत वातावरण निर्मित में सहायक है। बुद्ध मार्गानुयायिनी पूर्ण कहती है “स्नान धुति से पापमुक्ति होती है, बाइएल यह तुमसे किसने कहा? — यदि जल से पापों का क्षमन होता तो ये कटुए, मेंडर, मत्स्य सर्प आदि जलचर कभी के स्वयं पशुच भये होते।”

बुद्ध विनय धम्म बौद्धकासीन साहित्य में प्रचुरता से मिलते हैं। एकैवमा भी ने इनका भी प्रयोग किया है। जैसे उपसम्पदा अथवाभि सन्धक, सम्बुद्ध, रावपुत्त, आर्यमात्रं भन्ते, अवास्त आस्ता; संघम् अरलम् नय्यामि, बुद्ध अरलम् नय्यामि, भिक्षु, भिक्षुणी।”

इसी प्रकार रामायण कासीन एकांकियों का वातावरण भी उही युग का है। इनमें रामायण कासीन भारत की संस्कृति के दर्शन होते हैं। अधियों में आषम, बहियों के तटों का वर्णन, वन पर्वों, वनवातियों वनकारण्य और उस समय की आदर्शकावित्त का विशेष रूप से विवरण है। उस समय के व्यक्तियों, जैसे अक्षरी के ऊपर एक स्वतन्त्र एकांकी है। “उत्तराई” और “आवेध एकांकियों में निवासराम का चित्रण है। “पंचमदी” एकांकी में वैभवदी का और अविद्यया वापसी का प्रवृत्ति चित्र है। जो पौराणिक साम्यताएँ हैं उन्हें इस प्रकार चित्रित किया गया है, कि जो स्वाभाविक

धार्मिक जीवन में तर्क के अनुसार भी संभव हो सके। जैसे “अज्ञान का उद्धार” में गौतम ऋषि की पत्नी ग्रहिण्या पति की तीक्ष्ण और लोक तिरस्कृति के कारण देहा जीवन की रही है जहाँ वह पतनर जती भावपूर्ण हो। ‘वया-यम’ में ज्ञाती और भुञ्जीव तथा हनुमान की धार्मिक पात्रों के रूप में प्रस्तुत किया गया है। उक्त मूल के ऋषि मुनियों का अस्तेय यज्ञ तत्र इस वातावरण के निर्माण में सहायक सिद्ध हुआ है। जैसे ब्रह्मिष्ठ, विश्वामित्र, सत्यकाम भारद्वाज धन्नि, पाराशर पुत्रस्य, कामदेव, ऋषिरेण विदेहराज जवक आदि।

निश्चय यह कि जहाँ सामाजिक हों या पौराणिक संक्रमण की में तदनुकूल व्यवस्था वातावरण का निर्माण किया है। उन्होंने समाज के सभी प्रकार के जीवन को सुख मेंत्री से देखा और इन माहलों के माध्यम से प्रकट किया है। उनका दृष्टिकोण समाज के व्यक्ति वातावरण को अवातम्य रूप में स्पष्ट कर देना है।



## तीसरा खण्ड

### सकसेना जी के पौराणिक और नैतिक एकांकी

सकसेना जी के एकांकियों में पौराणिक नैतिक धारा विशेष महत्त्व रखती है। अपने रामायण और महाभारत काल के युद्ध, चरित्रों और जनस्वाधियों की सज्जनता से चित्रित किया है। रामायण काल के तो सभी पहलुओं पर प्रकाश डाला है और भारतीय संस्कृति और धारणाओं का बिजल किया है। विशेष उल्लेखनीय बातें हैं वस्तुतः नहीं हैं। वह स्वामाधिकार से पुरानी प्रचलित कथाओं में रोचकता उत्पन्न करता इनकी सफलता है। समझ करते करते इनका एकांकी उच्चतम धारणाओं की स्थापना या पाठक के मन पर छोड़ता है।

रामायण-काल के एकांकियों में निम्न रचनाएं उल्लेखनीय हैं —

१— आरु स्नेह २— स्वयंवर सभा ३— पतवार ४— सोताहरण ५— पद्मा-पथ ६— जिला का उद्धार ७— सज्जनता। इनका रचना काल १९३४ है।

“वसन्त” एकांकी संग्रह १९३६-१९३७ के आसपास प्रकाशित हुआ जिसमें चार एकांकी हैं १— प्रहरी २— आतिथ्य ३— सोने की मुर्ति ४— वसन्त। १९३८ में “पंचवटी” संग्रह प्रकाशित हुआ जिसमें १— वृद्ध २— विवाह ३— वसन्त ४— तापसी ५— पंचवटी इत्यादि पाँच एकांकी संग्रहीत हैं। “विद्यापीठ” १९४२ में प्रकाशित हुआ। १९४३-४४ में “सगाई” एकांकी लिखा गया। १९४८ में १९४९ में कई अच्छे एकांकी मिले गए जैसे “नन्दरानी” (१९४९) कुम्हारानी धर्मधर्म, शुभा जी प्राज्ञे श्रीरामचरित (१९४९) अष्टावहना (१९४९) इत्यादि।

अतिशय क पिता की हृष्टि से भाषणा सर्वप्रथम एकांकी संग्रह १९३४ में लिखता था। इसमें ७ रामायणकालीन एकांकी हैं। ये विशेषतः बालोपयोगी रचनाएं थीं जो पात्र प्रदान थीं। इनमें मुख्य स्वर धार्मिकता की प्रतिष्ठा था। अपनी सज्जन स्वामाधिकार से इनमें उच्च गुणों की प्रतिष्ठा की गई थी।

‘आधुनिक’ एकांकी में भारत का धीरानन्द जी के पास से उनकी लड़ाई लाना और श्रीराम के प्रतिनिधि के रूप में राष्ट्रसंरक्षण करना चित्रित किया गया है।

“स्वयंवर” में परशुराम की पराजय दिखाई गई है। “उतराई” में यह स्वतः है वही श्रीराम ने यथा वार की थी। इसमें निपावराज की अपूर्व भक्ति चित्रित की गई है। “सीताहरण” एकांकी में रावण द्वारा सीता की कन्या बरदा जाना “व्याध-व्याध” में बालि वन और सुग्रीव की मित्रता, “मिला का उद्धार” एकांकी में भीतम बली महिम्ना की मुक्ति, “अलिहाण” में मेघनाथ द्वारा कश्यप को अपने अलिहाण द्वारा मुक्ति करने के भाविक स्वतः चित्रित किए हैं। इस संग्रह के एकांकियों की कथावस्तु प्रचलित रामायण कालीन लोककथाओं से ली गई है। उक्त कथाओं प्रतीत भारतीय संस्कृति के समुचित बहुमुखों का चित्रण और भौतिक आधारवाद की प्रतिष्ठा इन नाटकों में की गई है। इनकी प्रसिद्धता है। भाषा सरल होते हुए भी प्रवाहमयी है। नाटकों के अभिनय की दृष्टि से इनमें लक्ष्य कथा का लक्ष्य है।

“वस्तुन” संग्रह के एकांकियों में नाट्यकार की प्रतिभा का विकास दृष्टिगोचर होता है। विचार की परिपक्वता और डेकनिक में प्रौढ़ता दिखाई देती है। शौरांगिक कथानकों में कथा भाव तो तादा नरोका नहीं का लक्ष्य, किन्तु लक्ष्यना को के उसके विचार वनों में महीनता लगी है। ये समाजोत्तम लक्ष्यों से पूर्ण हैं।

“वस्तुन” एकांकी में राम वन व्रत की कथा को लेकर नाट्यकार ने कथा रस का जोर दिया है। इसमें भाव सीमार्थ है। कई स्थानों में लेखक का कवि-हृदय बोला है। बौद्धिक आत्मन की प्रेरणा आवाहनक आत्मन प्रतिक्रिया मिलता है। “प्रहरी” में लक्ष्मण और सुग्रीव की कथा है। आतिथ्य में प्रहरी का पवित्र प्रेम भूटा लक्ष्य तथा आतिथ्य लक्ष्य का हृदय चित्रित है। “सोने की मूर्ति” में राम का प्रजा-रंजन के लिए यज्ञ करना, वर सीता के रिक्त स्थान पर सीता की सोने की मूर्ति रखने का निश्चय प्रकट करना चित्रित है।

इन सभी एकांकियों में चरित्र की उदात्तता और आधारवाद की महत्व प्रदान किया गया है। आवाहनक और प्रार्थना के अनुकूल सुन्दर कथोपकथनों की प्रचुरता है। चरित्रों में प्रायः सभी कपटलक्ष्य और भाव वरम्परागत लक्ष्यरों से व्याप्त हैं।

एक आलोचक ने लिखा है “कहीं वही लेखक उस महानता को विभा वही सका को पूर्व के कथाकारों ने प्रस्तुत की है। जैसे “वस्तुन” में शूरारव का यह आवेग है देना कि राम वन की कार्य और वरत की राखारी दे ही जाय वरारव के चरित्र की दुर्बल बना देता है। न तो यह आधारवाद ही यह पाता है न प्रचलितवाद ही। आधीन प्रार्थना

भग्न हो उठता है पर कोई नवीन प्रतिष्ठा नहीं हो पाती। सिता से पुन विरोध सम्भार बन पड़ा है -- 'संभवतः' संकेतों को वे मानव स्वभाव की पार्श्व अनुकूलता के लिए दसरथ में यह कुशलता बिछाई है। इसी प्रकार 'ग्रहरी' में सुर्पलखा के सीत बनने के प्रस्ताव पर सीता का भयभीत होना और सुर्पलखा को हटाने मात्र के लिए बल पर धापात करना भी सीता और राम के चरित्रों के अनुकूल नहीं बैठते। 'सीते की मूर्ति' में दूसरे बिबाह के परामर्श पर राम का मन बिबोह कर बैठता है और बहिष्कृत को लोभ हो जाता है।"

अपुन्य आलोचना में कुछ सरयता है हमारी राम है कि वे सब नवीनताएँ लेकन नै प्राथमिक परिस्थितियों के अनुकूल कथानकों को बैठाने के लिए की हैं। पुराने कथानकों में जो बातें तर्कहीन प्रतीत हुई उन्हें तर्कपूर्ण और विवेकसम्मत बनाने का प्रयत्न किया है। उदाहरण के लिए श्रीराम के हृदय में उनके दूसरे बिबाह के प्रस्ताव पर मन में उठनेवासी मनःसंघर्ष की बड़ मनोवैज्ञानिक रूप में चित्रित किया गया है :—

"राम— क्षमा कीजिए पुण्ये ! मैं कुछ न कहना। राज्य में बिबोरा बिबा हो। कह दो राम प्रजापासन के कर्तव्य से विमुक्त हो गया। स्वैच्छाचारी हो गया है। मुझे सिंहासन से उतार दो। मुझे नरक में भेज दो। मेरे सारे पुण्यों को पापों में बदल दो। मुझे कभी न भ्रष्ट होनेवाली पोड़ा का बंड हो परन्तु अपने इस धर्मज्ञ को हटा लो। हटा लो भयबन्धु।"

( चरनों पर तिर रख बैठे हैं )

सर्वम आदर्शवाद की रक्षा का पुरा ध्यान गान्धकार को रहा है। पक्षार्थम स्वामाधिकता और सरलता लाने का प्रयास है। काव्य का सुमधुर प्रवाह भी यत्र तत्र बिद्यमान है। पुराने बिबों को नये प्राथमिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

'पक्षयों' ( संवत् १९५८ ) का पहला एकांकी है 'हठ'। इसमें महारानी लंकेयो के हठ पर राम जनबास और सुकुमारी सीता का राम ॥ साथ बन समन चित्रित है। इसमें सीता का चरित्र प्रधान है। सीता जो भी श्रीराम के साथ बन जाने का हठ करती हैं। राम जन के कटों का बड़ा भयानक बहान करते हैं और जब वे नहीं मानती, तो बिबा होकर जनबास में उनकी साथ चलने की आज्ञा प्रदान कर बैठे हैं। जनबास में कई मार्मिक स्थल पाये हैं जैसे जनबास की जबर पाने से बहुत ही सीता ॥ मन में भय का संचार जारी कटों की आर्जका, जनबास की चुनना ॥ के लिए राम का

झकेते ही धाम-पुर में जाता, कीसस्या का वास्तव्य प्रदर्शन और वन घातन की घूषणा पर कीसस्या का संक्राम्य हो जाना इत्यादि । ये सबका निजी घोर सैराक को मौलिकता के परिचायक हैं ।

“हठ” एकांकी में आदर्शवाद की भव्य झांड़ी दिखाई गई है । नाट्यकार ने प्रत्यक्ष ही ऐसा कामा है जिससे हिन्दू धार्मिक जीवन और भारतीय संस्कृति की झोकी दिखाई जा सके । उसका दृष्टिकोण प्रबोधन धार्मिकता का स्पष्टीकरण है । एक आत्मोन्नत के अनुसार “भरत की स्त्री मांडवी का राज्याभिषेक में सोस्नास कार्य-व्यस्त रहना बड़ी भव्यता से चित्रित किया गया है । वहां तक कि मांडवी की कंधों का केवल उन्मेष नर हुआ है । वह भी पुरा की दृष्टि से नहीं पर आत्मता सहानुभूतिपूर्ण । वह उन्मेष की राम द्वारा ही पाया है जिसमें धार्मिक का पुत्र है । जब ऐसे पर्वत होते हैं कि ना कीसस्या दिखाए करती हुई राजा की आज्ञा उन्मेषन करने के लिए वास्तव्य-मोक्षका राम को कहती हैं तो धाम-वास्तव राम मांडवी से कहते हैं—

“वाता पिता की आज्ञा वास्तव करना कायरता नहीं हो सकती । फिर तुम्हारे लिए तो मेरा और मेरे भाई भरत दोनों का धार्मिक समान है । कहो क्या भरत तुम्हें मेरी तरह ही प्रिय नहीं है ?”

इस तरह धार्मिक स्वभाव के लिए नैतिक ने भव्य धूमि निमित्त की है । सारी कथा के अन्तर्गत कथन रस की वारा प्रवाहित है । कथन रस में भी हृदयस्पर्शिनी दृष्टि एवं व्यक्तता रहती है, वह कथन रसों में कहाँ ? इसी कथन-ज्ञा में नाट्यकार प्रभावान्तर करते हुए दिखाई देते हैं ।”

सम्पूर्ण एकांकी सजीव वातावरण से परिपूर्ण है । राज्याभिषेक की तैयारियों में सभी व्यस्त हैं । प्रकृति भी सुन्दरता और परिपूर्णता में प्रार्थना से भरी है :—

बाँठा प्रकृति को देख कर कहती हैं, “सूर्य जगज्जगत् अपने बंस का यह महोत्सव देखने के लिए नीचे मुकनित होकर आ रहे हैं । वारनों की ऐसी भीषा तो मैं आज पहली बार देख रही हूँ । उदयागत के घिबर नर आज किता ने अदभुततः बाँधे हैं ।”

यह अस्तास मांडवी के सखों में भी व्यक्त हुआ है ; देखिए,

“हां बीबी ऐसा ही है । भरती आकाश आज दोनों सूर्य और अस्ताह से छा रहे हैं ।”

धीरे धीरे यह भाव-धूमि परिवर्तित होती है । सूर्य और अस्ताह की दृष्टि

भाषाभूमि पर कण्टा के काते बाबल छा जाते हैं। फिर समझन कर जैसे प्रभुचार वह निकलती है। कण्टा रस के प्रादुर्भाव में माध्यकार ने अपनी कौशल का परिचय दिया है।

संभवतो —

यह एकान्ती मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से लिखा गया है। राम के चरित्र में भावना से कर्तव्य अन्तर है, वे कर्तव्य पालन में अपनी व्यक्तिगत भावनाओं का ध्यान नहीं करते और बड़े से बड़ा त्याग कर बैठे हैं— यही उन्नावर्धन सेवक ने इस एकान्ती में प्रतिपादित किया है। इसमें सेवक ने राम के हृदय की समस्त वैभवा उल्लेख की है और अन्तर्द्वन्द्वों को प्रकट कर दिया है।

महाराज राम बीदावरी के तट पर विमान से उतरते हैं और अपने वरिष्ठ स्वामी को देखते हैं। पहले ही स्वयं से उनके मन की हालत स्पष्ट होने लगती है :—

“राम— यही तो वह स्थान है। मेरे जीवन का सबसे बड़ा पुण्य तीर्थ। यज्ञ की बीजाकैने से पूर्व तीर्थ-स्नान का पुण्य वरिष्ठ का आदेश है। मैं समस्त तीर्थों का स्नान कर आया तो भी अन्तर की क्लेशा भाँसी ही जब रही है। रोम रोम फुका जा रहा है। अपने इस पावन तीर्थ में स्नान किए बिना उतरते क्या कभी निस्तार हो सकता है? बाह्य यज्ञ का अन्तर्द्वन्द्व कैसे जीतल है। जगता है जैसे कोई कपूर या चन्दन घिड़क रहा हो।”

उन्हें वास्तविकता दिखी जाती है, किन्तु जब राम बचवासी न होकर अयोध्या नरेश हैं। वे ही उसे परिचय देते हैं। वास्तविकता उन्हें पहचान नहीं पाती। उस वर से अपना अपराध स्वीकार करते हुए कहते हैं, “मैंने तुम्हारा अन्याय किया है। तुम्हारी सम्पत्ति लूट ली निकाल दिया है। सत्ता-वित्तका नाम लेकर पवित्र होता है मैंने उस देवी की कलक लबाया है? वास्तविकता तुम मुझे पहचान नहीं रही हो, तो ठीक ही कर रही हो। मैं पापी राज इसी योग्य हूँ।”

सीता जी के प्रति रामचन्द्र जी का यह सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण बेजबन बातचीत बिजल पड़ती है। वह पुछती है कि उन्हें निष्कर्षिकिनी मानते हुए भी धारने उन्हें घर से क्यों निम्नित किया? इस पर भीराम कहते हैं कि उनके ही वचन हैं। एक रूप में वे महाराज हैं दूसरे रूप में रामचन्द्र हैं। पहले रूप में उन्होंने सीता को अन्तर्गत माना है।

कलंकित माना है। उसे त्याग दिया है। मनपीर बन में हिम नमुषी का भीजन बनने को उसे छोड़ दिया है। दूसरे बन में वे सीता की आराधना करते हैं। उसे निरपराधिनी मानते हैं। उसके लिए रातदिन रोते हैं। स्वप्न में उसके मिथुने के लिए दृष्टपडाते हैं। बातची एक भक्तक पाने के लिए अपना सर्वस्व छोड़ सकते हैं। उसकी स्मृति ने उनके शरीर का जून मुका दिया है। श्रीरामचन्द्र जी की यह कथा सुन कर बासन्ती उन्हें उन स्वप्नों की छंद कराती है जहाँ अर्जुनि ब्रजबाल के दशक सुष्ठु श्रीरामचन्द्र के दिन सीता के साथ व्यतीत किए थे। कुछ वस्तु में उन्हें विपत स्मृतियां मिल जाती हैं। बुझते बुझते वे एक ऐसी स्थान पर आते हैं जहाँ ब्रह्म के लगे पर जहाँ लहानु सुम्बर दशरथों में राम नाम प्रसिद्ध है जो जमर आने से ब्रह्म स्पष्ट हो गया है। इन आर्षों से सीता जी का मन प्रेरित है। अपने प्रति सीता जी का इतना सज्जन है कि वह बैलकर राम प्रेम-विह्वल हो उठते हैं। अपने किये पर बहुत बहसते और कसपते हैं। उनका हृदय अन्तःशुद्ध से भर जाता है। बातची उनके हो चढ़ी विमान कर लेने को कहती है तो राम उत्तर देते हैं—

“बासन्ती राम को इस जन्म में विद्याम कहु ? राम तो राजबर्ष से बंधा है। यहाँ बुझते हुए भी अल अल पर उसे अज्ञेय यज्ञ का ध्यान आ रहा है। इस दुष्ट राजपम ने ही आलसिया को मुझसे बिलग कराया है। यही ( राजबर्ष ) सब उसकी स्मृति के साथ अकेले में ही यही हँसने और रीने भी नहीं बैठा।”

राम का हृदय बेचना और अन्तःशुद्ध से इतना भर जाता है कि वे अपने धामको समझान नहीं पते। राम रोते रोते विमान पर चढ़ते हैं। बासन्ती नृषी पर पड़ाइ जाकर निर पड़ती है। आरम्भ से अन्त तक सम्पूर्ण एकाकी कहर-रस से भीमा हुआ है। राम के करिब के वीरव की बड़ी सुन्दरता से रता की गई है। एकाकीकार ने राम के जीवन से ही ऐसी आनिक स्वतः हुआ है जो गहरी बेचना से भरे हुए हैं। उनके मुख से निकले हुए वद्वारों से उनके व्यक्ति हृदय के हृदयकार का पता चल जाता है।

इस एकाकी की गौरीजागिक रीति का परिचय हमें आरम्भ में ही मिल जाता है। पात्र केवल दो ही हैं। धर्मों की मुख्य भाग श्रीराम का ही है। पूरा एकाकी उन्हीं की पुष्ट कथाओं और अतीत की स्मृतियों से भरा हुआ है। ये स्मृतियाँ कहीं नपूर हैं, तो कहीं कदल। बातों का अरबाल और पतन बड़ी मायिकता से दिखाया गया है।

यह वाक्य अन्तःशुद्ध प्रभाव है। यह अर्थों की व्यक्तियों में नहीं कर राम के मन के ही स्वप्नों में जाया जाता है। एक तो राजा राम हैं जो राज नियम और कर्मण्य से



बैधे हैं दूसरे पाण्डु और प्रेममय राम हैं जो अतीत की मधुर भावनाओं को नहीं संभाल पाते हैं पर बुझी होते रहते हैं। इन दोनों कथों में संघर्ष चलता है। लेखक ने कर्तव्यशील राम के बप को ही प्रभावता दी है। अती को स्पष्ट करना उसका मूल ध्येय साम्य होता है।

राम के अन्तः कृ में परमात्मा की प्रभावता है। उन्होंने छोटा त्याग का जो कार्य किया है, वह केवल राजा की पर-अर्थात् और राजनियम के अनुसार ही किया है। वह उनकी विवशता की। लोकेन्द्रा के सिवाय राजा की अपनी कोई सम्पत्ति नहीं होती। व्यक्तिगत रूप से वे इस कार्य के लिए अपने को पापी मानते हैं।

राम के अरिष की रक्षा के लिए लेखक ने सीता के प्रति उनके प्रगाढ़ प्रेम का विवरण दिया है। एक आलोचक के शब्दों में यह कह सकते हैं कि "प्रेम की पावन शक्ति में कितनी पवित्रता है कितनी शीतलता है, उसकी प्रत्यक्ष लेखक ने राम की कथा में प्रदर्शित की है। राम के कर्तव्य-यथ पर प्रेम का ही सम्बन्ध है। इसीलिए वे आसानी पथिक की तरह राजमार्ग पर चलते हुए विचारों होते हैं, सम्भवतः वे कभी के निर्दोष बन जाते। इसीलिए वे धर्ममेव धर्म के पहले पंचवटी में व्याप्त प्रेम के अतीत कष्टों को प्रशन्न करने के लिए विमान से उतरे थे।'

अभिनय की दृष्टि से यह एकदली सफल है। किन्तु यही पात्र हैं। एक लम्बे दृश्य के कारण मंच पर दृश्यों की बार बार बदलने की कोई प्रशंसा नहीं है। एक के बाद दूसरा जो वर्णन आता है वह सरलता से दिखाया जा सकता है। जिस सामग्री की आवश्यकता है वह आसानी से मिल सकती है।

अन्त सीमा ( climax ) का निर्माण लेखक ने बड़ी कुशलता से किया है। घूमते घूमते और मधुर स्मृतियों में डूबे हुए जब रामचन्द्र लंकु के पुत्र के पास जाते हैं, तो सीता द्वारा भिन्न हुआ अपना नाम सुन्दर धारों में लिखा हुआ देखते हैं। इसे देखकर तो उनका पता भर आता है। वे अपने हृदय को भरसक रोफते हैं पर वह रुक नहीं पाता। इसके उपरान्त अनुभव का विश्र दैव कर तो ही उठते हैं। यह अभावनाता धावे बढ़ती ही जाती है। इसका प्रभाव वास्तविक के मन पर भी पड़ता है। वह रामचन्द्र की विमान

है लेकिन अन्धकार से बुझी होकर घुम्ती पर चढ़ा लाने

को अकम्भीरता हुआ समाप्त हो जाता है।

अन्तर्गत ही जाती



श्री नैषधल धार धार श्री इमारतिक कम्पनी का उद्घाटन करते हैं

बैठे हैं वृद्धे भाबुक और प्रेममग्न राम हैं जो घटीत की मधुर भावनाओं को नहीं लँभान पाते हैं पर बुझी होते रहते हैं। इन दोनों कर्णों में संघर्ष चलता है। सैकड़ ने कर्त्तव्यप्रीत राम के रूप को ही प्रभावता दी है। लची को स्पष्ट करना उसका मूल श्रेय मान्य होता है।

राम के अन्तर्दृष्ट में पक्षपाताय की प्रभावता है। उन्होंने सीता स्वाम का जो काम किया है, वह केवल राजा की पद-मर्यादा और राजनियम के अनुसार ही किया है। वह उनकी विवशता की। लोकेन्द्रा के सिवाय राजा की अपनी कोई सम्मति नहीं होती। व्यक्तिगत रूप से वे इस कार्य के लिए अपने को पापी मानते हैं।

राम के चरित्र की रक्षा के लिए सैकड़ ने सीता के प्रति उनके प्रपाद प्रेम का विश्रुत किया है। एक प्राञ्जलिक के शब्दों में यह कह सकते हैं कि "प्रेम की वास्तु द्वारा मैं कितनी पवित्रता है, कितनी धीतलता है उसकी मूलक सैकड़ ने राम की कथा में प्रदर्शित की है। राम के कर्त्तव्य-यत्न पर प्रेम का ही सम्बन्ध है। इसीलिए वे आशावादी पक्षिक की तरह राजमार्ग पर चलते हुए बिछाई धेतें हैं, व्यथना वे कभी के निर्जीव बन जाते। इसीलिए वे अश्वमेध यज्ञ के पहले पंचवटी में व्याघ्र प्रेम के शीतल कर्णों को प्राप्त करने के लिए विमान से उतरे थे।"

प्रमिलन की दृष्टि से यह एकांकी सफल है। केवल दो ही पात्र हैं। एक लम्बे हृदय के कारण मंच पर हृद्यों की बार बार बदलने की कोई ध्वन्य नहीं है। एक के बाव दूसरा जो वर्णन करता है, वह सरलता से दिखाया जा सकता है। जिस सामग्री की आवश्यकता है वह आसानी से मिल सकती है।

चरम सीमा ( climax ) का विपरीत सैकड़ ने लड़ी कुशलता से किया है। घुमते घूमते और मधुर स्मृतियों में डूबे हुए जब रामचन्द्र लँठु के पुल के पास जाते हैं, तो सीता द्वारा लिखा हुआ अपना नाम जुम्बर घाटी में लिखा हुआ देखते हैं। इसे देखकर ली उनका धमा भर जाता है। वे अपने हृदय को जरसक रोकते हैं पर वह रुक नहीं पाता। इसके उपरान्त अनुभूति का विश्व रस कर ती रो ही पड़ते हैं। यह व्याकुलता धामे बढ़ती ही जाती है। इसका प्रभाव वासन्ती के मन पर भी पड़ता है। वह रामचन्द्र को विमान पर चढ़ा देती है लेकिन व्याघ्र-मार से बुझी होकर पृथ्वी पर पड़ाई लाकर गिर पड़ती है। यही नाटक दर्जकों के मन को अकम्प्यता हुआ लगात हो जाता है। इसका प्रभाव दर्जकों पर भी तेजी से पड़ता है और वे भी कदना से ओतप्रोत हो जाते



बी गैलनत घाट घाट बी इमारतिक कम्पनी का उत्पादन करते हुए

बैठे हैं दूसरे माधुन और प्रेममय राम हैं जो सीता की मयूर भावनाओं को नहीं संभाल पाते हैं पर चुकी होते रहते हैं। इन दोनों कर्णों में संघर्ष चलता है। लेकिन वे कर्तव्यशील राम के कर्ण को ही प्रभावित हो गई हैं। सभी को स्पष्ट करना उसका प्रथम प्रयत्न माना जाता है।

राम के प्रस्ताव में पराजय की प्रभावता है। उन्होंने सीता त्याग का जो काम किया है, वह केवल राजा की पर-मर्यादा और राजनियम के अनुसार ही किया है। वह उनकी विध्वंसता की। लोकेन्द्र के सिवाय राजा की अपनी कोई सम्पत्ति नहीं होती। व्यक्तिगत रूप से वे इस कार्य के लिए अपने की वाणी मानते हैं।

राम के चरित्र की रक्षा के लिए लेकिन वे सीता के प्रति उनके प्रवाद प्रस का विचार किया है। एक आलोचक के शब्दों में यह कह सकते हैं कि "प्रेम की भावना द्वारा मैं किसी पवित्रता है, किसी भीतलता है उसकी मूलक लेकिन वे राम की कथा में प्रवर्तित की है। राम के कर्तव्य-पथ पर प्रेम का ही सम्भव है। इसीलिए वे आकाशवाणी पथिक की तरह राजमार्ग पर चलते हुए दिखाई देते हैं, आकाश वे सभी के निर्वासन बन जाते। इसीलिए वे अन्तर्मुख बन के पहले पंचवटी में आकाश प्रस के भीतल करणों को प्रकाश करने के लिए विमान से उतरे थे।"

अभिनय की दृष्टि से यह एक ही संकल है। केवल दो ही पात्र हैं। एक लम्बे दृश्य के कारण संघ पर दृश्यों की बार बार बदलने की कोई भीतल नहीं है। एक के बाद दूसरा को वर्णन आता है वह सरलता से दिखाया जा सकता है। जित सावधानी की आवश्यकता है, वह आकाश की मिल सकती है।

चरम सीमा ( climax ) का निर्माण लेकिन वे बड़ी सुलभता से किया है। प्रथम दृश्य और मयूर स्तुतियों में शुरू हुए जब रामचन्द्र लोकेन्द्र के प्रस के पास जाते हैं, तो सीता द्वारा लिखा हुआ अपना नाम सुन्दर आकाशों में लिखा हुआ देखते हैं। इसे देखकर तो उनका पला सर आता है। वे अपने हृदय को भरसक रोके हैं पर वह एक नहीं पाता। इसके उपरान्त अनुमय का चित्र देख कर तो वे ही उठते हैं। यह व्याकुलता आने बढ़ती ही जाती है। इसका प्रभाव आकाश की पर पर भी पड़ता है। यह आकाश को विमान पर बढ़ा देती है लेकिन आकाश-भार से चुकी होकर धूमिल पर बढ़ा आकर फिर पड़ती है। यही नाटक दर्शकों के मन को आकाश-धरता हुआ समाप्त हो जाता है। इसका प्रभाव दर्शकों पर भी सीमा से पड़ता है और वे भी कहला से भीतलीत हो जाते



बी मेसनर चार, चार, बी ग्रामाटिक कम्पनी का परचाटन करते हुए



है। इस कथन रस की भावभूमि पर छोड़ना ही लेखक का मूस पद्धत्य है। कथना के वातावरण में प्रारम्भ होकर अंसा ही व्यापक प्रभाव डालता हुआ एकांकी समाप्त होता है।

एक सामोचक के ये शब्द सत्य हैं 'इस नाटक का कथन प्रभाव वर्णनीय है। बरातस बड़ा शब्दीय है। लेकिन भावभूमि पर जो प्रतीकिक वातावरण की कालीन बिछाई है वह सर्वकालीन मानवीय बरखा एवं कथा के धातुओं से गोती है। इस कथा को नाटक के रूप में देखने से जो प्रभाव पड़ता है, वह है प्रेम का अपूर्व प्रभाव। राजा राम राजा से पहले प्रेमी के रूप में दिखाई देते हैं। वे सब कुछ होते हुए भी मानवीय दुःख से पूर्ण अनुप्य हैं। वे संवेदनशील और कथलापुक्त हैं। कर्तव्य पथ पर चलते हुए राम का अपरिचित प्रेम उनके लिए बाधक नहीं हुआ है।'

## गौतम बुद्ध सम्बन्धी एकांकी

महात्मा भीतम बुद्ध का जीवन नाट्यकारों तथा कवियों के लिए प्रेरणा का केन्द्र रहा है। सक्तेना भी एक भावुक-हृदय नाटककार हैं और गौतम बुद्ध के जीवन से प्रभावित हुए हैं। उन्होंने बुद्ध के जीवन के विभिन्न पलों को लेकर सफल एकांकियों की रचना की है। इनमें चरित्र चित्रण, अभिनय कथोपकथन सभी का सौन्दर्य पाया जाता है। इन एकांकियों में लेखक ने अपने नाटकीय कोशल का प्रच्छा परिचय दिया है। बुद्ध सम्बन्धी एकांकियों में १— अश्वप्रहस २— बीबरमारिणी ३— बुद्धजाती ४— अतिथि ५— पुत्रा की दाँवें ६— आर्यमार्ग ७— उपसम्पदा आदि विशेष सम्मेलनीय दृष्टियाँ हैं। इनमें बौद्धमत के प्रमुख सिद्धान्त, जगज्ज बुद्ध के विचार, जीवन-दर्शन तथा चरित्र चित्रण आदि सब पाए गए हैं। इतने बुद्ध सम्बन्धी एकांकी किसी अन्य एकांकीकार ने नहीं लिखे हैं। इस दृष्टि से सक्तेना भी ने एक महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। इन नाटकों पर पुनः पुनः विचार कर लेना चाहिए।

### अश्वप्रहस ( रचनाकाल अग्रेस १९४६ ) —

इस एकांकी में बियोगिनी पोषा का जीवन चित्रित किया गया है। जाते समय भीतम बुद्ध अपनी पत्नी से यह कह कर नहीं गए थे कि वे सब के लिए पोषा तथा अपने पुत्र राहुम को त्याग कर जा रहे हैं। इसका मानसिक आघात पोषा सहन न कर सकी। वह ममिल बिरा बियोगिनी का जीवन बिताते लगी।



कपिलवस्तु के राजमहल का एक हृदय सामने आता है। बाती घूमे काल में बीपक जलानी है। काल के एक तिरे पर मलिन कलम गोपा बँधी बिछाई देती है। बाती घननी से बीपक की बली उकसा देती है। प्रकाश कुछ तेज हो जाता है पर विद्योन्मिनी गोपा बुझी है। उसका ध्यान भंग नहीं होता। वह निमित्येय व्यवहार की ओर देखती रहती है। इतने में उसका पुत्र राहुल धाँकर सूचना देता है कि दाबी घौंसमी रोहिणी के तट पर बग्नप्रहस स्नान के लिए निबाने आई हैं। गोपा बिरह ध्याना में डूबी है। वह अपने पति की सुखर स्मृतियों में डूबी है। वह उत्तर देती है —

‘गोपा— मेरा बग्नप्रहस कहाँ छुटा है देता। हाथ क्या वह कभी इस जीवन में छूटेगा? अगर कभी समय आया तो मैं भी बरब भी बरबूगी।

ऐसा वह मन के उठने को न सम्मान सकने के कारण गोपा रो उठती है। जगनी इच्छा बग्नप्रहस पर स्नान पर जाने की नहीं है। अगर राहुल हठ करता है। संभव है अगर पिताजी संन्यासी रूप में मिल ही जायें? वहाँ सभी संन्यासियों के आने की संभावना है। मानिनी गोपा लुई हुई है। उसे मन ही मन विश्वास है कि गौतम एक न एक दिन अवश्य आयेगे। उन्हें आना पड़गा। राहुल आने का कारण पूछना है तो गोपा कहती है :—

‘‘गोपा—गोपा बिन हीन नहीं है? तैरे पिताजी ने छिन्नी ही बड़ी सिद्धि को प्राप्त कर लिया हो पर तेरी माँ के पास जो धन है, उसके लिए उनके आने आकर उन्हें हाथ फँसना ही होगा।

राहुल— वह कौन सा धन है माँ? जिते तुने मुझसे भी सब तक दिया रखा है।

गोपा— वह धन तू ही है मेरे पास।

गोपा राहुल को मोह में डाल देती है। सितकियों और धाँसुओं से बातावरण व्याप्त हो जाता है। गोपा निश्चय पर चटन है। इनमें से ही बुद्धदेव के बिना बुद्धोत्पन्न आकर सूचना मिले हैं कि गौतम कपिलवस्तु की ओर आ रहे हैं। उस समय सभी ध्यानवित्त हो उठते हैं। गोपा को तो जेगे छोड़ हुई निधि ही मिल गई है। वह हर्ष विभोर होकर बिस्ता पठती है—

‘‘बुद्धदेव आ रहे हैं। ये, बुद्धदेव आ रहे हैं। मेरे जगज्ज, मेरे स्वामी मेरे शास्ता।’’

धीरे धीरे राहुल को जकड़नेवाली उसकी बाहें शिथिल हो जाती हैं और उसे मुर्छा घा जाती है। सुमित्रा गुलाब जल साने बीड़ती है।

इस एकांकी में जीवन बुद्ध को पत्नी गोपा की मानसिक दशा विभित की गई है। बिना सूचना के गोपा को त्याग कर बुद्ध चले गए थे। इससे गोपा के मन पर भयंकर मानसिक आघात पहुँचा था। उस मागिनी को सदा यह बुझ रहा कि वे कुछ कहकर नहीं गए। गोपा प्रति उद्विग्न है। राहुल तक उसकी उद्विग्नतासे से परिक्रित है। शिक्षक ने इसी मानसिक दृष्टि को लक्ष्यना से विभित किया है। अन्तर्दृष्टि के विचरण के कारण इसे हम मनोवैज्ञानिक एकांकी कह सकते हैं। गोपा की बीनहीन उद्विग्न मानसिक अवस्था का बड़ा सुन्दर चित्रण हुआ है। वह विगत स्मृतियों में डूबी हुई है। जब से उसके पति गए हैं तब से उसने बरबस तक नहीं बदले हैं। किसी भी कार्य में उसे दिलचस्पी नहीं रही है। बालों में कँपी नहीं की है। मँली साड़ी ही पहने रहती है। अपने महल में कुसासन और चबन के पाटे के प्रतिरिक्त कुछ नहीं रहने दिया है। गोपा का चरित्र ही प्रधान है। रोप पात्र जैसे राहुल गीतमी, शुद्धदेव सुमित्रा आदि मौल्य हैं। पात्र समग्रतः जब से गोपा के चरित्र को प्रोत्थन करते हैं और उसकी मानसिक दशा को दर्शकों के सामने प्रस्तुत करते हैं। मौल्य पात्रों में राहुल गोपा के व्यक्तित्व को बड़ी सफलता से स्पष्ट करता है। वह एक दुष्प्राय बुद्धि सरस हृदय भावुक जासक है। वह गोपा से जो कुछ भी बातें करता है वे सारप्रधान और महत्त्वपूर्ण हैं। उसका एक एक शब्द उसकी विमलशीलता को स्पष्ट करता है। एक दृष्टि से देखा जाय तो वही ऐसा पात्र है जो गोपा की चारित्रिक गुणवत्ता जोलकर पाठकों और दर्शकों के सामने रखता है। वह चाहता है कि उसकी माँ चण्डप्रहण के पर्व पर रोहिणी स्नान लिए चले। क्यों? इसके उत्तर में राहुल के ये शब्द हैं—

‘राहुल— पिताजी भी कहीं दायें वहाँ तो हम उन्हें सहज ही पा लेंगे। माँ से कहो न दादी भी कि वे जिनके लिए रात दिन रोती रहती हैं, उन्हें जाने को हम लोप लेंगे।’ .. ..

.. दादीजी भेरा मन कहता है कि वे रोहिणी किनारे हमें मिलेंगे।

गीतमी— बेडा, यह बात अपनी माँ से कह।

गोपा— बेडा तुम तो पिताजी को देखा नहीं है। तू उनके लिए उनका धीर क्यों है?

राहुन— मैं उन्हें तेरे लिए कोज लाना चाहता हूँ ।

गोपा— क्यों बेठा ?

राहुन— तू उनके लिए रोती को रूखती है ।

गोपा— पर तू उन्हें पहचानेगा कैसे ? तू तो जीम्हता नहीं है उन्हें ।

राहुन— मैं जीम्हता हूँ । तू मे सम्पात्ती का बिज जीजा है वह मैंने देखा है ।

( पीतमी से ) बाबी जी, ठीक उस सम्पात्ती जैसे ही तो हैं पिताजी ?

पीतमी— हाँ बेठा ?

राहुन— तब क्यों न मैं उन्हें पहचान लूँगा ( गोपा से ) मातेम्बरी, अब तो तुम्हें बतना ही चाहिए । पिताजी कहीं मेरी बात न मानें न घाएँ तो दुम मचा लोभी ।

अभ्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि राहुन की बुद्धि कुञ्जाप है । वह प्रतिपादन औसमय सत्यन कब संस्कारों से मुक्त है । लेखक की नाट्यकला का वयन इस चरित्रांकन में प्रत्येक स्वयं नर मिलता है । लेखक ने बुद्धि के पिता बुद्धि के चरित्र चित्रण में तो कमान ही कर दिया है । वे स्टेज पर एक ही बार जाते हैं । एक ही वाक्य बोलते हैं पर इसी से उनके चरित्र की महत्ता प्रकट हो जाती है । उनमें बुद्धि में पाया जाने वाला अकल्पन है । अन्त में मुक्ति गोपा को हवा करते हुए दिखाई पड़ते हैं । उनकी स्थिति की काव्यिकता नहीं स्पष्ट हो जाती है ।

कथोपकथन — इस एकांकी का दूसरा लक्ष्य उसका सजीव और स्वाभाविक कथोपकथन है । प्रत्येक पात्र जिन शब्दों और भावों का प्रयोग करता है, वह उनकी वय, स्थिति और शिक्षा के अनुकूल है । नाटककार ने तात्पर्यवत्ता और विलम्बता के चक्र में न पड़ कर सजीवता और नम्यता का ही ध्यान रखा है । किसी मुख्य सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं किया गया है । कथोपकथनों में अनावश्यक विस्तार भी नहीं है ।

डा० माधवी देवी दीक्ष के शब्दों में “बी तकलीफ की के हटिकोए में वस्तुगत हटिकोए (objective outlook) स्पष्ट है । कथोपकथन के द्वारा पात्र चरित्रांकन के साथ साथ कथावस्तु का विस्तार उन्होंने नाटकीय ढंग से किया है । गोपा और राहुन के चर्चाक्रम में जब लेखक यह भावबुद्धि निर्मित करता है कि तत्परिणी गोपा की साधना इतनी महान् है कि बुद्धि के अन्तर्गत प्रायों तब बुद्धि के सन्तत उस भावबुद्धि की ओर भी ठोस बना देता है । इस कथोपकथन में नाटकीय विधान है । पात्र चरित्रांकन तथा विस्तार एवं नाटकीय विधान द्वारा सुन्दर

प्रमाण की दृष्टि की गई है।”

रक्त की दृष्टि से इसमें करतु रक्त की प्रधानता है। घोष की विरहावस्था का बड़ा भासिक बिगड़ हुआ है। इसमें विमोह भ्रमर की भावना का भी दिग्दर्शन कराया गया है। रक्त की बातचीत सुन्दर है। वास्तव्य से लगे हुए घनेक वचन बाले आते हैं। अन्तिम प्रमाण कबला का है।

## बीबरधारिणी ( १६४६ ) —

इस एकांकी में कुछ हारा हुआ पीतमी को दिया हुआ आत्मज्ञान बिछाया गया है। कृपा पीतमी मोह के अन्धकार में डूबी हुई है। वह अपने घृत पुत्र का अन्ध कंधों पर सटकाये उसे यन्त्रीयन दिनाने के लिए बङ्गरेव के सामन में धरती है। भयवान उसे उपदेश देते हैं कि जो काम अन्ध तक नहीं हुआ वह भविष्य में कैसा संभव है ? कृपा का मोह दूर हो जाता है। कुछ अपना हाथ बड़ा कर आत्म्य के सिर पर रक्त देते हैं। अन्ध अन्धकार होता है।

यह एकांकी उपदेश प्रधान है। इसका स्वर आध्यात्मिक—नैतिक है। प्रायः ऐसे अटल विषयों पर लिखे जाने वाले एकांकी सूक्ष्म और दुल्ह हो जाते हैं और दर्शकों की दिलचस्पी जाती रहती है पर नाटककार ने बड़ी नाटकीयता से आध्यात्मिक तत्त्वों और बौद्ध धर्म के उपदेशों की हमारे सामने प्रस्तुत किया है। ‘वृत्त्यु का बल सदा से बल पड़ा है। प्राण बिना शरीर मिट्टी होता है। मिट्टी के लिए बूझ मोह मत करो। मिट्टी को मिट्टी में ही मिल जाने के लिए छाड़ दो। ये विचार सैलक ने बड़ी नाटकीयता से हमारे सामने रखे हैं। इसमें कोई अटलता नहीं कोई बुझता नहीं। बीबरधारिणी लबाकत की वाली का अमृत नाम कर प्राप्त हो जाते हैं।

इस नाटक का शीर्षक “बीबरधारिणी” बड़ा उपयुक्त है। अथवा शीर्षक यह होता है जिससे नाटक की मूल दृष्टि और प्रमुख पात्र पर प्रकाश पड़े। इस शीर्षक से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह नाटक किसी बुद्धि पीड़ित नारी की धर्म कथा से सम्बन्धित है। वास्तव में है भी यही बात। बीबरधारिणी कृपा पीतमी ( घृत बालक की ) माता इसकी प्रधान पात्री है। सारा नाटक उसी के जीवन से सम्बन्धित है। सैलक ने पुत्र छोड़ से बुद्धि एक नारी दुर्बिता की व्याख्या से इस नाटक को प्रारंभ किया है। इससे यह मान्य हो जाता है कि सैलक किसी बुद्धि जीवन की व्याख्या प्रस्तुत

करेगा। इस प्रारम्भिक वार्तालाप और वर्णन का यही महत्व है। कृष्ण गीतमी के रसमय पर भाव है। पुनः ही बुद्धि का आतावरण निर्मित हो जाता है। मुक्त वास्तव को लिए हुए कृष्ण गीतमी जाती है तथापि बुद्ध के समुत्तम उपदेश को सुनकर जो आत्मज्ञान हो जाता है। उसका मोह दूर हो जाता है। नाटक के अन्त तक पहुँचते पहुँचते कृष्ण में महत् परिवर्तन आ जाता है। वह पक्की भिक्षुसी बन जाती है। नाटक का यह भाव ठठकी चरम सीमा है। यहाँ बुद्धदेव और कृष्ण गीतमी का जो वार्तालाप हुआ है वह सम्पूर्ण नाटक का प्राण है। देखिए—

कृष्ण— अतीत की मृत्यु का प्राण है इसके लिए मैं शोक करूँ ? क्यों न मैं उस प्रारम्भ का अभिनन्दन करूँ जो मित्व है जो सत्य है जो अमृत है।

बुद्धदेव— यही हो। अमरत्व को देने वाले प्रायः अर्थात् मार्ग को अविचारितानी बनो कृष्ण।

कृष्ण— भगवान् मुझे प्रशंसा दें। मैं बुद्ध धर्म और सत्य की सरल सेती हूँ।

बुद्धदेव— कृष्ण कल्याणी। तुम सब अविचारितानी भिक्षुसिखों में प्रचली बनो। धर्म में तुम्हारी अटल दृष्टि हो। अमृत पुत्रिके आगे मुख्य और आक की इस दुनियाँ में तुम आश्रित आनन्द की उद्योति अवाप्तो।

कृष्ण— बुद्ध की अय हो। धर्म की अय हो। सत्य की अय हो।

अपस्थित अल सागर में रह रह कर यही आनन्द बोहराये जाती हैं। तुम्हारा कंठ से निःसृत उद्घोष से आकाश गूँघ उड़ता है। अथवा वह बुद्ध के शब्दों से ही नाटक का पुनः तात्पर्य स्पष्ट हो जाता है। प्रारम्भ में अति अविचारितानी की धुमिका बँधी थी, अन्त तक आते आते वही अनुकृता ग्रहण कर लेती है। इस नाटक को पाप-मुक्ति और अन्तकी विचारबारा यही अनुकृत है।

यह अभिनय की दृष्टि से भी अप्रमत्त है। वार्त्तिक और विस्तृत प्रधान होते हुए भी लेखक ने इसमें कार्य व्यापार (Action) की अनुकृता रखी है। सब प्रवर्तन हाथ और कृष्ण गीतमी का मुँही भर सरसों लाने के प्रथम कार्य व्यापार से भरे हुए हैं। थोड़ी देर के लिए भी रसमय आनी नहीं रहता। बुद्ध न बुद्ध बनता ही रहता है।

रस की दृष्टि से यह कदरता अथवा एकाकी है। अन्त, अन्त और अन्त इससे सम्पूर्ण आतावरण में घाये हुए हैं। पुनः विधोनिनी कृष्ण गीतमी का हाहाकार और

रोदन करके दण्डको बो रसा देते जाता है। बुद्धदेव के उपदेश से यह ब्राम्हण राज में समाप्त होता है। सम्पूर्ण नाटक का विषय यभीर और कामलिक है। इसमें कितनी गीतों का प्रयोग नहीं किया गया है। विषय की यभीरता और ब्राम्हण की प्रचानता के कारण गीतों का न होना ही उचित था। सम्पूर्ण तत्त्वों को देखते हुए यह कहना ठीक है कि यह एक सफल नाटक है। इसमें गहरी व्यंग्यमूर्ति है।

### बुद्धघाटी ( १६४६ ) —

इस नाटक का सम्बन्ध बुद्धदेव के उपदेश से है। कौशल की राजमहिषी जबकी बुद्धदेव के पास जाती है और अपनी व्याधियों की बीमारी को बचोपम सौन्दर्य से रीझती उसका जीवन व्यपन्न चाहती है। जीवनोत्तर करती है और व्याधियों का एक बार अपनी पर छोड़ देती है। माता अपनी मोहग्रस्त है। वह अपनी कन्या के लिये व्याकुल है। वह कहती है

“कौं रोती हूँ अपनी उसी बीमारी के लिए। छातों प्रहर रुदन और विलाप में डूबी रहती हूँ। महात्मन् बतलाइये मैं क्या करूँ ? कहाँ उसे छोड़ूँ ?

बुद्धदेव उसे प्रार्थना करने हैं। फिर धीरे धीरे समझाते हैं। उपदेश देते हैं। वे महिषी को बीराली हुआ कराना चाहते हैं जो स्वयंसेवक बन जायें। फिर वे महिषी से पूछते हैं “देखो बोलो तुम इनसे कि क्या करना है। फिर विलाप कर रही हो ? तुम माता हो ममतामयी और वे सब पुत्रियाँ। तुम इनसे कि किसके लिए व्याकुल हो ?” राजा की सम्भार धारा में छोटी छोटी बालिकाओं को एक सेना तो रीझ पड़ती है। उसमें अपनी की बीमारी भी है और उस बीमारी का नाम है अन्धता। अपनी वह हरण देखकर आँसू बन्द कर लेती है। उसका मोह दूर हो जाता है। वह नहीं जानती कि किसके लिए शोक करे। उन धर्मिक जीवनियों में से किस एक की माँ कहलाए ? उसका हृदय दानि का अनुभव करने की स्थिति में आ जाता है। उसे मान हो जाता है और अन्त में तो वह कह देती है —

“देखो बिल तो घाम पूरी तरह निमल है देव । मैं समझ रही हूँ कि तनार कुछ पूर्ण है। शरीर के पीछे जरा पीर मृत्तु लगी हुई है। उससे राजा एक किसी का भी निस्कार नहीं है। निमल रागहीन मन से उन्हें जाता जा सकता है। मैंने अपने अन्तर की व्याधियों का निग्रह पा ली है।”

यह बुद्धबाणी का ही प्रताप था कि जयती को दायित्व सुख और शान्ति प्राप्त होती है। वह सब के लिए बुद्ध को सरल में बसी जाती है। बुद्ध महिमी के तिर की ओर हाव बढ़ाते हैं। इस एकाकी में लैकक ने बुद्ध के उपदेश उनकी बाणी और प्रताप पर प्रकाश डाला है। उनकी अनुतोषम बाणी सुन कर जनेकों को शंकाओं का समायमल हुआ, मोह हुआ, वैराग्य प्राप्त हुआ और वे बुद्ध शान्ति का जीवन व्यतीत करते रहे। बुद्ध का दमियता का उपदेश संसार में सर्वत्र फैला। उसी दमियता की ओर लैकक ने इस एकाकी में संकेत किया है। यह एक विचारप्रधान मंजीर एकाकी है। इसकी धैर्यी मनोबैधानिक है। लैकक ने माता जयती की मनोव्यथा और अस्तव्यस्त प्रकट किया है। यह हनु मान्तरिक और बाह्य दोनों ही प्रकार का है। इस हनु से ॥ नाटक में सजीवता या पर्य है।

प्रायः देखा जाता है कि किन्हीं विशेष सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने वाले एकाकी हुए हो जाते हैं और उनका कीर्तुल्ल बाता रहता है। लैकक ने इस शुष्कता से बचने का प्रयत्न किया है। इसका कारण एकाकी में प्रमुख कथोपकथन ॥ इन्हें गन्धर्वकोशल और प्रभाववाती डंव से लिखा गया है। इनमें हनु की पहचान है, पर साथ ही स्वयं की स्पष्टता भी है।

इस नाटक के शोभ्य के सम्बन्ध में डा. नाबत्री वैद्य वैद्य ने सत्य ही लिखा है 'एकाकीकार ने पात्रों के मुख से अनुकूलकथनों को कहलवाया है जिससे सजीव वातावरण की सृष्टि के साथ साथ पात्रों का चरित्रोक्त भली भाँति हो गया है। संक्षिप्त एवं प्रभावमय प्रार्यों में जो प्रभाव रहता है वह सम्ये कथोपकथनों में तमब नहीं है। कथोपकथन की संक्षिप्तता ही इसका कीर्तल है। राजमहिमी जयती का मोह दूर हो जाता है तब का कथोपकथन कीर्तल का उत्कृष्ट नमूना है। इसी प्रकार के छोटे मर्मस्पर्शी संवाद एकाकी के लिए उपयुक्त रहते हैं।

ईशिक तत्व इस नाटक की ओर विशेषता है। इसमें सर्वत्र एक ईशिक तत्त्व (Spiritual element) है। बुद्धदेव के जगत्कार से समन्तान से कितने ही मृत्यु प्राप्त प्रियु कोशित रूप में राजरानी जयती के समीप आने विचार्य देते हैं। इस दृश्य से एक तत्व की विशेषताएँ इस नाटक में या गई हैं। एक तो यह कि इससे एक आत्मीयिक भूमिका निर्मित हो जाती है जिस पर दर्शक जाते हुए लौकिक यथार्थ भूमि को भूल जाते हैं। सण नाम के लिए वे बलिष्ठ हो जाते हैं। नुतर यह कि

इससे मातृकीय दृष्टि से मनोरंजन का घुट आ गया है। केवल कबीपकथन ही जनमत रंजन नहीं कर सकती। इसके सिवा कोई ठोस आधार एवं आकृति चाहिए। आलापों के विविध रूप रंगमंच पर आने से नाटक का एकाकीय (Monotony) नहीं रहने पाता। इस वैदिक तत्व के साथ तीन विशेषताएं आई हैं १— कथा विम्वार की सुबलता २— मनोरंजन ३— एकाकीयन वितर्जन।

### अभिरूपा (१६४६)

इस एकाकी का सम्बन्ध भी बुद्धदेव की समुत्पन्न भावों से है। बुद्ध बचनानुसृत से जनता को प्राप्त हुए शान्ति विषयों की ओर जाने के व्यक्ति विविध हो गए थे जहाँ में से एक वृत्तान्त इस एकाकी में लिया गया है। इस एकाकी की पात्री धर्मय वनीय कुमारी कपर्विका भिक्षुली गयी है। उसका रूप के प्रति बहुत मोह है। बुद्धवाली सुनकर वह मोह दूर हो जाता है और वह विविध हो जाती है। एकाकी का मुख्य भाग यह है जहाँ बुद्धदेव अभिरूपा को उपदेश देते हुए कहते हैं —

“बुद्धदेव— ऐसा मत सोचो अभिरूपा ! रूप के इतने ऐश्वर्य को जाने के कारण ही तुम्हारा सोम्वर्ग-बोध इतना ऊँचा है। शरीर की सुन्दरता और उसकी विभूति के परित्यागों को तुम सहन हो सगम सकती हो। देखो यह है रूप और जीवन की परिस्थिति।

( जरा, अशुभ, दुःख और व्याधि मूल से निवृत्त एक सारी शरीर शासक जाता है। मर्या उस देव कर आने कर कर होती है । )

मर्या— हटाओ हटाओ। मैं देख नहीं सकती इसे।

( बुद्धदेव के शरीर से वह शरीर दूर भिन्न जाता है । )

बुद्धदेव— मर्या, जानती हो वह किसका शरीर है ?— एक समय वह भी अभिरूपा की। ठीक तुम्हारी तरह। आज वह मुझी भर हृदयों का डेर है। इसकी कंचन-काया धूमिल और बलों के काम से बन गई है। समय तो यही बड़ा तुम्हारे शरीर की होती है। शरीर का परिवर्तन ही जरा और व्याधि है। समुद्र शरीर के परिवर्तन को नहीं देख पाते। इसमें भिन्न होते और अत्यन्त कष्ट भोगते हैं। मर्या तुम अतीव्र होकर इस पात्र के रहस्य को समझो। पात्र को पहचानी। इसके प्रति अपनी आकर्षक को हटाओ। यह हृदय से बिना की निर्मल करो। पदार्थ जीवन, अनासक्त, अप्रयत्न होकर निर्वाण बुद्ध प्राप्त करो— तुम इसकी सर्वथा अधिकारिणी हो।



नन्दा— हेव, मैंने शरीर का वास्तविक रूप देखा पाया । रथ और घोड़ों के पीछे भाँकने वाली बराबी कीर्तना और बिकृति को समझ पाया । इस कुछ पछिणाभी कामों के प्रति मुझ प्रागैतिक निर्बोध हो गया । ये सब मुक्त हुई । वेह से मैंने अपनापन तोड़ लिया, भगवान् ! आज से इसी जल से ।

ऐसा कह कर वह अर्पणिका बुडबुड के तरंगों में डुबती है ।

इस नाटक के प्रारम्भ में ही नाटक का मूल ध्येय प्रकट होने लगता है । यह है भगवान् बुद्ध के उपदेशों का अमलकारी प्रभाव और उसके द्वारा वास्तव मुक्त की प्राप्ति । बुडबुडों का अमलकारी मुक्त प पहले ही वाक्य से प्रकट हो जाता है —

मुक्त— साक्षात् क ही वाक्यों में मेरे अन्तर को अज्ञान को क्षमि कर दिया । कानों में उनका प्रभाव निरन्तर गूँजते रहते हैं

नन्दा— कौन से वाक्य ?

मुक्त— उन्होंने कहा— मुक्त तु मुक्त हो जा— राहु के बहुर से मुक्त हुई अज्ञानता की तरह । तु अज्ञेय प्राणियों के साथ बना भावना में लीन हो जा ।— भगवान् के इन वाक्यों में मेरे हृदय में छाये पहर अमलकारी अज्ञान का क्षमि कर दिया ।

इसी लक्ष्य की ओर सदा निरन्तर ध्यान प्रकृता जाता है । नाटकीय कौशल से वह अर्पणिका मिश्रुती के रूप में का प्रयोग कर बना है । इस नाटक का मुख्य सौम्य नन्दा के हृदय में उठने वाला अमलकार है । इसका शीर्षक "अमलकार" भी उपयुक्त है क्योंकि इसी पर नाटक का अर्थ होता है । जब नन्दा का मोह दूर जाता है तो बुद्ध कहते हैं कि आन्तरिक सौम्यता का कर आज तुम सब वाक्यों में अमलकार हुई । बुद्ध के उपदेशों का प्रभाव इस नाटक में स्पष्ट हो जाता है ।

धुमा की भाँखें ( १८५० ) —

यह एककी धुमा नामक अक्षय्याका बिलगा क तप त्याग आरित्रिक इच्छा और साधारण प्रति निरठा से सम्बन्धित है । धुमा पूर्ण मुक्त है । उसकी आयुष्य १६ १७ से अधिक नहीं है । सोम्य भी उसका धर्मों से कट रही है पर यह तपस्या और साधना से बचता है । संयमी है । आत्म निग्रही है । धुमा के पीछे अपने परों पर हृष्टि गड़ाये संसार की अज्ञातता का विग्न करनी हुई नित्य एक चिन्तन भाव से घाया जाता

करती है। पुत्ररु देवदत्त उससे रूप मोहम भर मुग्न है। दियकर उसे देखता और देखने का प्रयत्न करना है। निष्ठाप शुभा की वासना की कृपा का बाईं हाथ नहीं है। वहाँ शुभ की मनी छाया है वहाँ बुधपाप बँटकर वह शुभा की प्रतीक्षा करता है। अब वह वहाँ पहुँचती है तो उठ खड़ा होता है और उसका नाम रोचना है। शुभा बर्जित होकर विस्फारित देखो से उसे देखती है। उसका वृत्तित मन्तव्य समझकर वह उससे कहती है —

मेरा क्या अपराध है ? मैं विन्दु उहे और निर्मल बिलसती हूँ। माई, मुझे जाने दे तुम्हें क्या मनी विरक्त भिक्षुणियों को दुना मुझों के लिए पाप है। तु मेरे मार्ग से दूर हो जा।

शुभा उसे माई कह कर सम्बोधन करती है। शुभ दृष्टि लाने का प्रयत्न करती है लेकिन वह उस वासना के आवेग से बन्धा हो रहा है। अशुभ सरकार उसे वासना सोचुन बनाये ही रहते हैं। देवदत्त शुभा के मदमत्त मनों पर ओहित है। वह उनके कभीकरण प्रभाव को नहीं रोक पाता इस वर शुभा विपदा हो बैठ जाती है। अपने हृदयों को दोनों पाकों के चारों ओर ओर से बुझाती है। दोनों आँखों से रक्त की बूँदें डपटती हैं। देवदत्त को स्वप्न में भी आशा न था यह अस्वप्नस्वप्ना भिक्षुनी की आँखें जोड़ डालती। उसे अपनी वासना लोभमुपता पर बड़ा पन्नाखाम होता है। देवदत्त कहता है —

“किस देवि कल ? मैं नहीं जानता था कि तु अपने कल में इतनी पकड़ी है— तेरा संगत हो कस्याली, तु ने मुझे संसार को देखने की नई दृष्टि दी। शुभ पापी को क्षमा कर देवि मेरा मोह दूर हो गया भगवती। मुझे दिव्य दृष्टि मिल गई। मैं कृतार्थ हुआ। पुष्पघीले मैं तेरा आभारी हूँ।”

इससे अनन्तर पुष्पघीले का प्रवेश होता है। वे शुभा की आजीर्णवि केते हैं। उनकी पाठी शुभा की आँखों में गरहम का काव कछी है। वे कहते हैं —

पुष्पघीले— अब की नय हो। धाकार की प्रतिष्ठा हो। ककला का पसार हो। मुझे। धम की मन्त्रीका को तुने डंका उठाया है। तुने बुद्ध के शासन की हक किया है। तुने संसार में सत्य बढ़ी विजय प्राप्त की है। तू सम्य है।

इस लटक की कई बिलोचनाएँ हूँ अनानास ही आह्वय करती हूँ। पहली बिद्येयता इसका चरित्र बिजल और तीर्थ है। तीर्थक से यह स्पष्ट हो जाता है कि

नाटककार शुभा के नेत्रों से सम्बन्धित कोई दृश्य चित्रित कर रहा है। शुभा नामक मिथुनी ही प्रमुख पात्र है। उसी का चरित्र प्रमाण है। अपने नेत्रों के बलिवान से वह एक पञ्चभूत युवक के हृदय में सीम घोर मर्यादा की भावनाएँ उत्पन्न करती है। उसके चरित्र की दृढ़ता, उच्चता, और स्वाभाविकता से धर्म की जड़ होती है और आचार की प्रतिष्ठा होती है। इस चरित्र की भव्यता और पवित्रता पर ही नाटक बड़ा किया गया है।

नाटक का स्वर नैतिक आदर्शवाद की प्रतिष्ठा करना है। यह जड़त युवकों के लिए भी मार्गदर्शक हो सकता है। देवदत्त हर प्रकार के तर्क और धोवन के युक्तों को उसके सामने प्रस्तुत करता है पर शुभा को उत्तर देती है वह बड़ा ही सारप्राप्त है। देवदत्त जब उसके धोवन का आग्रह करने को कहता है तो वह उत्तर देती है—

“शुभा— परन्तु यह सब कितनी बेर के लिए है ? क्या यह स्थायी सुख देने वाला है ? इसका परिणाम क्या बरा और शोक नहीं है ? मैं धुन हृदि सम्पन्न हूँ सिद्धि सिद्धि वासना के आश्रय से तु इस तरह व्यथा हो रहा है। तुझे ज्ञान नहीं कि मैं सम्मत्त संवृद्ध की छिप्या हूँ मेरे पदों को धरुद्ध कर रखने में कोई लाभ नहीं है, युवक। किसी तरह के प्रलोभन मुझे मेरे मार्ग से विचलित नहीं कर सकते। इस घरीर के अत्यन्त दय से मैंने आसक्ति हटा ली है। मेरे लिए वे डोकरे के समान हैं।

इस नाटक में केवल दो ही मुख्य पात्र हैं। बुद्धदेव का प्रवेश तो अन्त में बोड़ी बेर मात्र के लिए होता है। इन दोनों में लेखक की सहस्रभूति शुभा के साथ है। देवदत्त एक उद्वेग वासनाग्रिय युवक के रूप में चित्रित किया गया है। कुल नाटक में एक ही लम्बा दृश्य है। कथा की गति तीव्र स्तरों पर स्पष्ट होती है। १ — देवदत्त का शुभा की प्रतीक्षा केन्द्राङ्क १— शुभा की अनुमति विनय और आदर में नेत्रों की प्योड़ आसना २— गौतम बुद्ध का प्रवेश और उपदेश। इस नाटक का अन्त बड़ा प्रभावशाली रूप में होता है। शुभा को बाँधें फूटते ही देवदत्त में एक अद्भुत परिवर्तन होता है। वह अपने किए पर पश्चात्ताप करता है। अन्त में गौतम बुद्ध के प्रवेश और उपदेश के बाद एकाकी प्रभाव आसता हुआ समाप्त हो जाता है। कथा का प्रभाव सतत गतिशील है।

इस एकाकी का कथोपकथन काव्य-सौन्दर्य से युक्त है। देवदत्त त्रिज शायी में शुभा के रूप सौन्दर्य का वर्णन करता है वह कोई नवि ही कर सकता है। वह रोबक रक्तपूर्ण और रोमाञ्च है। असाहस्य के लिए देवदत्त के मुह से बहे हुए इन पद्यों के

काव्य-सौम्य को देखिए :—

‘देखत— मोरी मोरी कमलगास सी ये बाहें किसी बिरह के भरे का हार बनने को दातुर न हों ? हो नहीं सकती ये कर्णालिनी रस भरे नयन एकान्त बाँधनी रत्नों में किसी के लिए बैज न हा उठते हों ये तुम्हारे स्वर्ण कसाय रेखन की कंधुकी में रहने लायक हैं : ये तुम्हारे उन्नत नितम्ब फूलझंझ पर बिभाम पाये घोम्य हैं : ये कोमल कसाइयो मणि जटित स्वर्ण-कंदारों की भँकार से कानों में रस बरछाने के लिए हैं : ये कोकनद से सुकुमार तुम्हारे पाँव देखत की निम नमना के अधिकारी हैं ।’

इस एकांकी का एक सौम्य उसका व्यग्रव्यासित व्यक्त है : कोई भी इस बात का अनुमान नहीं कर सकता कि जिसुली बिभन्न हो अपने मेघ ही छोड़ जायेगी : लेकिन वह अपने हृदय पंखों से धीरे धीरे छोड़ ही जाती है : इससे मृदार के बातावरण में करुणा का संचार हो उठता है : लेकिन ध्यत तक पहुँचते पहुँचते कौतुहल बना ही रहता है : सम्पूर्ण नाटक का बातावरण लजीब है : देखत के सन्नों में प्रकृति का सौम्य स्थान स्थान पर प्रकट हुआ है : जैसे—

‘दुल और रत्नों में नया जीवन धा गया है : मंजरी की भीनी पग से बाधु लज्जाली होकर बह रही है :

उपमाएं भी प्रकृति से ही ली गई हैं : जैसे ‘कमल-लता में धमी धमी जिते हुए वो नील कमलों की भाँति धाँचें कमलगान की तरह तुम्हारी भुआएँ, चम्पक प्रसून की भाँति तुम्हारे घ घ नया तपस्या की छाया में होम देने के लिए हैं ?’

### आयमाग (१६५०)

इस एकांकी का सम्बन्ध भी नीतम बुद्ध के उपदेश और बाएरी से है : बुद्ध की सिध्दा पुर्ला एक बातीपुत्री है : पीछ भास के कठोर छित में वह आवस्ती में एक नदी के किनारे जाती है : अवधान बुद्ध के अनैशान्त का पालकर वह नदी के किनारे एकान्त बुद्ध की छाया में बैठ जाती है : जीवन में उसे धाव एक नया अनुभव हुआ है : आयमाग, ईशान्य, बिभन्नता मय और ईशान्य जीवन में अवधान बुद्ध के उपदेश से उसे एक नवीन जीवन दिया है : वह नदी की निमल तरंगित जलराशि को देखकर भाव विनीर हो उठती है और कहती है —

‘मला हो भवधान तन्नागत का निनके उपदेश से धाव मन में दान्ति और हृदय

में उस्मास का अनुभव हो रहा है। वासता की ज्वाला से श्वस मांस में स्वतन्त्र चेतन आत्मा का जन्म हो रहा है। यही वह पर्याप्तिकी यही वह कश्मोक्षित अलपारा है किन्तु किताबी बबली हुई, किताबी सुहाबनी ? यहाँ आना निरात्मक और कष्ट का कारण होता था। प्रायः उच्छ्वस आनन्द हिमोरे में रहा है।

फिर हाथ में सुनिमी लिए अनार्यन बाह्यस आता है। वह वैदिक वर्मावसम्भी है किन्तु पूर्ण के विचारों के प्रभाव में आकर वह भी अज्ञानुयायो हो जाता है। शीतल जल में निरन्तर सर्पों की कठिन पीड़ा सहकर स्नान करने की समस्या पर आलक्षित प्रारम्भ हो जाती है। अनार्यन कहता है कि स्नान शुद्धि से पाप मुक्ति होती है। स्नान करके मनुष्य संकित पारों के फल से अपने आपको बचा सकता है। वैदिक धर्म में स्नान की बड़ी महिमा बताई गई है। इस पर पूर्ण बहुत ही लक्ष्मण उत्तर देती है जिनसे बाह्यस का हृदय-परिवर्तन हो जाता है —

“पूर्णा ... यदि जल से पापों का प्रमन होता तो यह कष्टुर मेंढक मस्य सर्प प्रावि अलवर कभी के स्वर्ग पहुँच गए होते। यह तो निरन्तर अपनी काया की शुद्धि करते रहते हैं।

अनार्यन यह तुम क्या कहती हो ?

पूर्णा मैं यही कहती हूँ कि जब तो कसाई मछुए बहेलिए और लवार सभी अपना अपना काम करने के बाद नदी में गह्रा कर अपने पापों को धो डालेंगे और स्वर्ग जाने की तैयारी कर लेंगे पाप कर्मों से मुक्त होने का यह तीव्र मार्ग मनुष्य को पापों में लवने के लिए उरसाहित करेगा। कोई वृद्धि से वृद्धि पाप करने से डरेगा नहीं। यह बुनिया पापियों और दुष्कर्मियों की क्लिष्टाभूमि हो जायगी फिर यदि नदी में गह्राते से पूर्वकृत पाप कर्म बुल जायें तो पुण्य कर्म भी पुनः कार्यमें। यह नहीं हो सकता कि जल स्वर्ग पापों को धोवे और पुण्यों को छोड़ दे। पुण्य बुल जाने से पाप बचा रहेगा बाह्यस।

अनार्यन : पूर्णिये, तु वासी पुत्री होकर भी कितने स्वच्छ विचार रखती है ? किन्तु ~

पूर्णा : बाह्यस बेबता धर्म सरपों को पहचानी। पालण्डी विचारों को छोड़ दो। यदि बह्य के पद से इत कड़ी सर्पों को सहन करते हो तो भी उत गय को छोड़ दो। अपने धरीर की रक्षा करो, उसे पीड़ित मत करो यदि दुष्ट तुम्हें पिय नहीं तो

काहिए, यदि तुम बुद्धों से डरते हो तो बुद्ध धर्म और तप की राहें जाओ। पाप पुण्य या प्रकृत किसी तरह के पाप कर्मों में लिप्त न होना। यदि कभी पाप कर्म का प्रकल्प किया तो जान रानी बन्ध से छुटकारा वहीं पा सकते। यदि तुम्हें कुछ नहीं कर्मों से दबी। धर्ममार्ग का अध्ययन करो। तुम्हारा बन्धन हटाना।

इन छात्रों को सुम धर ब्रह्म धर्मावलम्बी दाहाल के ज्ञान के नेत्र जैसे प्रभु होते हैं। उनके हृदय में परिवर्तन होता है। उसे अपनी मिथ्या विचारधारा का त्याग होता है। बाहरी शक्ति की प्रेरणा प्राकृतिक बुद्धि का अति महत्व है यह उसे स्पष्ट हो जाता है। दाहालदास से कोटि लाभ नहीं है। विद्याया योग मिथ्या मानकर छोड़ देना चाहिए। आन्तरिक बुद्धि ही अष्टम मार्ग है उसी के विकास में स्वस्थ मानवता का विकास हो सकता है :— ये सभी विचार लेखक ने बड़ी धृष्टता से अभिव्यक्त किए हैं।

यह नाटक विस्तृत प्रयोग है और हमारे डोस तक प्रस्तुत किए गए हैं। बाकी पुत्री  
पुर्ण के मुता से ही लेखक ने यह विचार प्रकट किए हैं, किसी भी नाटक की श्रद्धा  
जिसमें प्रस्तुत किया जाने वाला इष्ट होता है। इस नाटक में यह इष्ट को विभिन्न वर्ग  
मानों में है। बाकी पुत्री पुर्ण बुद्धिमान्यारी है। अनार्यन धर्मिक असाधारणता काहाल है।  
यह इष्ट प्रारम्भ से ही मुक्त हो जाता है। अनार्यन धर्मिक धर्म के तक उपस्थित करता  
जानता है। वह पुर्ण बुद्धिमान्य बुद्धिमान्यी मानिक है। काहाल को बुद्ध कहता है। पुर्ण  
धर्म के प्रकाश्य तकों द्वारा उन्हें काट जासती है। धीरे धीरे काहाल का प्रभुत्व समाप्त  
ही जाता है। जसका हृदय परिधतन हो जाता है। यह पुर्ण ही नाटक का मुख्य  
सौन्दर्य है।

प्रायः कर्णभट्ट के साथ गजकर्मर ने एक प्रार्थनात्मक छोटी सी घोर भी कहा इसी से जोड़ दी है। वह है अर्थात् ऐसी खेतिहारी की कहा। इसमें प्रकृत समस्या का निदान है। पूर्ण की वृत्ति बिना इनके संभव नहीं हो। पूर्ण तो वृत्त और संघ की गहरा में धाकर बीजा चढ़ा करती है। खेतिहारी पूर्णनी है कि यह हमारा मार्ग कीमत भरीया? इस पर कटु है। जो उत्तर देने के कहें प्रत्यक्ष की प्रकृत समस्या का भी निदान प्रस्तुत करता है।

बुद्धदेव का जन्म कभी व्यवहार नहीं हो सकते। स्वच्छता से व्यक्ति का निर्गुण होने देने में व्यग्रता ही कष्टदायी है। इस नई व्यवस्था के प्रयोग में स्वच्छ मानवता का विकास होया। शक्ति वास्तव के पार से हलके झुँकुर पनपें और स्वच्छ

आत्म-निर्भरता की वीरता पहचान कर समीच हों ।'

इस नाटक में धार्य मार्ग दिखाया गया है । यही नाटक का धीर्यक है । इसी बड़े-बड़े की लेखक ने प्रकट करने का प्रयत्न किया है । पूर्ण है मुख से ऐसे वाक्य कहलवाये गए हैं जो धार्य मार्ग को प्रकट करते हैं —

“ब्रह्मन्त देवता धार्य सत्य को पहचानी । पास्तवी विचारों को छोड़ दो । यदि धार्य के भय से इस कड़ा सच को सहन करते हो तो भी उस भय को छोड़ दो । अपने धीर की रक्षा करो उसे पोषित मत करो । यह ( धीर की पोषा ) धार्य मार्ग नहीं है यह बुद्ध मार्ग नहीं है ।’

तो धार्य मार्ग क्या है ? इसके उत्तर में कह सकते हैं कि धार्मिक बुद्धता और भीतरी स्वच्छता का माध्यम ही धार्य मार्ग है । जब तक मन पाप-सकल्यों और बुरे संस्कारों से मुक्त नहीं होता तब तक बुद्ध से निवृत्ति नहीं । चाहे कहीं भावो, चाहे कहीं बुरी बिना भीतरी स्वच्छता के छुटकारा नहीं हो सकता । स्वान से बहरी सारीरिक बुद्धि जैसे ही जाय, धार्मिक बुद्धि के बिना सब फिक्कल है । यह धार्मिक स्वच्छता का मार्ग ही धार्य मार्ग है । निष्कल धीर निरापद है । लेखक ने बड़ी कुशलता से इसे नाटक में चित्रित कर दिया है ।

उपसम्पत्ति ( १९५० )

इस नाटक में केवल बार पात्र हैं । एक मुख्य पात्र बुद्ध के छोड़कर दो ही अन्य पात्र हैं । सिध्दा एक पौडरी बुद्ध की बेटी है । अमरा एक मध्यमवस्था मित्रुली है तथा रोहिणी सिध्दा की दासी है । इन तीनों में मुख्य पात्र अमरा और सिध्दा ही हैं । निम्न मांगती हुई मित्रुली अमरा जगह में एक घर से दूसरे घर होती हुई बेटी सिध्दा के द्वार पर आकर कड़ी हो जाती है । सिध्दा रत्नाकरों के घर से मुक्ति से उठ पाती है और तब मित्रुली का स्वागत करती है । सिध्दा के द्वारे से उसकी परिचारिका रोहिणी एक बाड़ी का पात्र लेकर जाती है । सिध्दा पात्र लेकर मित्रुली के निम्न पात्र में उलट जाती है । अमरा मित्रुली आशीर्वादन कह कर जाना चाहती है तो सिध्दा उसे रोकती है और पूछती है कि इस जीवन-यात्रा में भी उसे धार्मिक आत्म-निर्भरता मिल रही है क्योंकि वह जीवन-यात्रा के कारण अज्ञान है । जीव-मृत्यु की ज्ञाना में उसका रोम रोम जाता जाना है । ज्ञान में बुरी हुई होने के कारण वह धार्मिक नहीं पा रही है । वह सोचती है कि जो बात उसके हाथों में धीर की रक्षा में मिल रही है, वह

मिथुली पर भी बीसनी चाहिए ।

यही नाटक का मूल विषय है । विषय-वास्तव से कैसे घटा जाय ? जीवन में भोग मृष्टा से मुक्ति पाने का क्या उपाय है ? मन को निर्विकार कैसे रखा जा सकता है ?

इसका उत्तर मिथुली धनया इस प्रकार देती है । स्वयं वह भी वास्तव के घनेक संघर्षों को नजर कर निकली है —

धनया— साक्षात्पर्य पर चलते हुए मुझे भी अपने बिल से लड़ना पड़ा है । यदि इसे बताने लय आये, तो मुझ परचरण करोगी । मिथुली-संघ में सात वर्ष रहकर भी बिहार के पवित्र वातावरण में अहोरात्र कर्मचर्चा का समतपान करके भी चिन्ता बारा कहेव से निर्मल न हो पाई । प्रत्येक पल प्रत्येक घड़ी प्रत्येक दिन प्रत्येक रात में मन के उत्पीड़न से व्याकुल रही हूँ । भोगमृष्टा से कुली, वामना के स्वप्नों में लोई, मुहूर्त भर के लिए नींद नहीं पा सकी हूँ ।

तिष्या— ऐसा ।

धनया— हाँ और इसे स्वीकार करने में मुझे कोई भय नहीं है । यह बेह तो जीवनशी से अभी तक बीछ है, विगत जीवन मिथुली के अनुभव मृष्टे भी कटु और दीर्घकाल व्यापी हैं ।

और अन्त में धनया उठे मन की शान्ति और भोगों की लुप्ता से मुक्ति का रहस्य बतलाते हुए कहती है कि निर्मल बिल ही विकारों से मुक्ति का साधन है । सत्य श्रद्धा के वातावरण से बाहर ही अपने गहन रूप में प्रस्तुत हो पता है । मनोबल से ही हम विकारों से मुक्त हो सकते हैं ।

इस उपदेश से बोझा तिष्या का हृदय-परिचलन होता है । भोग-मृष्टा और विषयों के प्रति बलका आकर्षण कम हो जाता है । उसने कीमती महोत्सव का आयोजन किया था । वहाँ से उत्तरी तीमारियाँ हो रही थीं । हजारों प्रेक्षक तिष्या को देखकर आनन्दित होने की इच्छा लपाने हुए थे । तिष्या रोहिली से कहती है कि अब कीमती महोत्सव नहीं होया । यह सुनकर रोहिली चिन्तित मुद्रा में खड़ी हो जाती है । उसे विस्मय नहीं होता कि इतना परिवर्तन अकामक तिष्या में कैसे आ गया ? वह आश्चर्य में डूबी रहती है । जाने वाली जीड़ों को इन्कार कर दिया जाता है ।

तिष्या इस निष्कर्ष पर पहुँचती है कि मिथुली धनया को सबसे बड़ा सहारा भयानक तबाहता का है । यदि वह भी उनका बरबहस्त ग्राह्य कर लके तो उसे भी श. स. ६



विकारों से शान्ति मिल सकती है। उसे कुछ बचनों में पड़ा हो जाती है। यह कुछ की धारण में घाती है। भगवान् उसे बाधीर्भाव देते हैं—

“कस्याली तुने विद्याओं का साक्षात्कार कर लिया है। तेरे पुनरात्म की छाँटी कट गई है। तू निर्मलचित्त होकर विचारण कर। तू स्थिरमति होकर बुद्धसाधन की अधिकारिणी बन।”

इस प्रकार इस नाटक में बुद्ध के बचनों और व्यक्तित्व का प्रभाव दिखाया गया है।

यह नाटक विद्याप्रदान है। बुद्ध के जीवन और सिद्धान्तों का आदर्शचरित्रक प्रभाव और ब्रह्माणियों तक पर होनेवाले प्रसर का इसमें दिग्दर्शन कराया गया है। इस समय का संकेत हमें मिश्रली धर्मशास्त्र के प्रारम्भिक बचनों में ही मिलने लगता है। यह कहती है—

“भास्वा के शासन में विराम नहीं। गति, प्रवृत्ति सुप्रति चलना ही चलना तो है। तत्वागत की बाणी तो कच्छा के समुत्थान से ही अभिविधित है। उन धारण विग्रहों की अनुपम कहलानेवाली हम तक धार्मिक सुख की प्राप्ति करने के लिए प्रतिपाद करार्य-सम है।

यही रहस्य धर्म भागे जाकर सुखती है जिससे बुद्धि की बाणी का प्रभाव स्पष्ट हो जाता है। यह विषय गंभीर है कि भी नाटककार ने इसका प्रतिपादन इस रंग से किया है कि दर्शकों और पाठकों का कौतुहल बढ़ता जाता है। एक एक कथोपकथन इसी विषय की भांगे बढ़ता है। लम्बे उपदेशात्मक कथोपकथनों को नाटक की कथावस्तु का एक घटक बना कर प्रस्तुत किया गया है। कहीं कहीं विषय की गंभीरता के कारण कुछ कथोपकथन धुरक और कठिन हो गए हैं। वैराग्य के भावों का प्राविश्य है।

यह नाटक पात्र प्रधान है। ब्रह्मा सिद्धा के मन में धारित होने की धार ही नाटककार की दृष्टि विशेष रूप से रही है। इसीलिए इस नाटक का धीरे-धीरे ‘उपसम्पदा’ उपयुक्त है।

जिसली धर्मशास्त्र के ये शब्द इस जीर्णक की उपयुक्तता स्पष्ट करते हैं—

धर्मपथ की उपसम्पदा सुगहारी जादू बोह रही है। बुद्ध के धर्मोप साधन का धारण कर तुम निर्मल चित्त बनी। धर्म धनस मुक्त और प्रलय शान्ति की अधिकारिणी हो।”

सम्पूर्ण कपासक क्षमता तिप्पा के इन हृदय-परिवर्तन ( इन उपसापरा ) में ही सम्मिलित है। अतः यह शीघ्रक उपयुक्त है और सार्वभौम भी है।

इस नाटक में नाटककार ने अरिष बिचल में विशेष कातुर्य और बीजस दिखाया है। विशेष रूप से नारी बिचल की गहराई का बिस्लेषण प्रस्तुत किया गया है। एक आलोचक ने निम्न छापीं में इस नाटक के पात्र-सृष्टि के विषय में लिखा है —

“इस नाटक के सभी पात्रों का बर्णिकरण निम्न रूप से किया जा सकता है।

१. शौचिक सुन्दरी
२. धार्मिक शौच्य पिपासु
३. सामान्य नारी पात्र

सुन्दरी तिप्पा का जीवन में संसार के सुखों की अचिताया रखने वाली सुन्दरी है। उसकी वाली रोहिणी सामान्य नारी पात्र है। वह बीसुरी महोत्सव के स्वमित होने के बीसुहस्रक कायाय बेसाधारितो निमृष्टियों में होय डूबने लग जाती है क्योंकि कहींही ही उसकी स्वामिनी तिप्पा की प्रति प्रतिष्ठित कर निर्णय बदलवा दिया है। सदाया धार्मिक एवं आनन्दत मुक्त की उपस्थिति के रूप में जाती है।

सभी में समग्र मुक्त्युर्बन्धताएँ एवं सज्जताएँ हैं। इन्हींसे वे सर्वप्रथम जानती हैं।

बिचली जनता ने अपने विभिन्न द्वारा तथा भयवान् बुद्ध के सम्पर्क से अपने को महान् बना दिया है। तो सुन्दरी तिप्पा उस साज्जत रूप की पबिका बनकर जाने की तैयारी करती है। रोहिणी सामान्य नारी पात्र है। वह अपनी स्वामिनी को समझाने के लिए बीड निमृष्टियों में होय बनानेवाली एक मुचती की लाने का निष्कल प्रयत्न करती है पर जब वह उस मुचती की लेकर जाती है तब वह भयवान् बुद्ध की शरण में सुन्दरी तिप्पा को देख कर अवाक रह जाती है। वह उन्हें कट्टापूर्वक प्रशान करती है। वह अपनी स्वामिनी की प्रतिष्ठित बीड निमृष्टी हुई होगी या नहीं, यह नहीं कहा जा सकता पर अनुमिति यह है कि वह बुद्धदेव के दर्शन से निर्मल बनकर बुद्धदेव की शरण गई होगी।

इस प्रकार इन नाटक के सभी पात्रों में सज्जता है तथा नारी मुक्त्युर्बन्धता भी। इन्हींसे वे सभीएँ एवं स्वामिनीक पात्र कहे जा सकते हैं।”

संक्षेपता की एक विचारप्रधान नाटककार हैं। उनके पौराणिक नाटकों में महान्

संभरता तथा सोचने विचारने की प्रचुर सामग्री है। उनमें कहीं भी हमका मनोरंजन नहीं पाया जाता। भारतीय मर्यादा और नैतिक मूल्यों का उन्होंने सर्वत्र ध्यान रखा है। चरित्र निर्माण और शुभ संस्कार उत्पन्न करने, अतीत की गौरवमयी परम्परा और आदर्शों को स्पष्ट करने के लिए उन्होंने अपने कुछ सम्बन्धी नाटकों का निर्माण किया है। इनमें हमें अपनी संस्कृति के वर्णन होते हैं। वे कला की आराधना 'जीवन के लिए' करते हैं। जीवन का उचित विद्या में विकास और परिष्कार ही उनका हृद्द है। यह शुद्ध परिमार्जन आकास्मिक तथा कलाकारी न होकर जलिक और स्वाभाविक हुआ है। अतः उनका साहित्य आकर्षक होने के साथ साथ उपयोगी भी है। अपने राष्ट्र के गौरवमय अतीत पर सदा उन्हें अभिमान रहा है। अपने विषयों और जीवित। महापुरुषों के प्रति सर्वत्र उन्होंने आदर की भावनाओं को संबोधित रखा है। साथ ही उन्हें अपनी सांस्कृतिक परम्पराओं पर भी गर्व रहा है। अपने को किसी रुढ़िवाद और अश्वविस्वाध से दूर रखते हुए उन्होंने जीवन को उठानेवाला नाटक साहित्य लिखा है।



## चौथा खण्ड

### सकसेना जी के बड़े नाटक

इस नाटकों के क्षेत्र में श्री संभूतदास जी सकसेना ने कई नाटक लिखे हैं जिनमें साधनापथ, बापू ने कहा का, मेघदूत इत्यादि। नाटककार की इन कला-कृतियों में श्री आदर्शमूलक दार्शनिकता का सम्मेलन है। अतीतकालीन, विशेषतः ऐतिहासिक कथानक होते हुए भी, उनमें मानव प्रकृतियों के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण में उन्हें विशेष सफलता मिली है। अत्यन्त विचारधारा भाषीय संस्कृति से प्रभावित हैं और आप आधुनिक सभी भाषों और विचारों से दूर रहे हैं। आपके नाटकों की एक बड़ी विशेषता यह है कि जहाँ अनेक लेखकों ने अपनी लेखनी का व्यर्थिकरण किया है, वहाँ प्राचीन संस्कृति और भारतीय मान्य के कथानक और अत्यन्त हीनकर आदर्शवाद की प्रतिष्ठा करते हुए आप स्वागत दुःख ही निकाले रहे हैं। अपने पौराणिक नाटकों में सकसेना जी भारतीय संस्कृति के प्राप्ति के रूप में हमारे समक्ष आते हैं। इन नाटकों में जहाँ उनका भाव-वक्त्र एवं कला-कला पूर्ण है वहाँ सांस्कृतिक विचारों का भी उत्तम विश्लेषण है। भारतीय विचारधारा और सांस्कृतिक विचारधारा का उन्होंने सदा सच्चा ध्यान रखा है। सभी विचारों से प्रभावित होते हुए भी उनमें समीक्षा और सरलता है। कष्ट-रस का उद्भव करने की सकसेना जी में स्वाभाविक प्रवृत्ति है। गीत रसों में नृत्य और वास्तव्य रसों का भी समावेश है। बड़े नाटकों में नृत्य करण और मान्य रसों का एक एक भाविक और अत्यन्त हीन प्रयोग पाया जाता है। अनेक स्वतन्त्र नृत्य कलात्मक व हृदयपरायी बन गये हैं।

### साधनापथ ऐतिहासिक नाटक

उद्देश्य तथा विचारधारा — प्रस्तुत नाटक सकसेना जी का ऐतिहासिक नाटक है। ऐतिहासिक नाटकों में मात्र तथा वैयक्तिक मान्यता का विशेष ध्यान रखा जाता है। आप ऐतिहासिक नाटककार किसी मुख्य उद्देश्य या विचारधारा को न लेता है और ऐतिहासिक पात्रों के माध्यम से उनकी उद्देश्य को स्पष्ट करता है। मुख्य पात्रों के सम्मुख में हर घेरे करने की गुंजाइश नहीं होती इसलिए वह कुछ मौलिक पात्रों

का निर्मात्र अपनी कल्पना से करता है, उनके चरित्र बिनाश में स्वतन्त्रता से काम लेता है कुछ को अपनी विशेष विचारबारा या दृष्टिकोण प्रकट करने का माध्यम (Mouthpiece) बना लेता है।

ऐतिहासिक और इतिहास एक नहीं होते। दोनों में अन्तर है। शुद्ध इतिहास में सत्य, तारीखों, व्यक्तियों और युद्धों को विशेष महत्व दिया जाता है। इतिहास की सत्यता शुष्क होती है। बर्तन भग्ने होते हुए भी रोचक और प्रभावशाली नहीं होते। आप किसी इतिहास की पुस्तक की उठा लीजिए। उनमें आपको घटनाओं का शुद्ध कल्पित और कमबख्त कथ मिल जायेगा, पर रस, भावना या रोचकता न मिलेगी। व्यक्तियों के विषय में भी केवल ऊपरी संकेत मात्र ही मिल जायगा; उनके चरित्रों की बारीकियाँ या हृदय की चकचक नहीं मिलेंगी; पात्रों की भावनाएँ प्राप्त नहीं होंगी। इतिहास और नाटक दोनों में सत्यता के दर्शन होते हैं, किन्तु इतिहास का सत्य सत्य, तारीखों और घटनाओं का सत्य है। ऐतिहासिक नाटक का सत्य उसकी भावनाओं का साम्प्रत सार्वभौमिक सत्य है जिसमें समय और काल की गति के बावजूद कोई परिवर्तन नहीं होता जो सदा एक रस है जो समीप और तम्राण है। इतिहासकार की कुछ सीमाएँ और मर्यादाएँ हैं। इतिहासकार भावना में नहीं बह सकता। उसे एक सच्चे प्रमाणित हो जानेवाले तथ्य की रक्षा करनी होती है। जो कुछ वह कहता है वह सत्य न हो चाहे या उनका प्रमाण न मिले ऐसा नहीं होना चाहिए। इसका वह बड़ा ध्यान रखता है। इसके विपरीत ऐतिहासिक नाटककार विभूत चरित्र को लेकर उसमें अपनी और से भावनाओं के रंग भरता है नए नए रसों का समावेश करता है विर्भाव इतिहास में प्राप्त करता है। कल्पना पय पय कर उसकी सहायता करती है। प्रभावोत्पादकता मार्मिकता और सरलता का उसे सदा ध्यान रखना पड़ता है। फिर भी वह यथासंभव ऐतिहासिक मर्यादाओं का ध्यान रखता है।

❧ "इतिहास के विपरीत नाटक एक साहित्यिक कलाकृति होती है जिसमें नाटककार स्वयं चरोख में रहते हुए भी किसी कला विशेष एवं उससे सम्बन्धित घटनाओं को कुछ पात्रों में मूर्तिमान कर शुष्क एवं निर्जीव इतिहास में संप्राप्तता एवं सरलता उत्पन्न करता है। सत्य एवं सुन्दर दोनों के इस व्यावहारिक समन्वय द्वारा ही ऐतिहासिक नाटक की उत्पत्ति हुई जिसके द्वारा ऐतिहासिक तथ्यों का एक कलात्मक परिवर्तन हो सका।

श्री गुनबालीनाथ बन

संकेतना जी का "सावना-पत्र" एक इतिहासिक नाटक है। वर्ष नाटककार ने प्रबन्ध में लिखा है "यह नाटक है इतिहास नहीं। इसलिए ऐतिहासिक पात्रों में कोई स्वतन्त्रता से काम लिया गया है और समय की सम्झी बाहर को धींचकर छोड़ा कर लिया गया है। नाटक की मुख्य जावना की शोक सामग्री प्रस्तुत करना ही लेखक का उद्देश्य रहा है। उसी के लिए इतिहास का भी उपयोग हुआ है।

घटा इत जति जो नाटकीय तत्वों की कसौटी पर ही बताना चाहिए इतिहास की कसौटी पर नहीं। लेखक का मुख्य उद्देश्य राजस्थान की प्रतिष्ठित कुलप्रभित कवयित्री मीराबाई के चरित्र की जावनाएँ मुख्यतः भक्ति और वैराग्य जावनाएँ प्रकट करना है। मीराबाई ही प्रमुख पात्री है। लेखक ने उसी के जीवन तथा चरित्र के विविध पहलुओं पर प्रकाश डाला है। विशेष रूप से उनकी भक्ति जावना को उभारा है। चरित्र पर प्रकाश डालने के लिए मीराबाई के प्रारम्भिक जीवन विवाहित और भक्ति वैराग्य के सब पक्षों की कलात्मक तरीके से के प्रति कर लिया गया है।

प्रारम्भिक दृश्य में ही मीरा के पितामह राव बूरा बालिका मीरा का भविष्य निम्न संघोष सुनकर कहते हैं "बाले तेरी माव भक्ति में मेहुतिवा बंध को पवित्र कर दिया है। तू मकरधन की सम्पादिका है।"

मीरा— दादा भी आज मेरे साथ घम्याव कर रहे हैं !

बूरा— नहीं तू भक्त शिरोमणि है।

मीरा— वर में किसकी गिता का कल है ? मेरा हृदय तो दादा भी धायकी ही रचना है।

बूरा— ओह ! मुझे पार है वह दिन जब उन महारथ से तू मिरबरनाल की भूति मेरे के लिए छड़ गई थी " इसके घावे बूरा कहते हैं—

“मीरा मैं धामीबाँव देता हूँ तू धविषल भक्ति की धविधारिणी हो।”

यही है मायूम होने समता कि मीरा में भक्ति वैराग्य और भीष्ट के प्रति अनन्य प्रेम की प्रभावता है। राव बूरा से ही उसे विराग की शोधा मिली है। रतनजी इसी कारण विनित भी हैं। वे मीरा से कहते हैं, बच्ची ससार का प्राण कम्पना और कबित्व नहीं संघर्ष है। मैं चाहता हूँ मायुम्य के स्थान पर वास्तविकता की किरण से तेरा हृदय धविषल हूँ।”

अन्तिम पुनारी मीरा की भक्ति साधना बीरे बीरे बढ़ती जाती है। पिता रतनजी

मीरा सता जगन्नाथार्थ विनित्त हैं । धानेवाली धापलियों का कुछ आभास हमें माता बंदाबाई के निम्न वक्तव्य से होता है —

“मैं जब पञ्चगती हूँ महाराज । उसका भावावेश, उसकी भक्ति और उसकी सम्यक्ता देखकर सभी सभी मुझे डर होने लगता है ।”

मीरा की भक्ति साधना का कनिष्ठ विकास होता जाता है । यह भक्ति भावना ही पुरे नाटक में पुष्टभूमि बन कर खड़ी हुई है । एक दर्जन से भी अधिक पात्र हैं किन्तु वे सब मीरा से सम्बद्ध हैं । जन्हीं के पावन चरित्र पर किसी न किसी बहुधा से प्रकाश डालते हैं । इस भक्ति साधना में विघ्न धाने प्रारम्भ होते हैं । बढ़ने माता पिता विनित्त होते हैं । राजकुलीन क्षत्रिय जलना के लिए इतना कुप्लवण्डि में लीन हो नम्रन पूजन मायन करना उन्हें उचित प्रतीत नहीं होता । अन्त में जब राज्य की जागडोर मेवाड़ के पृथ्वी राजकुमार ( बाद में राधा ) विष्णुमाजीत के हाथ में आती है तो वह इस भक्ति को उचित नहीं समझते । राजकुल के लिए कर्मक स्वल्प मानते हैं । नाटक के तीसरे अंक के सप्तम दृश्य में उनके चिन्तागुरु स्वल्प की सेवा का लक्ष्य है :—

“वि०— सीतोरिया कुल की राजराजिणी जब नर्तकी बनेंगी । सेवा दग्धरे है ।

( ऊनाबाई का प्रवेश )

ऊनाबाई— वही जीव । आप सभी ज्ञात नहीं हुए ?

विष्णुमाजीत— ज्ञात । मैं सुख हूँ ऊना ! मैं कप्या राज्य का बंधनपर मेवाड़ का राजा हूँ । इस कुल को अपनी धर्मालियों का धोरण है । उन अधुर्यवस्था देवियों की कीर्ति को मैं इस प्रकार कर्तव्यित होते नहीं देख सकता ।

ऊना— उनकी कीर्ति अमर रहेगी ।

विष्णुमाजीत— क्या इसी प्रकार नर्तकी और भाषिका व्यवहार ? सर्वसाधारण के सामने राजकीड़ा करके ? “ वे राजा साँवा की पुत्र बधू हैं । बिचवा होकर भी वे बंधन की मर्मादा से बंधी हैं जिसकी कीर्ति से सुमण्डल आलोकित हो रहा है ” मुझे प्राप्तक का दर्ताध्य पालन करने हो । ऊना ! बिना शासन वश के वह सुकाम ज्ञात होने का नहीं है “ मैं अपने विश्व बंधु-बंध की मान-मर्मादा में कतक लागते नहीं देख सकता “ “ ।

इसी प्रकार अपनी कृष्ण भक्ति के कारण मीरा को ब्यापारण हमझल देठा है, सर्व की माता पहनाई जानी है । ऐसी कठोरतथ परीक्षाएँ पार कर मीरा भक्तों, सामु

सम्पत्तियों में लोकप्रिय हो जाती हैं। उन्हें नामा प्रकार के कटु विरोध सहने पड़ते हैं। कठिनाइयों और आपत्तियों से लोहा लेना पड़ता है। घम्ट में वे विरघरमोपात की भूति में समा जाती हैं। सम्पूर्ण नाटक प्रेमविधानी भक्त शिरोमणि मीराबाई के साधनामय जीवन से सम्बन्धित है। प्रो० मुलबारीनाथ जन के शब्दों में, "मीरा का जीवन वस्तुतः साधनामय था। विरघर प्रेम का वह पथ जिसे उस प्रयोग ब्रह्मी ने अपने निरिष्ट लक्ष्य तक पहुँचने के लिए चुना था घटमा ही यहन एवं कटकाकीर्ण था। उन्हें भान नहीं था कि भक्तवत्सल की भक्ति में पिता की साइना तथा देवर की भर्त्सना के प्रतिरिक्त प्रहिंसक तथा विघ्नान तर करने को जिस सम्मता है, किन्तु विरघर प्रेम क प्रति उन्हें एक इहाम सम्य थी, जिसने कारणकरास विपत्तियाँ तथा भीषण परीक्षाएँ भी उसे अपने साधनामय से विवर्तित न कर सको।" प्रारम्भ से लेकर घम्ट तक मीरा के भक्तिकर्मी साधनामय का नामिक विवेचन कर सकनेवाली में एक सुन्दर आदर्शमूलक नाटक दिया है। नाटक का नामकरण ही उनके उद्देश्य का सूचक है।

कथावस्तु राजस्थान में भक्त शिरोमणि मीरा के भक्ति संगीत ■ तिराय पर घर घर गाये जाते हैं। उनसे गई प्रेरणा और एक सात्विक आनन्द प्रसन्न होता है। इतिहास इसका साक्षी है कि इस भक्ति को स्विच रचन के लिए कृष्ण जी के घेन में बीबानी मीरा को किन्तनी ही विपत्तियाँ और अग्नि परीक्षाएँ देनी पड़ी थीं। जहाँ कृष्ण आराधिका मीरा के जीवन और अरिज को कथावस्तु के रूप में चुना गया है।

लेकिन ऐतिहासिक मात्रककार प्रपञ्ची कल्पना के जल पर पुराने कथानकों में आचारमक परिवर्तन कर लेते हैं। स्वयं लेखक ने प्रारम्भ ही में यह स्पष्ट कर दिया है कि यैने ऐतिहासिक नामों में बोड़ी स्वतन्त्रता से काम लिया है और समय की बाहर को जीव कर छोटा कर लिया है। मुख्य भक्ति भावना और साधनामय जीवन ही स्पष्ट करना उनका मूल उद्देश्य रहा है। यह नाटक सहृदयों के लिए है ऐतिहासिक सत्यता और मधेयता हुकने बातों के लिए नहीं है। इतिहास में मीराबाई की कहानी का अन्तर्गत मिलता है। कहा जाता है कि भक्ति के कारण उन पर भक्ति भक्ति के अमानुषिक प्रत्याचार हुए। जीवराज ने भी अत्याचार किए। उन्हें सर्व से उत्तमाया गया और अहुर सिताया गया। लेकिन मीरा सांसारिक सुख और संकुचित मर्यादाओं में बंधी न रह सकी।



लेखक ने ऐतिहासिक कथानक में कुछ ऐसे परिवर्तन किए हैं जिससे मीराबाई की कहानी बुद्धि और तर्कसम्मत बन गई है। उन्हें विषका के रूप में दिखा दिया गया है। इससे उनकी भक्ति और बीराय की भावनाएं बुद्धि सम्मत प्रतीत होती हैं। राजा बिक्रमाजीत महाराजा सांगा के तीसरे पुत्र तथा मीरा के छोटे बंधर हैं। महाराजा की मृत्यु हो जाने और उनके दो उत्तराधिकारियों के मृत्यु को प्राप्त हो जाने पर वे सिंहासन पर विराजते हैं। लेखक ने उन्हें बल और पराकाष्ठा का प्रति प्रेमी दिखाया है। अतः मीरा के माग में व्यङ्ग्यपूर्ण उपस्थित करना और कठोरता बरतना उनके द्वारा ठीक ही मान्य होता है। वे प्रायुक्तिक विचारों के हैं। साधुओं को आश्रमभ्रष्ट समझते हैं। बिक्रमाजीत कहते हैं —

“मैं कस नहीं हूँ जो मनव्यभिक्ति का विरोध करूँ। मैं तो उस ताब-ताने का विरोधी हूँ जो प्र व्याप्तिक नहीं वासनात्मक प्रवृत्तियों को लजानेवाला है। ऐक्यी नहीं हो मन्दिर में अच्छी की भीड़। बस यह सब नष्ट ही है जब रसिक नहीं।”

इस प्रकार के सुचारवादी विचारों वाला व्यक्ति निश्चय ही यह नहीं पसन्द करेगा कि सीठोबिया कुल की राजरानियां नर्तकी बन जायें। या साधु सन्तों की संघर्ष में दिन रात व्यतीत करती रहें।

इसी प्रकार लेखक ने अपनी कल्पना से दयाराम पाण्डे का नामा करिब बढ़ा है। वह बिलौड़ का साहूण है और मीरा की भक्ति का विरोधी है। उराने पंचामृत के नाम से राजरानी मीरा को दल से बिच है दिया। लेखक ने उसे पशुवत्ता की छवि में बसता हुआ दिखाया है। वह कहता है “मैं राजा बिक्रमाजीत के लाने हूँ; मैं एक भक्त विरोधालि नारी की हत्या का नापी हूँ” — लज्जकार मैं हूँपारा हूँ। मैंने अपने स्वामी की इच्छा पूर्ति के लिए यह भीषण कृत्य किया है” मुझे मृत्युदण्ड दीजिए मृत्यु सेवा से भी कठोर पंचाला मुझे मिल मिल करके जला रही है।

इसी प्रकार मुकलास साहूण साकर लूचना देता है कि राजा भी बहुत क्रूर हुए। उत्तोजना में व्यथ होकर उन्होंने एक बड़ी भयानक बात कर डाली। “उन्होंने निर्मात्य में छिपा कर बिबधर तर्प बाई जो के पात देव दिया। अपने बलकर मुकलास ही मीरा की घटल प्रति की अर्चना करता है और कहता है —

“वरन्तु भववायु की हवा से वह लॉप कुली की माता ता निबिब हो गया। उने बहनकर से मोरास के सामने भूम भूम कर पा रहे हैं बिबात न हो मंदिर में

जाकर देख लो। मैं अपनी माँओं से बैलकर आया हूँ।

नाटक के मध्य में यज्ञ का प्रसंग और भीर भोजराम की दुःख मृत्यु के नाट्यिक प्रसंग भीरा का कथन इषावि प्रसंग सुन रूप में जोड़ दिये गए हैं। भारत में मेजर भीरा के चरित्र में ही दिनबस्ती रहता था। उसी को सर्वत्र प्रमानता दी गई है। भरत-दिरोबलि भीरा का चरित्र और जीवन स्पष्ट हो गया है। नील पात्र जैसे राज बूरा, रतनसी साया भोजराम ऊँचाई सभी भीरा के चरित्र के बिबिध बहुसुधों पर प्रकाश डालते हैं। राज बूरा के चरित्र का तो यही महत्व है कि वे भीरा के प्रारम्भिक संस्कार स्पष्ट कर देते हैं।

निष्कर्ष यह है कि इस नाटक में भावना का महत्व है। कथानक सन्निध स्पष्ट तथा सरल है। इसे भावना को स्पष्ट करने की दृष्टि से ही बनाया गया है कि वह भीरा के प्रारम्भिक जीवन से लेकर उनके सम्पर्क होने तक की सारी कथा को स्पष्ट कर दे। बिना किसी अनावश्यक कठिनाई के वह कथानक धर्मों के मन में भीरा की साधना को स्पष्ट कर देता है। इतने बड़े कथानक को इतनी श्रम परिधि में उसी सुन्दरता और भाविकता से प्रकट कर देना मेजर के कौशल का परिचायक है। एक आलोचक के शब्दों में 'भीरा के जीवन चरित्र से अनभिज्ञ बर्तक भी बिना किसी नाट्यिक कसरत के सब कुछ स्पष्ट कर सकता है। समस्त कथा में वही भी कुछ अप्रत्यक्ष अथवा उत्तमन नहीं है बल्कि एक कला है जो पति की लक्ष्यता के कारण दर्शक की कथागत की ओड़ने में सहायता करता है।' ये शब्द सत्य हैं। तत्कालीन भी कथानक निर्माता में वन हैं, क्योंकि एक विमुक्त कथा में भी अर्थात् सन्निधता स्पष्टता और रोचकता उत्पन्न कर दी है। दर्शकों और पाठकों का कीतुहल पूरी तरह भावित रहता है। प्रत्येक पढ़ना, प्रत्येक पात्र, यहाँ तक कि प्रत्येक कथोपकथन सप्रयोग्य रहते गए हैं।

पात्र और चरित्र चित्रण — ऐतिहासिक नाटक होने के कारण इसमें पात्रों की संख्या अधिक है। भीराबाई प्रमुख पात्र है शेष बाँछ। तीस पात्रों में मेरुता के पुत्र स्वामी भीरा के पितामह राज बूरा भीरा के पिता रतनसी, मेवाड़ के महाराजा साया मेवाड़ के मुखराज भोजराम और मेवाड़ के तृतीय राजकुमार बिक्रमाजीत महत्वपूर्ण हैं। इन सबका महत्व यह है कि वे भीराबाई के चरित्र से निरी महत्त्व को उजागर करते हैं। बिक्रमाजीत सलनायक का स्थान लेते हैं। अधिकार पात्र राजघरानों से ही सम्बन्धित हैं। राज बूरा रतनसी, अयमस, साया, भोजराम, रतनसिंह, बिक्रमाजीत

ऐतिहासिक पात्र हैं। इनका चरित्र विप्रलब्ध प्राधिकार में उठी कल्प में हुआ है, बीसा स्वल्प इतिहास में बखित है। यह पूर्ण एवं प्राप्यतिक है।

मैकक का कोसम और चतुर्थ कुछ ऐसे गीत पात्रों के निर्माण में हैं, जिन्हें जर्हनि कल्पना के द्वारा जन्म दिया है। ये नाम प्रत्यक्ष या वरोक्त रूप से मीरा के चरित्र के किसी पहलु पर प्रकाश डालते हैं। इन मौख पात्रों में मीरा के बचपन की दो सखियाँ रत्नाबनी तथा कंचन हैं। ये मीराबाई से बातचीत करती हैं और उनके जीवन काल के कुछ मनोभावों को प्रकाश में लाती हैं। एक घबती अपने जीवन के उर्वार समय वाली मुक्ती पर ही प्रकट कर सकती है। यही मीरा का हाल है। मीरा से जब कंचन विवाह विषय में पूछती है तो वे कहती हैं :—

मीरा—“मैं दादा जी की आत्मा को बुझा न सकूंगी। मैं बिन्दु में तिन्दु का दर्जन कक भी। मैं विवाह में उस परम सम्पत्ति को कोतू भी।”

इसी प्रकार दूसरी लहेली रत्ना से मीराबाई अपनी ईश्वरभक्ति भावतु-आराधना में तादात्म्य और तल्लीनता प्रकट करती हैं। वे रत्ना को नयनभक्ति का नम्र प्रणय करती हैं। ऊपर उनकी वैचरानी धजकबु बरि भी विवहा हो जाती है। वे भी ध्याकुल हैं। रत्ना मीरा बाई से धजकबु बरि की धमीरता का उत्प्रेषण करती है तो मीरा गम्भीर दार्शनिकतापूर्ण उत्तर देती हैं। वे कहती हैं कि ‘को सापना की भीड़ी बर जितना ही जंघा बड़ बाटा है सांसारिक मया-मोह उसे उतने ही कम सताते हैं। बहिन धजकबु बरि मैं भक्ति के पथ पर धमी वीर परा है। भक्ति के संसार में उनके वीर अभी कम नहीं पाये हैं। इसीलिए उनकी मनोवस्था अभी ऐसी है। मैं स्वयं भी क्या विचलित नहीं होती? कभी कभी मेरा भी अतहाय हृदय बारी का एक दुर्लभ हृदय बन जाता है और सारी आस्था परो की तरह डोलने लगती है।

मेड़ता के कुछ स्वामी बूबा मीरा के पितामह हैं। मीरा की प्रथमकाल में उन्हीं की दृष्टाया में पती है। उसके आरम्भिक संस्कार राव बूबा के ही दिए हुए हैं। मीरा कहती है कि उनके आरम्भिकालीन संस्कार राव बूबा की सिखा के ही कल हैं। आरम्भ से ही उनकी प्रेरणा से मीरा कृष्णभक्ति की ओर बढ़ गई थी। जब बूबा के कपड़ों से पाठकों की रक्षा की मीरा है। राव बूबा बतलाते हैं कि अनात्मक है। मीरा से ये १८

बोध को पवित्र कर दिया है। तु भक्तजन की संवादिनी है। भक्त-शिरोमणि है।" भीरा के हृदयमन्त्रित विषयक दम्ब उन्हें बहुत प्रिय हैं। वे भीरा के पर चुनकर नृत हो जाते हैं। उनके आग्रह्य भग को बड़ी शक्ति मिलती है। ब्रूवा कहते हैं कि भीरा के घरों में एक ब्रह्म बसित हुआ है। अनेक तानु-महापापों की बाणी भी ऐसा अनुभूत नहीं बात कहती जो भीरा की वाणी में है। वे भीरा के चरित्र के परिचय-बहानु को स्वयं करते हैं। नृत्यन्या पर बड़ बड़ भी भीरा के भजन सुनते हैं। उन्हें चुनकर प्राप्ति, शीतलता और मधुरता मिलती है। भजन सुनते सुनते ही शक्ति से उनके प्राण निकलते हैं।

राज दूरा के घरों से ही हमें समुद्र होता है कि शक्ति के क्षेत्र में बय का कोई साधन नहीं है। छोटी होते हुए भी भीरा शक्ति के क्षेत्र में निरन्तर अचलर होती रही। योग्यता के लिए अथवा न कोई कारण है न दरवाजा कभीही। यदि एक लक्ष्य ही तो समुद्र निर्विघ्न मार्ग पर अचलर होता रहता है और अल्पमात्र में ही उद्देश्य प्राप्त कर लेता है। छोटी क्षण में ही भीरा के घर में अथवा शक्ति की शक्तता की। सांसारिक कठोरताएं उन्हें न रोक सकी और के हृदय में लीन हो गई। भीरा को वे प्राचीनक संस्कार विचारमात्र, प्रकृतियां, वैराग्य-भावना हमें राज दूरा के आश्रय से मिलती हैं।

बुधराज और राज मेवाड़ के महाराजा हैं। वे प्रारम्भ से ही शक्ति हो जाते हैं और कह सकते हैं "अनुत्तम की व्याप्ति मुख्य शक्तता क्या नष्टर हाता से नृत हो सकेंगी, कौन जाने।" प्रथम निमग्न में वे भीरा के आध्यात्मिक जीवन और पवित्रता से बड़े प्रभावित होते हैं। वे कहते हैं "भीरा स्वर्गीय विष्णु प्रमुख है। वह विनाश की नहीं, पूजा की वस्तु है।" अपने हाता राज दूरा की आत्माशुद्धता अथवा भीरा लौकिक सामान्य जीवन में अपने को प्रस्तुत ही गई थी तथापि वह सामान्य जीवन में भी ईश्वरीय सम्मान को कोसती है।

अन्तर्गत के चरित्र द्वारा आत्मकार ने भीरा और भीराज के पारिवारिक जीवन के अनेक पहलुओं पर प्रकाश डाला है। वह अपनी बात सुलभ बातों में अपने सामान्य जीवन पर प्रकाश डालती है। स्वयं वह रति विषयक तथ्यों से अनभिज्ञ है। भीरा अन्त का समझते हुए कहती है—

"विवाह ही जाने पर समझ जायगी बातें थी। स्त्री ही अपने स्वामी के अनेक नाम जानती है। उसके लिए वे ही प्रमुख हैं। वे ही देवता हैं, वे ही पूजा हैं

ऐतिहासिक पात्र हैं। इनका चरित्र विभिन्न अधिकांश में पत्नी रूप में हुआ है, बीजा स्वल्प इतिहास में वर्णित है। वह पुरुष एवं प्रामाणिक है।

लेखक का जीवन और वातुर्ष कुछ ऐसे मौख पात्रों के निर्माण में है जिन्हें पाहूनि कम्पना के द्वारा जन्म दिया है। ये पात्र प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से मीरा के चरित्र के किसी पहलु पर प्रकाश डालते हैं। इन मौख पात्रों में मीरा के बचपन की दो लड़कियाँ रत्नाबनी तथा कंठन हैं। ये मीराबाई से बातचीत करती हैं और उनके जीवन काल के कुछ मनोभावों को प्रकाश में लाती हैं। एक युवती अपने जीवन के अपार समक्य वाली युवती पर ही प्रकट कर सकती है। यही मीरा का हास है। मीरा से जब कंठन बिबाह के विषय में पूछती है तो वे कहती हैं—

मीरा— “मैं बाबा की की आत्मा को बुझा न सकूँगी। मैं विष्णु में तिम्रु का दर्शन करूँगी। मैं बिबाह में इस परम सच्चिन्म को खोजूँगी।”

इसी प्रकार दूसरी लड़की रत्ना से मीराबाई अपनी ईश्वरभक्ति, भगवत्-आराधना में साधन्य और तस्मीयता प्रकट करती हैं। वे रत्ना को भगवद्भक्ति का स्वयं प्रकट करती हैं। जब उनकी वैभरानी भगवन्तु बरि भी बिबहा ही जाती है। वे भी ध्याकुल हैं। रत्ना मीरा बाई से भगवन्तु बरि की प्रवीरता का उत्तेजक करती है तो मीरा गम्भीर साधनिकतापूर्ण उत्तर देती हैं। वे कहती हैं कि ‘जो साधना की छोड़ी पर बितना ही ऊँचा चढ़ जाता है सांसारिक नाया मोह उसे जलने ही कम लगते हैं। बहिन भगवन्तु बरि ने भक्ति के रूप पर अभी पैर धरा है। भक्ति के संसार में उनके पैर अभी जल नहीं पाये हैं। इसीलिए उनकी मनोबधा अभी ऐसी है। मैं स्वयं भी क्या बिबहित नहीं होती? कभी कभी मेरा भी घसहाय हृदय नारी का एक दुर्बल हृदय बन जाता है और सारी साधना पल्ले की तरह जलने लगती है।

मैकुता के कुछ स्वामी बूबा मीरा के पितामह हैं। मीरा जीवकाल में उन्हीं की प्रशंसा में पत्नी हैं। उनके धारमिक संस्कार राव बूबा के ही दिए हुए हैं। मीरा कहती हैं कि उनके धारम्यकालीन सरकार राव बूबा की शिक्षा के ही कल हैं। प्रारम्भ से ही उनकी प्र रत्ना से मीरा कुप्लुभित की ओर झुक गई थी। राव बूबा के शब्दों से पाठकों और देशकों को मीरा के धारम्यकालीन जीवन तथा प्रवृत्तियों का पता चलता है। राव बूबा बतलाते हैं कि मीरा भगवन्तु है भक्तिरत में डूबी हुई है संसार के प्रति अन्यासक्त है। मीरा से वे प्रारम्भ में ही कह देते हैं “जैसे तेरी भाव भक्ति ने मैकुतिया

यय को पवित्र कर दिया है। तु जन्मम की मंदाकिनी है।" परत-निरोधी है।" बीरा के कृष्णभक्ति नियमक तन्त्र उन्हें बहुत प्रिय हैं। वे बीरा के वह सुनकर गुप्त हो जाते हैं। उनके पराक्रम यय को बड़ी धाम्ति मिलती है। बूढ़ा कहते हैं कि बीरा के ययों में एक उच्छ्वसित हृदय है। ययों के लक्षण-महात्माओं की बराबरी भी ऐसा समझ नहीं जाय सकती जो बीरा की बाली में है। वे बीरा के चरित्र के प्रतिमय-बहुत को स्पष्ट करते हैं। सुमुद्यय वर वड़े वड़े भी बीरा के भजन सुनते हैं। उन्हें सुनकर धाम्ति, दीप्तता और मकरता मिलती है। भजन सुनते सुनते ही धाम्ति से उनके प्राण निकलते हैं।

राज दूर के मनों से ही हमें मान्य होता है कि चरित्र के क्षेत्र में यय का कोई प्राप्त नहीं है। छोटी होती हुए भी बीरा धाम्ति के क्षेत्र में निरन्तर अचर ही होती रहती। योग्यता के लिए ययका न कोई समय है न एकमात्र कमीटी। यदि एक समय हो तो बहुधा विविध मार्ग पर अचर होता रहता है और अस्पष्टता में ही उद्देश्य अन्त कर देता है। छोटी आयु में ही बीरा के मन में भयवर्धनता की लानता थी। सांसारिक कठोरताएं उन्हें न रोक सकी और वे कृष्ण में लीन हो गईं। बीरा के दो प्रारम्भिक संस्कार, विचारकाय और प्रवृत्ति, वैराग्य-भावना हमें राज दूर के माध्यम से मिलती हैं।

मुकराज बीकराज मेकाड़ के महापरा है। वे प्रारम्भ से ही अर्पित हो जाते हैं और कहते हैं "अमृत्यु की प्यासी पुष्प प्राप्ता क्या मकर हस्ता से लस ही सकेगी, जीव जले।" प्रथम मितन में वे बीरा के साप्ताहिक जीवन और पवित्रता से बड़े प्रभावित होते हैं। वे कहते हैं "बीरा स्वर्गीय विष्णु कुल है। वह धितात की नहीं, पूजा की वस्तु है।" ययने राजा राज दूर की प्रजापुत्रा अर्थात् बीरा लीनिक साम्प्रदायिक ययन में ययने की प्रस्तुत हो गई थी, तथापि वह साम्प्रदायिक जीवन में भी ईश्वरीय सम्मान की ओरती है।

ज्यादाई के चरित्र द्वारा मकराज ने बीरा और बीकराज के वारिचारिक जीवन के ययों के ययुओं पर प्रकाश डाला है। वह अपनी बाल सुनभ बाती में उनके साम्प्रदायिक जीवन पर प्रकाश डालती है। ययों के यह रीति नियमक लक्ष्यों से अनभिज्ञ है। बीरा जन्म का समझते हुए कहती है—

"विवाह ही जाने पर समझ जाओगी, यही थी। यही ही अपने स्वामी के ययों के नाम जानती है। बतके लिए वे ही वृक्ष हैं। वे ही देवता हैं, वे ही पुत्र हैं।

ये ही आराध्य हैं।”

“ऊँदा— भाभी

मीरा— कबू बाई जी !

ऊँदा— भया की जी आपने यह बताया ?

मीरा— उन्हें क्या बताऊँ वे स्वयं जानते हैं।

ऊँदा— वे जानते हैं ?

मीरा— वे हृदय में मेरे रीन-रीन में रसे हुए हैं। वे क्यों न जानेंगे ? उनसे क्या छिपा है ?

ऊँदा के ये शब्द उसकी प्रेम-विषयक अनभिज्ञता स्पष्ट करते हैं, पर मीराबाई के यकीन जान के भी सुबक हैं।

राणा विजयराज की मायम से मीरा के तार्वकनिक जीवन और लोकप्रचार के मेल स्पष्ट किये गए हैं। वे सीसोदिया कुल की बंस मर्वादा के पुनारी हैं। वे इस बात से नाराज हैं कि मीराबाई विवहा हीकर कीर्तन और नतन द्वारा कुल की मर्वादा का नयों उल्लंघन कर रही हैं। मर्वादा-श्रम उनके चरित्र का प्रधान गुण है। यों व्यक्तित्व रूप से वे भक्ति को बुरा नहीं समझते। वे उस नाच गाने के विरोधी हैं जो वास्तविक प्रवृत्तियों को बगाने वाले हैं। एकान्त में वे मीरा को अपनी साधना में लगी रहने दे सकते हैं। यदि मीरा सर्वसाधारण के सामने कीर्तन करना शब्द कर में तो मीरा की भक्ति से उन्हें कोई आपत्ति नहीं है। कुछ चरित्र हीकर की विजयराज की कुछ हृदय निष्ठा चरित्र और मर्वादा-श्री की बना दिया गया है।

इन बड़े पार्श्व के प्रतिरिक्त बयाराम पान्हे बिलौड़ के एक बापूए हैं वे मीरा की भक्ति के विरोधी हैं। अपने लम्बे कामों पर इन्हें शक में बहुत बाधासाध होता है। वे कहते हैं :—

‘‘धिकरारो रत्नाबली मुझ बापी की विवहारो ! धनुताप और भ्रामि हैं क्या बहु पाप प्रसासित हो सकेया ? उसके लिए धमियाओं की चर्पा भी बोड़ी है।’’

अन्त तक बयाराम मीरा को मेबाड़ नीड बसने का आग्रह करता है पर वे नहीं जातीं। बीच मीरबामी पुनदावन के प्रसिद्ध संघर्ष मल हैं। वे रिश्वों से नहीं मिलते। मीरा उनसे कहसवाती हैं “मैं यही समझती थी कि पुनदावन में भीष्ट एक ही पुरुष बसते हैं और सभी वीवियां हैं पर आज माधुम हुआ कि यहाँ पुरुष का राज करने

जाते भी मौजूद हैं।" यह सम्बोधन कर जीव गोस्वामी को जान हो जाता है। वे मंगे पांव छोड़े हुए जाते हैं। उन्हें यह ज्ञान हो जाता है कि भगवान् को धरण में स्त्री-पुरुष समान हैं। उनके हृदय का आधारल हृद जाता है।

इस प्रकार मुख्य और वीर दोनों ही प्रकार के पात्रों का धपना धपना निम्नी महान है। प्रत्येक सामान्य निमित्त हुआ है। ध्य के किसी भी पात्र को स्वाम नहीं दिया गया है। मीराबाई और ऊनाबाई के करिगों को बड़ी कुसलता और भारीही है राज-संबंधा गया है। इनके पीछे मनोवैज्ञानिक गहराई है। मीरा के करिग के संस्र बिकास साम्प्रत्य वैराग्य हरबादि सभी भागों पर प्रकाश डाला गया है। उनके सम्बन्ध में मिलने वाले सभी ऐतिहासिक उक्तरणों का उपयोग किया गया है। उन्हें नामा परिचितियों में जान कर उनके करिग के सब गहनियों की स्पष्ट होये वा पवत्रि चिन्तित किया गया है। यदि राजा १ जगदाबाई औरमती जीव गोस्वामी द्वारा प्रकटे द्वारा ही गोल पात्र न होते तो ऐतिहासिक सत्यता और तरकातीन चरित्रवित्तिवां पूरी तरह से स्पष्ट न हो पातीं; बुजारी बाह्यल सेवक नामी दासी धर्मिक सामु सप्त, प्रसारि बाह्यल निर्माण में सहायक हैं। सब करिग-विशाल की दृष्टि से नाटक सम है।

अनिनेयता — मीरा को सम्पूर्ण करिग की नाटक में भर देना कठिन काम

१०-४० वर्षों के जीवन-काल को कितने स्टेज पर बिकसाया जाये? इसके लिए बहुत बड़ा साकार काम से कम पांच घण्टों का नाटक तो चाहिए किन्तु भी लक्ष्यता भी मे कुसलता से सम्पूर्ण कथागत की तीन घण्टों में ही संस्र कर दिया है। बहुते अक में मीरा का प्रारम्भिक जीवन संस्र विवाह और साम्प्रत्य जीवन हैं। पहले अक में जीवराज के प्रतिग उक्तरां से ही शुरू कर अक में जाने वाली कथावस्तु पर प्रकाश पड़ जाता है। वे कहते हैं कि विवाह तो हो गया परन्तु कुप्य-विशामी मीरा क्या मुक्त है प्रेम कर सकती? धनुराज की ध्यानी पुष्पात्मा क्या मदर हाता से गुल हो सकती? और कितने अक में धनैक घटनाएँ आती हैं जिनसे मीरा की भक्ति और वैराग्य प्रकट होने लगते हैं। इसीमें उनका साम्प्रत्य जीवन सुवराज जीवराज की बीमारी गुरु और भारी और उदासी छा जाती है। मीरा अद्यतन से कहती हैं —

"मैं केवल बड़ी समझ पाई हूँ कि लघुय को भगवान् को इच्छा के प्रति साम्प्र-



कुसुमों की बर्पा नहीं चाहते। ऐसे फूलों को चाहते हैं जो सचपुत्र उसे सुवासित कर सकें। मैं चाहता हूँ कि भीरा कविता का स्वर न बने सीपी लाठी गड़ की भाषा बनी रहे।

इस प्रकार हस्त्रों की संक्षिप्तता कथोपकथनों की लचीलता, पात्रों की व्यक्तिगत विशेषताएँ गेम भीतों की सरसता नाट्याभासों द्वारा पवित्र हस्त्रों हैं। मुक्ति और सरस सरस भाषा के कारण 'साधनापन' अभिनयजीन नाटक है। अधिकतर नाट्याभास एक पंक्ति के अभिप्रायपूर्ण और समर्थित हैं जिनके यह ऐतिहासिक नाटक भी मौजूदा जमाने बीता लपटा है। हस्त्रों के चित्रण, पात्रों की व्यवस्था रंगमंचीय सूचनाएँ दर्शकों को तरकालीन युग की झांकी दिखाने में सफल हुए हैं।

शैली — शैली की दृष्टि से यह नाटक प्राकृतिक नाटकों की परिष्कृत शैली का प्रस्ताव जबाहरण है। 'प्रस्ताव' की के नाटकों जसी बुझता जटिलता, निष्पत्ता या संस्कृत शास्त्रावली की प्रचुरता इसमें नहीं है। सरस और प्रचलपुर्ण भाषा के कारण यह नाटक सामिक और लोकप्रिय हो जाता है। इस और बहुत से कथोपकथन मेकक के प्रतिबिम्बों (Images) को उभारने में पुर्ण समर्थ हैं। भाषना की जिस प्युराई का लक्ष्यना भी ने भाषा में समावेश किया है वह उसका कभी पुथक न हीनेवाला लक्ष्य है।

बापू ने कहा था राजनतिक नाटक

ऐतिहासिक नाटक 'साधनापन' के अतिरिक्त लक्ष्यना भी ने सामयिक विषयों पर भी लक्ष्यना बनाई है। बापू ने कहा था 'उनका नवीनतम राजनतिक नाटक है। इसमें बापू के जीवन की अन्तिम झांकी नाटक के रूप में प्रस्तुत की गई है।

जहाँ तक कथानक का प्रश्न जाता है उसका निर्माण महत्तमा बांधी सम्बन्धी अनेक घण्टों उनके भाषणों तथा पत्रों में प्रकाशित सामग्री हैं किया गया है। तथ्यों की धुमि पर कथ्यता का अर्थ निर्माण करते समय पात्रों के जुहू से भी संवाद कहलाये गये हैं वे निर्वीर हृदय के उद्गार हैं। सत्य सामयिक व्यक्तियों की नाटक के नाम के रूप में सेना और उनको उनके अनुकूल बनाये रखना जटिल कार्य होता है। अस्थित नात्रों के सम्बन्ध में काफी धृष्ट रहती है।

इस नाटक में बापू सरदार बल्लभ भाई पटेल, जबाहरलाल नेहरू डा० आदित्य हुतेन, प्राचार्य हुपलानी डा० रामेन्द्र प्रताप नीलान्त घाजरा आदि प्रमुख नेता पात्रों के

कम में प्राप्त किए गये हैं, दीप बापू के सहायक जगन्नी दिवशी के भाषणिक, हिन्दू तिरस शरत्कार्मी नेता, मोडसे, राजकुमारी रामनकीर, बापू की लंबी लड़कियाँ, मीरा बहन, का सुजीता मैरर इत्यादि हैं। इन सबका सम्मानकित्ती न कित्ती प्रकार महात्मा जी के जीवन से रहा है। इन नामों के मुख से बड़ी बातें कहलवाई गई हैं जो उनके द्वारा कही गई हैं या उनसे निगली घाघा की जा सकती है।

नाटक की कथावस्तु १० सितम्बर १९४० के प्रारम्भ होकर १० जनवरी १९४५ कोइसे की विस्तीर्ण से महात्मा जी की मृत्यु पर समाप्त होती है। इस प्रकार निजरु ने भारत में जन जागरूकता में होने वाले वैज्ञानिकी राजनैतिक संघर्षों और माना हुलचलों का सजीव चित्रण प्रस्तुत नाटक में कर दिया है। यह भारत में बहु पुन या जब तीव्रता से देश का लड़का बदला और बड़े बेतना का जन्म हुआ। आजादी की वांछ के पश्चात् देश में जो लड़ाकू भावना वैज्ञानिक हुलाकावत लुकायी घटनाए पड़ें गुच्छापी का जो प्रत्यक्षकारी काम चला उस सबका चित्रण इस में था गया है। नाटक के दूसरे ही दृश्य में रामनर और भरतपुर से निकले हुए लोगों और शरत्कार्मियों के चिता प्राप्त और पुच्छ से भरे बेहरे दिखाई पड़ते हैं। बापू यह सब देख कर शर्म से मस्तक धुका लेते हैं। उन्हें मानवता का यह उच्छ्रान्त देखकर बड़ा दुःख होता है। बापू उन्हें समझाते हैं और कहते हैं कि समाजिक लुकाव या जाने से सरकार की कुछ करते करते नहीं बना है। हिन्दू मुसलमान दोनों का धर्म का वैदनाव छोड़कर भाई भाई की तरह रहना चाहिए। लेखक ने डॉ० आकिरकुतेन के शब्दों में यह उचित ही कहा है कि महात्मा जी हिन्दू और मुसलमान दोनों के समान रूप से धुनबिलक के। जन्म में बापू कहते हैं कि मुस्लीम में भी उन्हें हमधान की तरह रहना चाहिए।

नाटककार ने बापू की शर्मना-तना के कई शब्द लिखे हैं जिनसे महात्मा जी की विचारधारा स्पष्टता से प्रकट हो जाती है। प्रत्येक भावना में उनके ऐसे प्रतिनिधि विचार रखे गये हैं जिनसे महात्मा जी का वैज्ञानिक स्पष्ट हो जाये। नाटक में प्रत्येक राजनैतिक पक्षों के नेता की अपने विचार और विद्वान्त स्पष्टता के समीपवत् करने का पूरा पूरा प्रयत्न किया है। लड़ने धनने मर्ने का निर्धनता से प्रत्यक्षीकरण किया है। आजीवानी विचारधारा को स्पष्ट करने के लिए अधिक स्थान दिया गया। एक पक्षर से देशा जाय तो यह नाटक समाजवादी, महात्मावादी, साम्यवादी विचारधारा के साथ आजीवानी की पुस्तक है।

पार्श्वों में गांधी जी की सर्वत्र व्यापकता है। उनके चरित्र और विचारधारा को स्पष्ट करने के लिए ही कथामय का निर्माण किया गया है। वास्तव में यह नाटक पढ़कर अध्ययन करने के लिए है अभिनय के लिए नहीं। लेखक ने पाँचवीं बार का प्रस्ताव अध्ययन किया है और इस छोटे से नाटक के माध्यम से प्रकट कर दिया है। “बापू ने कहा था” नामवरण से भी यही प्रकट है कि इस नाटक में लेखक बापू की विचारधारा को अभिव्यक्त करना चाहता है। तथ्य तो यह है कि अभिनयशीलता या नाट्यकौशल की अपेक्षा नाटककार बापू की विचारधारा को ही स्पष्ट करने में सफल हुआ है। नाटक का अन्तिम दृश्य कबल दर्शन मात्र है जिससे बापू के जीवन की अन्तिम झलक मिल जाती है। मोरसे अपने पिस्तौल का बोझा बसता है एक के बाद एक तीन बीनियाँ छूटती हैं और बापू “हे राम !” कह कर मृच्छी पर गिर पड़ते हैं।

इस नाटक में लेखक ने विचारमग्न तथा गांधी हत्याकाण्ड के घृण का उच्चांगित चित्र प्रस्तुत किया है। सूक्ष्म निरीक्षण प्रतिविम्बित विचारधारा की अभिव्यक्ति और सजीवता की दृष्टि से यह नाटक सफल है। भारत की विचारधाराओं का सच्चा प्रतिबिम्ब इसमें अंकित हो गया है।

### मेघदूत रंगमञ्चीय नाटक

यह नाटक कालिदास की विद्वत्विभक्त कृति ‘मेघदूत’ का संक्षेप है अभिनय के लिए हिम्मीर का है। ‘मेघदूत’ छायांकित ध्यान और मुक्त वेदना का संस्कृत का अमर काव्य ग्रन्थ है। साहित्य और कला तथा संगीत और सौन्दर्य के संसार में सर्वत्र नामा प्रकार से मेघदूत की कथा कही और सुनी जाती है। यह चिरनवीन आर्याम है, यह अविनाशनीय है। विरह वेदना और विभवाकांक्षा इनकी पत्ति पत्ति में अन्तर्भूत है। यज्ञ में मेघ से अमृत बोझ लिया है अन्तर्गत का मेघ उनके मध्य में नहीं है। ‘मेघदूत’ अपने प्रकृति वर्णन में भी अद्वितीय है। वह कोरा प्रकृति-वर्णन न होकर प्रकृति का मानवीकरण है। प्रकृति इसमें जड़ न होकर चैतन्यवान् है। कालिदास ने अपनी अद्भुत प्रतिभा के बल पर इसमें सजीवता और चैतन्य पूरक दिया है। यज्ञ की भाव विभीकर विराटकर प्राकृतिक पराधीन के माध्यम है। महात्मा जैनिक मार्मिक तर्कों का उद्घाटन कर गए हैं। इसी प्रकार भारतीय गृहजीवन में जो कुछ धार्मिक स्पृहावीर्य और सराहनीय है उसे मेघ के समक्ष अपना संदेश विवेकान्त करते हुए कह दिया गया है।

नाट्यकार की अनुपमात सज्जना ने एक बड़े साहस का कदम यह उठाया कि

मेघदूत की कहानी को एक सजीव नाटक का रूप दे दिया। इसमें मानव पात्र तो केवल पात्र ही हैं। दूसरा पात्र कल्पित है। वह है आपाङ्ग का प्रथम मेघ। वास्तव में वह यक्ष के मन के भावों को ही प्रकाशित करने का माध्यम है। यक्ष अपनी बातों का उत्तर स्वयं ही मेघ के मुँह से प्रसन्न कर लेता है। सकसेना जी ने इसी रूप में उत्तरी प्रवृत्तारण्य की है।

नाट्यकार ने सरस और मार्मिक काव्य से स्निग्ध मधुर भाषा में यह नाट्य रूपान्तर दिया है। पद्यों में नाटक ध्यानविधोर ही उठता है। साहित्यिकता से परितुल्य इस नाटक के कथोपक्रम केर तक कल्पना में जायज रहते हैं। हृदय सजीवता सामने खड़ा हो जाता है। अनुपम की आत्मा-विरासा कुटा खेतना मिलन आकांक्षा को बिजित करने की धनुर्व क्षमता मेघदूत के पास है।

सकसेना जी ने काव्य की नाटक का रूप देकर अनुवाद के क्षेत्र में एक नया प्रयोग किया है। एक भाषा के काव्य को दूसरी भाषा के काव्य में बदल देना आसान है किन्तु उसे सजीव और मार्मिक नाटक का रूप देना सर्वथा मौलिक और नया प्रयोग है। अपने ढंग का अनुत्पूर्व है। मेघ का पात्र रूप में मान्य लेखक की मौलिक कल्पना की देन है। आलोचनात्मक कल्पना प्रसूत होने केर भी मेघदूत की पृष्ठभूमि मौलिक है। विरह निवेदन में यक्ष आत्मविस्मृत हो जाता है जैसे स्वयं मेघ ही यक्ष के हृदय की आत्मा बन कर भागों हमारे सामने खड़ा है। इस नाटकीयकरण में सकसेना जी ने अनुत्पूर्व सफलता पाई है। अनुवाद बहुत सफल हुआ है और मुल लेखक की भावना का हिन्दी नाटक के रूप में पूरी तरह उतार दिया गया है। यक्ष ॥ अन्तर्भवत् का चित्रण पूरी तरह मनोवैज्ञानिक है। यह मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि लेखक की सबसे बड़ी क्षमता है। मलवीय संविधानों और अन्तर्दृष्टि को काव्य की मधुर शैली में सफलता से उतारा गया है। इस नाटक के कथोपक्रम केर रस हैं विरह हैं और आत्मावात ही हमें आह्वान कर लेते हैं। सकसेना जी लेता कवि-हृदय लेखक ही आतिशय की आभ्योचित भावनाओं को इतनी मार्मिकता से स्पष्ट कर सकता था।

## पाँचवाँ खण्ड

### सकसेना जी के सामाजिक एकांकी

श्री हर्भूटपाल लकसेना ने देश के सामाजिक जीवन की व्याख्या अपने एकांकियों में प्रस्तुत की है, कुछ एकांकियों का सम्बन्ध चरित्र के विषय से है। चरित्र-विकास के लिए विस्तृत परिधि की आवश्यकता पड़ती है। उनक एकांकियों में कहीं कहीं मधार्चनार का साथ ध्यंग्य का अनुभूत समावेश है। कलाकार की बहरी दृष्टि सामाजिक जीवन की त्यों में पहुँची है और उसने समाज की नागा बिहू-प्राप, मन्वो बनावटी जीवन और कुठित बसावरल की स्पष्ट कर दिया है। कुछ नावकों में उनका विचारक रूप प्रकट हुआ है। इस वर्ग के एकांकियों से स्पष्ट है कि लकसेना जी ने लोके लेशों से समाज की रक्षा है, स्वयं उन्हें नागा बहू अनुभव मिले हैं बनावटी बूटे देशसेवकों से पाला पड़ा है सामाजिक संस्थाओं की बीते देखने की मिली हैं। आइये विस्तार से इन एकांकियों का प्रस्तारण देखें —

#### भनेरिया सम्पादक

इस एकांकी में पत्रकार जगन् के जीवन की ध्यंग्यमय आंकी प्रस्तुत की गई है। इसके पात्र अपने आपमें बाइक हैं। भार्गव जगन् पत्र के सम्पादक हैं नाइदा बस कार्यालय के एक कर्मी हैं मोहिया देश-सेवक के रूप में एक बूते। भार्गव अपने प्रबन्ध में कुछ लक्ष्य प्राप्त करते हैं और जनता की रक्षा या बुरा कर प्रमीरों को उनकी कुछ शरारतें या भेद-भरी बातें स्पष्ट करने का मय दिखा कर अपना पेट भरते हैं। अपने रूपर के कर्मचारियों तक को बेतन नहीं देते। जब कोई जन-सेवक पीड़ित जनता के लिए बर्बाद इत्यादि बर्बरता चाहता है, तो वह सम्पादक जी के देश में जाता जाता है। न कागजबालों का कर्ज वे पाते हैं, न बीती-पूरी की चीज जमा करते हैं। बस शानति जाते हैं। पूरे चार छी बीत व्यसित हैं। ऐसे सम्पादकों से सम्पादन जगन् बर्बरता हीठा है— यही लेखक ने चित्रित किया है।

यह एकांकी उन लयाकवित उद्गमबोली देश-सेवकों पर एक तीव्र व्यंग्य है जो

प्रपत्नी को घातक तलवार और मोटाकाय पर मजबूत का सेवक कहते हैं। किन्तु पत्नी को दिया हुआ तलवार स्वयं हथकड़ाते हैं। उनके बिस्फुट स्वयं का जाले हैं। उनके एजेन्ट मोलियाँ बाजार में लेब बेते हैं और उसका उपयोग बना लेते हैं। एकलकी की दुष्टता इस तत्व में है कि घातक तलवारें बहुतों को मारने की कलाई जुत जाती है। उनके घातकार और बोंबे का मूठ प्रकट हो जाता है। उन्हीं के बख्तर का एक अर्धतुल्य बलकें यह धिक्का व्यवहार प्रकट कर देता है।

बहु मादक मानिक और मोकर समयका पर प्रकाश बाबता है। मानिक हर प्रकार नीकरी का लोपण करना चाहते हैं। उनके प्रथिक से प्रथिक काय विकासकर कम से कम वैसे देना चाहते हैं। महीनों का बेतब बचाये रहते हैं। माहटा 'नयपुत्र' कार्यालय का एक पिता हुआ बलक है। सम्पादक इसे विकासना चाहता है। तो माहटा उससे अपना बेतब मानता है। यह हिस्सा बेकिण्ड, स्थिति को कंसा स्पष्ट कर देता है —

माहटा— आपने बुलाया है ?

भार्यक— 'नयपुत्र' का प्रथम सुन्हारी अदरत नहीं है।

माहटा— बेरी या मेरी बेबाओं की ?

भार्यक— दोनों की।

माहटा— तो मेरा हिस्सा कर दीजिए।

भार्यक— हिस्सा जोरहु तारीख की से जाला।

माहटा— वही साहब, वह नहीं हो सकता।

भार्यक— तब क्या करोगे ?

माहटा— सेवाएँ समझ, हिस्सा साफ—पाई पाई साफ। चार महीने से मेरी समझाई रही रही है।

भार्यक— मेरे बात धधी चरब नहीं हैं।

माहटा— आपके बात कमो कम्ये नहीं होंगे। इससे हमें जालना ?

भार्यक— तुम इंजीनियर सोलना के बख्तर से येमेय से बाये धीर यही क्या नहीं कराया ?

माहटा— वही जाला कराने के बाद फिर कुछ निकल सकता है ? तन्दराह घायल देना नहीं जानते। फिर तुम सामें किस ?

भार्यक— जानोगे ! जानो अपना काम करो।

‘अस्वाना— नहीं बैठ साहब । अब तो सयर एक हज़ार की हो गई । हस्या का कोई तबाद एक हज़ार से कम का कत हो सकता है घाप ही बताइये ? बन्दी करिये पुलिस आ रही है । घाप पर हस्या का चुम ।

सुराहा— ऐं ऐं— धक्का साहब ! ( बरबराते हैं )

जेबों में से मोटों का एक बकल निकाल कर काँपते हाथों से अस्वाना के ऊपर फेंकते हैं । पुलिस कांस्टेबल जिन्हे के दरवाजे पर उठे से लटकता है । बिड़की उनके हाथों में छूट जाती है । घाँकों के घायल पम्बेरा छा जाता है और वे अचेत होकर सीढ़ पर गिरते हैं ।

इस एकानकी में ध्वज के साथ हास्य का भी समावेश है । यह स्वतः सबसे हास्यपूर्ण है, जिसमें राधा का मेहतर की लड़की होना प्रकट होता है —

“अस्वाना— बैठ साहब आपकी बाही कहाँ हुई है ?

सुराहा— आपरे में पर क्यों पड़ते हैं घाप ?

अस्वाना— राधा राधा— वह तो रबिया है ।

सुराहा— क्या कहते हैं भी ?

अस्वाना— राधा ? वह रबिया किसकी लड़की है ?

सुराहा— बाँधिये की घोर किसकी ?

अस्वाना— नहीं ।

सुराहा— क्या कहा ? नहीं ?

अस्वाना— नहीं ।

सुराहा— बंधिये की नहीं ?

अस्वाना— नहीं ।

सुराहा— क्यों आपकी क्या पता ?

अस्वाना— पता है ।

सुराहा— क्या पता है ? किसकी लड़की है ?

अस्वाना— मेहतर की— हमारे बिजाना मेहतर की ।

सुराहा— ( मुँह काट कर ) ऐं ऐं ऐं ।

अस्वाना— यह है हमारे अपने मेहतर की लड़की रबिया । तीन साल से चुम है रबिया— ।”

इस एकाकी में लेखक ने पुष्पीयतियों के घात, अनेकिक, डरबोक जीवन की जिसकी जड़ें हैं : वे कई कई बिबाह करते हैं, पहिली मर जाती है। उनकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया जाता : जब कोई पुत्तीव कम्पा नहीं मिलती तो महिलाधायनों तक से सुबाति की कम्पाओं से सारी कर लेते हैं। उनका जीवन उस बचपन कम्पने में ही बना रहता है। वैवाहिक मुक्त तथा उनसे हुए भागता रहता है। उनमें वैवाहिक वैधव्य चलता रहता है। इसकी एक भाँकी इस मादक में मिल जाती है।

बचकार दूसरे की बुरी स्थिति में कसे अनुचित लाभ उठाते हैं, धरचना इसके उदाहरण हैं। उन्हें दात का अंतगड बनाने में प्रामाण्य प्राप्त है। कुछ तैत्तर से कुछ रिचता, भूट करके यहां तक कि हस्या तक की जबरों को कंठे बचा लेते हैं वह भी बिजाया है।

चरित्र बिचल की दृष्टि से भी मजक सफल है। बचकार कंठे कुटिल और बुरे होते हैं हड्डी तक में से मांस भाव लेते हैं, समाचारों से कंठे बचपन बनते हैं पस्यना इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। मराला व्यापारियों की तरह से मन्त्र-बुद्धि व्यक्ति हैं। उनके मोलेपन से पस्यना अनुचित लाभ उठाता है। वे पाव को ड्राइव के हैं और अपने अपने बलों का सक्ता प्रतिनिधित्व करते हैं। 'मैरिया सन्पादक और 'एक इजाज का बचाव' प्रति दोनो एकाकी बचकार जगत् की मौजूदा स्थितियों पर एक कठोर व्यंग्य और प्रहार करते हैं। लेखक का जट्टेय सुमारबारी है।

### विजया और बाहुरी

इस एकाकी का अन्धव्य सन्पादक-बनों की बुनियां से परिचित कराना है। इस बचप में भी क्या क्या कामे कारणों चलते हैं, कंठे चलत या कूटी जबरें ज्ञाप धाप कर कन्ता को रमा जाता है, कंठे लोकावियों की उरावा जाता है और बचपन बसुन किया जाता है— इन सबका परीक्षा लेखक ने किया है। पत्रकारिता के ओदेयन मुद्रकलोट, प्रधाचार, छोटे कर्मचारियों के झोला, और गरीबाजी पर लेखक ने कटु व्यंग्य किया है।

सन्पादक व्यक्तिगत मामलों की पक्की जबरें धापने की धयकी लेकर अनेक व्यक्तियों से बचपन हटते हैं। सनसरीलेख जबरों के बल पर ही सन्पादक बनते रहते हैं। उनमें सचार्थ, जगता की सन्पादक-बाहुरी, या दधि परिष्कार इतना नहीं होता, जिसका घरीबों का मोचल होता है। यदि संयोगवश उनके पास सक्ता नैतिक भी होता



है, तो भी कार्यालय में काम छरनवासे ( बिनाका बेतन पड़ा हुआ है ) बजराती, भुत्स, जाती इत्यादि गरीबों को न बेकर बाराब और भांग में ध्यय करते हैं ।

इस एकांकी के शर्माजी 'लोकसेवक' पत्र के सम्पादक हैं जिन्हें बिना धर्म्येन की बीतल के सम्पादकीय शिक्षण में आनन्द नहीं आता । उनके प्रधान सम्पादक भी आधुनी हैं, जो बिजया की तरंग में ही निकलने का मजा लेते हैं । मया किन् बिना इन्हें निकलने की प्रेरणा ही नहीं मिलती । मुख्य बात सम्पादक धर्मों का तो यहाँ तक विचार है कि "बिना का ऊँचे बर्जों का साहित्य बिजया और बाबली की रीत है । जब और उपनिषद् सोमरस पीनेवाले श्रद्धा महिमियों की सेतानी से ही सिधे आ सकते थे । असल बात तो यह है कि भावना और कल्पना को पैल लगाने वाली सुरों की प्रिया बाबली को छोड़कर हम सम्पादकों की कहीं बति नहीं है ।" इस एकांकी में लेखक ने छोड़ी पत्रकारिता ( Yellow Journalism ) करनेवाले कुछ सम्पादकों पर छीटाकपी की है ।

एकांकी का कथानक इस प्रकार है । शर्माजी का लोकसेवक बड़ी कठिनाता से चलता है । आर्थिक कठिनाई हमेशा बगी रहती है । लोगों का खूब चढ़ा हुआ है । टाइपवाले के पीछे बैठे हैं । फर्नीचर हाउस का रपया बकाया निकलता है । पक्का खाती बीमार है । उसका बुरा हाल है । उसका पीरो भी वे नहीं पा रहे हैं । एक प्रमीर सेठानी की बदनामी का भय बिचारकर सम्पादक भी एक हप्ता रपया छवते हैं । उनका अस्तित्व सेठानी से और बचस करना चाहता है पर बसुर सेठानी द्वारा पकड़ा जाता है । अन्त में रवेतिवार शर्माजी धर्म्यनिमित्त वाली में जापू भी को डालते हुए कहते हैं :—

"तुमने 'लोकसेवक' के प्रबल धरा पर कालिल पीतने में क्या कसर रखी ? पत्रकार का पेसा कितना ऊँचा है ( धीरे स्वयं वे उस ऊँचाई से कितने बिरे हुए हैं ) यह समझने के लिए यह पत्रकार तुम्हारे हाथ आ गया । तुमने "धाय" में काम किया "लोकसेवक" में करते हो । बड़े पत्रों में काम करने से काम बड़ा नहीं चलता । ऊँचे बाबलों पर ग्योछावर होने से ही बाबली बड़ा चलता है । मैं समझता हूँ तुम्हें अपने संवाद का धूम्य माधूम हो गया है ?"

इस एकांकी की चरम-सीमा उदा स्थान पर जाती है जहाँ स्वयं सेठानी को लड़करी लपानों को लेकर घटनास्थल पर आ जाती है । ठगी और पैसा पेंडने का

भंडाफोड़ हो जाता है। आज की समाकालिता में जो बेईमानी और भ्रष्टाचार घोषापन कम रहा है उसका धिक् इस एकांकी में जीजा गया है। गौर-शीर का विवेक करीबाने इस पवित्र देश में कितनी बेईमानी भरीबाजी भूट, मजदारी फरेज खा गया है और पत्रकार अपने देश से कितने दूर गए हैं यह स्पष्ट हो जाता है। शर्माजी गारुड़ी के प्रतिनिधि हैं आखूबी विजया ने दीवीन हैं। शर्माजी की आधुनी पर विजय बाधुली की विजया पर विजय है। यह नाटक चग्नि प्रधान है। कथानक सरल पर समाकार जीवन के सबसे हुए सिद्धांत और चरण का नम्र प्रदर्शन है। विस्मयपूर्ण अन्त से नाटक की प्रभावशालीपनता बढ़ गई है। नाट्यप्रिया की दृष्टि से मेढानी का आखूबी को पकड़ें हुए प्राप्ता सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटना है। जिस छम से घटनाएं घटित होती हैं वह पाठकों की विमर्शनी में उत्तरोत्तर वृद्धि करता है।

इस नाटक में समाकालिता का विषय प्रमुख है। संसद ने बिचाया है कि बिस्व पत्रकार को समाज की पम्बनी दूर करने का कर्तव्य है वही सुधार चाहता है। यदि पत्रकार स्वयं अपने छाप ग्याय नहीं कर सकता तो वह अपने उत्तरदायित्व को कैसे सम्भालेगा? समाज के साथ कैसे ग्याय करेगा? उससे समाज की उन्नति की क्या आशा की जा सकती है? जो सम्पादक सराब पीते हैं गरीब कर्मचारियों का शोषण करते हैं जनता को बहानाओं का ढर बिबाकर छपते हैं वे हमारी दुष्टा के पात्र होने चाहिए। उनके पत्रों का बहिष्कार ही अन्तम है। इस नाटक के ध्येय की एक विशेषता यह है कि इसका कथानक काल विस्तार की दृष्टि से बहुत कम अवधि का परन्तु प्रत्या विस्तार प्रवेसाकृत अवधि है।

### कुघटना

इस एकांकी में समाकालिता का एक दूसरा पक्ष सामने लाया गया है। साधारणतः पत्रकार जम्ह में प्राचिक कठिनाइयां चलती हैं। प्रस कम्पोजीटरों का हिसाब साफ नहीं दिया जाता। पत्रों की हासत मातृक होती है। उनके प्राहक इतने कम होते हैं कि किसी से सम्पादक मातृक और कम्पोजीटरों तक की उद्यत्पुति नहीं होती। बिबापन भी काफी नहीं मिलता। एकपुग का जब सेंट सातुकारों के बिध या रातियोंकी प्रशस्त छाप देने पर मु हमारा ग्याय मिल जाता था। जः यहीने में वर्ष भर का खर्चा निकल जाता था। जिस द्योड़ी पर साधारण को पहुँच जाते थे वही उनकी जूम मज जाती थी। वर प्राप्ता समाकालिता चाहे का सौदा है। जब तक समाजनीयेक बाबर न हो, तब तक कोई

प्रकाश की नहीं करीबता ।

इस एकांकी में केलाजी सपाक और भातिक 'संसार' मुख्य पात्र हैं। संकर, सीखा मोहन तसीर आदि गरीब कम्पोजीटर हैं। उनके पैसे खड़े हुए हैं। केलाजी बाते में हैं। इसलिए कुछ वे नहीं पाते। बड़ी परेशानी में हैं। इतने में सपाक के पकास की एक बिरल दिखाई देती है। संयोग से एक बुयटगा हो जाती है। "संसार" वज्र का बुयटगा का निकलने की संघारियां शुरू हो जाती हैं। जब दुनिया में आति भी तो "संसार" सर रहा था जब दुनिया बुयटगावस्त है, तो वह सजीबन पाता है। सपाक का सार्वजनिक नेता होते हैं रिजीड कमेटी कायम होती है रिजीड काउन्सिल का प्रस्ताव स्वीकार किया जाता है। फलतः सपाक शुरू हो जाता है। पब्लिशिंग का काम "संसार" वज्र की मिलता है। उसमें नया जीवन आ जाता है। सपाक के वज्र के सज्जन मनते हैं कि ऐसी बुयटगाएँ रोब हुआ करें जिससे उनका रोबदार बनता रहे।

लेखक ने दिखाया है कि एक की मुसीबत में से दूसरा अपनी जीविका कमाता है। हमारे समाज का निर्माण कुछ इस प्रकार का है कि बाहरी दिखावा ही अधिक होता है, सच्चा काम बहुत कम हो जाता है। सार्वजनिक कार्यकर्ता विधवा प्रदर्शन अधिक करते हैं और सच्चा काम बहुत कम। जम्मे उठाते जाते हैं पर इनके हिसाब में बड़ा मोलमान होता है। जिसके हाथ में धा जाता है बड़ी हड़प लेता है। सार्वजनिक जीवन में इस प्रकार की बीरतावादी बनती रहती है। दुपट्टा व्यवहार (Double dealing) बहुत होता है। इस सामाजिक भ्रष्टाचार पर लेखक ने व्यंग्य किया है। सपाक वज्र की हक, पीड़ा, सपाक और सीवण आदि का आतावरण अच्छी तरह निमित्त हुआ है। सपाक और निम्नवर्ग की गिरती हुई स्थिति की भी जानकारी प्राप्त हो जाती है। सार्वजनिक कार्यों में पैसे का कैसा दुरुपयोग होता है। सपाकवादी कैसे अनुचित लाभ उठाते हैं इनकी ओर लेखक ने नाटक का ध्यान आकृष्ट किया है।

### सारांशमपेशा

इस एकांकी में सपाक की जनसेवा का हास्य-व्यंग्यमय रूप प्रस्तुत किया गया है। जनसेवा के नाम पर सपाक बहुत से लोग अनुचित लाभ उठा रहे हैं और सपाक का शोषण कर रहे हैं। कहने को "नेता" कहलाते हैं, वास्तव में वे हैं सपाक और सपाक। जैसे जैसे वज्र बूझती है वे सपाकपित नेता समाज का सर्व भुसते हैं। सार्वजनिक सपाक

इनकी जेबों में बला जाता है।

लोहमलाल नगर काँच स के अध्यक्ष एक बैठ हैं। नगर काँच स के दफ्तर में बितित बैठ हैं। छोटे कमरे की कुर्सी पर कई बक्के रके हैं। उन पर धूल धाई हुई है। लाप्ता है कि एक घंटे से वे काम में नहीं लाये गए हैं। इसी प्रकार घनेछों जुलफें रखी हैं। जिन घर में लगे जाने के कारण बस जम गई है। घाम रंघावलों का लाहिरय भी एक घोर बड़ा है। इन सबके यह प्रतीत होता है कि काँच स के इन दफ्तर में तमज निष्क्रियता है। कोरा दिखावा मात्र है, ठोस काम नहीं है। इतने में हरिजन नेता रामपाल आते हैं। चुनाव पर बातचीत प्रारंभ होती है। सभी पाठियों सज्जि हो गई हैं। नगर काँच स के वे (दिखावटी) कार्यकर्ता भी बहुमुखी कार्यक्रम तय करने को संशय में आते हैं। लोहमलाल लक्ष्मीस हज्जार का बख्त घण्टों के लिए रखते हैं। चुनाव प्रचार की योजना बनती है। घण्टों का पूरा समय नगर काँच स को मिलता है। माधनूपल (लोकराज के सम्पादक) से योजना जारी जाती है। वे अपना जल्द सीमा करना चाहते हैं और यह योजना पेश करते हैं कि लोकराज प्रतिभात प्रचार घर व्यय होना चाहिए। घम में स्वागत-सत्कार मार्ग-व्यय संशय प्रतिनिधियों और नेताओं के मान-मान की व्यवस्था सकारियों का प्रत्यक्ष प्रदर्शनी जमा नवि-अभ्येसन और घनेछ पत्रों की योजनाएं बनती हैं। चुनावों तक इसी प्रकार के सभा-सम्मेलन बनाते रहने का मन रहता है। इतने में विरोधी पक्ष "बिनबारी" के सम्पादक कीठारी आ जाते हैं। उभर काशीप्रसाद और बिस्मलराम सीमेन्ट का परमिट लेने के लिए आ जाते हैं। उन्हें परमिट देना भी जरूरी है क्योंकि वे लोगों की प्रभावशाली व्यक्ति हैं। ती-ती घोट हर एक के हाथ में हैं। उन्हें कुछ करने के कारण परमिट देने पड़ते हैं। फिर वे लोप बैठे जाते हैं। इनसे बहुत सम्मेलन के लिए जम्मे के रूप में एक कासी रकम रेंजरी है। यदि इन बुद्धिद्विषों की आज्ञा न किया जायेगा, तो बहुत सम्मेलन के व्यय का पञ्चीत हज्जार कहाँ से आयेगा? इस परमिट दे दिये जाते हैं। "बिनबारी" सम्पादक कीठारी भी सराहती है। सबड़े करते हैं। नीले कोल बैठे हैं। उनका भी कुछ बन्द करवा है। एक स्थान पर वे चोरीं खींचते हुए कड़ ही डाकते हैं —

"कीठारी— घरे वारी। जगड़ते क्यों हो? पारसमूलन की दूसरों की कलम पर बघरती हैं, तो तुम दूसरों के जम्मे पर जोग हो। सेठ साहेब सर्बप व्यापार से मोटे हैं। मुसलमान की कूडे देखकर भर कर ठंके हड़कते हैं। वे काशीप्रसाद और बिस्मलराम की

कोटा और मानोपसी की तिकड़म में है। बरक़्क़ तो धूँटा सच्चा बना-बुनू कर पीछे से बेना बैठा ही घ्राप होंगे। इस समय तो बेव आसी और पेड मूका है। कोई ऐसा परमिद बिना तो ताऊ जिसे किसी बूकानवार को बेबर हजार पांच सौ हाथ लग जायें।”

सो बोरी सीमेन्ट का परमिद हरिजन कोलोनी के नाम से कटा जा। उसे ही कोठारी को बेकर उराका मुँह बन्द कर दिया जाता है। इस प्रकार भाडकदार ने दिखाया है कि ये पत्रकार लोग जो अपने को जन-नेता कहते हैं और समाज उद्धार का दम भरते हैं वास्तव में अरायमपेक्षा लोग हैं। और और मोठेरे जाई हैं। वे जनता की पर्यन पर कुरी बलाते हैं शोवण करते हैं तरह तरह के सम्मेलन कराने का स्वांग करते हैं और वास्तविक काम कुछ नहीं करते। यह जनता के प्रति कया दुर्व्यवहार है, कैसा बोखा है कांफ़्रेंस के आदर्शों के कितना बिपरीत है। नाटक के अन्त में एक स्थान पर मुसद्दीलाम कहता है —

‘तो एक बँक ‘लोकसभ’ के नाम काट कर कांफ़्रेंस के आदर्शों की रस्ता कर ली जाय।

रामपाल ध्यंय को नहीं समझ पाता। वह भीनेपन से कह बैठा है “हो काट लीजिए। प्रकृत सम्मेलन का प्रचार जायें तो आरम्भ हो।

इस प्रकार इस नाटक में सर्वत्र जनसेवकों की लुण्ठता स्वार्थवर्तता डोंप, धीपेलपबुति और ‘अवरायमपेक्षा वृत्ति’ बिछाई गई है। यदि ऐसे धोड़े व्यक्ति जनसेवा के नाम पर सार्वजनिक जीवन में घुसे रहेंगे तो जनता का क्या भला हो सकता है?

### बेधता और जामयार

इस एकांकी में सम्पादन बल में होने वाली बापली का बिचल है। रयागी की “जनसंक्ति” के सम्पादक हैं। पत्र सी बेड़ सी बिचता है पर जगहनि कूठ करैव से इस हजार की बिनी का प्राविष्ट साबिकनेट है रया है। इस हजार कोड़पत्र बेडवाने के लिए घ्राप आनन्द फार्मोसी से बचाव रुपये से लेते हैं फिर उन्हें आतानी की बूकान वर रही में बेव कर पते बना लते हैं उन्हें आनन्द फार्मोसी को अनेक गुन बलें मामूम हैं। पगही को सबके सामने लोलने की डाट बिछाकर बपया ऐंठते हैं। किमोर नामक एक मधुबक पत्रकार को बँताने हैं। रयागी की की बर्मपत्नी अपने नामा प्रचार से उचित अनुचित तरीकों से घ्रापह करती है। अन्त में किमोर भागी को के अनुरोध की रहीकार कर लेता है लेकिन कार्यालय से हर प्रकार का मूठ निराप देना चाहता है।

गह्रा रहता है "मेरे घर घर दौड़ कर 'जनजाति' के घाहक बनाऊँगा। पत्र का स्तर ऊँचा करूँगा। उसे जनता की छात्राय का माध्यम बनाऊँगा। इससे निश्चित रूप से प्राप्त रहेंगे।" वह त्वापी तो इस क्षेत्र में सांसारिक धनसम्प्राप्त हैं। भूठ, फरेब, मोहोबाजी से उन्हें कोई परहेज नहीं। वे कहते हैं—

"पत्र चलाने की आवश्यकता मुझे धार्मिक नहीं है। इस विषय में कोई मुझे सिखाये यह मेरी समझ में नहीं आता। मुझे चाहिए सहकारी को पत्र के लिए सामग्री जुटा सके। न जड़ न लीची न पिप्राम्बेविलो दुनियां यही चाहती है। नेता अक्सर, समाज के कार्यकारण कार्यकर्ता कोई भी आलोचना सुनने को तैयार नहीं।

किशोर— तो हमें पत्र बन्द कर देना चाहिए।

त्वापी जी— बन्द कर दो। कील घुसता है। इसके लिए कोई एक आंसू नहीं बिरायेगा।

किशोर— समाचार-पत्र नाम लेकर धर्मिण्यन-पत्र निकालना मेरी समझ में नहीं आता।

त्वापी जी— धर्मिण्यन ही नहीं धर्मिण्यन जी। और यह अपने लिए करना होता है। समाज में नीचता रहने के लिए यह जरूरी है।"

गाढ़क में घगत तक पहुँचते पहुँचते त्वापी जी का एक और करिदमा दिताया गया है। वे रामू कुम्हार जीवरी केतु और कामू धादि गरीबों का धोखे करते हैं। जबकी और से प्रचार करने का जालब डेकर धातीस रुपये छँठ सिते हैं। उसमें से कुछ रिश्तत दूसरों को बाँट देते हैं। किशोर धादरबाजी मुक्त है। उसे यह बार सी बीछी बतग नहीं। जबकी धात्पा बिहोइ कर छट्टी है। पत्रकार बगल की वह जितना अजडा और धादरस देता समझता था वह जतना ही गिरा हुआ और निकृष्ट देता निकलता है। वह निरपरा होकर "जनजाति" का स्तर झोड़कर बस देता है।

इस गाढ़क में भी सिकक ने सार्जनिक जीवन में पाये जाने वाले निम्नान्धनर की बील कोनी है। उसे इन प्रकार बीला देने वाले नेताओं से पूछा है। घर और बाहर के जीवन में धात्र को अन्तर का गया है, उसे स्पष्ट कर दिया गया है। इन गाढ़कों के द्वारा सिकक ने बड़ि और धाग्यविवात सम्य अणन की बीलेबाजी प्रवृत्त, धादि के निरुद्ध अणित की पृष्ठभूमि तैयार की है।

## सर्मा जी का व्यय बिल

सार्वजनिक सम्मेलनों में प्रत्येक व्यक्ति अधिक से अधिक खपता खर्चाना चाहता है। उसे यह परवाह नहीं होती कि इतने भारी भारी व्यय सम्मेलन का धर्म विभाष सम्झात भी लकेवा ? कुछ स्वार्थी व्यक्ति व्यय को इतना बढ़ा बढ़ा देते हैं कि सम्मेलन की कमर ही टूट जाती है। लोग ऐसे व्यक्तियों को सफेद हाथी कहते हैं, जो केवल देखने मान के हैं और बिगड़े पालने का बड़ा भारी खर्चा खाता है। पर काम वे कुछ नहीं करते। वास्तव में उन्हें "सफेद हाथी" कहना सत्य ही है।

इस नाटक के मुख्य पात्र सर्मा जी सम्मेलन के नए प्रकार मन्त्री हैं। उन्हें ही मैजक ने व्यय का अधिकार सौंपा है। प्रकार मन्त्री सर्मा जी के पास भर्त पर बिचार विमर्श ही रहा है। नाटक का यह भाग देखिए किन्तु व्ययपूर्ण है —

‘सर्मा जी— ( बिल पर हृष्टि डालकर ) कहां से प्रयाय घाने जाने का रेल भाड़ा चुनो, टिकती होटल व्यय पांच दिन का छाठ सो पचाहस सवा बारह घाना। दो तो खपता रोज भी तो नहीं बढ़ा।

चतुर्वेदी जी— तो बात करिये।

सर्मा जी— आप प्रयाय मन्त्री हैं यह सम्मेलन के प्रकार-मन्त्री का दात्र-बिल है। किसी खपरासी या मैजक का नहीं वह मन चुन चाहिये।

बीकित्त जी— इतना भारी व्यय सम्मेलन उठा सकेगा ?

सर्मा जी— ( व्यय से ) व्यय उठायेगा सभी सम्मेलन में सब घानेवा। आप लोग सभी तक छोटी छोटी बातों पर बढ़ते रहे हैं।

बात्रपेयी जी— इस तरह सम्मेलन कितने दिन चल लकेवा ?

इतने में सड़क पर मोटर का हार्न सुनाई देता है। नए प्रकार मन्त्री सर्मा जी प्रवेश करते हैं। उन्हें धात्रपेयी है कि मन्त्रियों के दात्रा बिल पर भी बिचार होता है। बीकित्त व्यय करते हुए कहते हैं ‘आपका व्यय-बिल आपकी सेवाओं के अनुकूल ही है पर सम्मेलन के लिए कम जारी होने से बिचार दात्रपेयी हो गया है ( हलते हैं ) इसके बाद सब धन देने लगे जाते हैं। बातावरण उरोजनापूर्ण हो जाता है। सर्मा जी तो जड़भड़की हुए निकल जाते हैं। दात्रपेयी में तु तु में में चलने लगती है। हंसावा लगे जाता है। भड़ककर सब धन जाते हैं। दात्रपेयी में सर्मा जी स्थिति को लाक करते हुए कहते हैं :—

‘ये कङ्कत ( प्रजातु सम्मेलन के मन्त्रीपल ) सम्मेलन की छतरी छोड़कर घोंर नहीं नहीं जायेंगे । विर्य्य और निर्वाचन बरान चुपके की यहां बितनी सुविधा है, बतनी नहीं है । बर्जनों बिस्म के बरो लैते हैं ये । अपने सम्मन्वियों को भीकरी बिताने हैं सम्मेलन की परीक्षाओं में बिना बापा के अपनी पुरतर्क बतवाते हैं । ये नहीं जा सकते हैं बताना— ये बरकते कङ्कत ।’

लेखक ने दिखाया है कि किस प्रकार स्वार्थी नेता सार्वजनिक सम्मेलनों में अपना मोचते हैं । बड़ बड़ कर व्यय करते हैं देश धाराम करते हैं पुस्तकें बढ़ाते हैं । यह सब इतने बड़ बड़ बातें हैं कि सम्मेलन की रीढ़ की हड्डी टूट जाती है । कुछ काम नहीं होता । ऐसे सार्वजनिक कार्यक्रमों जगता के लिए धमियाप हैं । चौक हैं । कितनी बतनी हो सके ऐसे अधवैभवायी तर्कों से बचना चाहिए ।

जहाँ न व्यापार राठरि भाया

यह एकांकी विर्य्यत धमियायी से सम्बन्ध रखता है । लेखक ने अपना मतलब प्रकट करने के लिए एक घातीयिय लोक को बताना की है जिसमें धुत बतमाए मिलती हैं और सांसारिक पतिविधियों की आलोचना करते हैं । विर्य्यतों के इस लोक में जाति पति, बर मर्यादा कितनी का भी बिचार नहीं है । यह लोक तो काम की परिमा से बंदा हुआ है । लेखक ने इसी एकांकी के साथ देश के विभिन्न हस्त दिखाये हैं और सांसारिक बतमाओं पर व्यंग्य भी किया है । कुछ उद्धरण देने से योग्य हैं —

“सिद्धि बर बर्जकर लुकात ता जटता है । बड़मझाट की आवाज होती है । बहाना हिमता है । राखा बी, बाह बी, भीलो बी बड़ बतरे को देखते हैं ।

राखा बी— क्या हो रहा है भीलो बी ?

बाह बी— प्रमद के जल की तरह यह क्या जटता है ? इसकी आवाजें नहीं से या रही हैं ?

भीलो बी— कोई बत नहीं है । अपने देश में राज्य पुनर्गठन के प्रम का निर्लभ हो रहा है ।

राखा बी— तो प्राबल प्रमों का निर्लभ इतने होइसे जटताओं और उबड़ों के बर होता है ?

भीलो बी— जगतज की बुनिया ही निरामी है । हम राजाओं और सभ्यों के



पुन के प्राणी हैं। जब प्रशनों का निर्लस्य सेनाप्ये और तसबारे ही किया करती थी। उस समय भी हो हस्ता और रोना-बोना तो मचता ही था।”

इसी प्रकार पुनाब अभियान पर भी लेखक ने इस प्रकार व्यंग्य बासु कता है :—

‘साहसी— राज्य पुनर्बलन का तबाल बीच में कहां से आ बड़ा ? यह भाषावी राज्यों का कैसा नारा है ?

भीखोबी— पुनाब अभियान का यह भी एक करन है।

राणाजी— इसी दूर बैठे हम लोगों के कानों के बसे धनी से कटे जा रहे हैं। पुनाब अभियान बासु हो जाने पर न जाने क्या होगा ?

भीखोबी— अलग्ग के रथ की बनाने का अधिकार सत्ता प्रहृत एक बहुत बड़ा प्रतीकन है। उसके लिए कुछ भी क्यों न किया जाय बीड़ा है। आज भारत का हर नागरिक राजा है। वह अपना सत्तामत्तर करने के लिए स्वतन्त्र है। उसकी उपयोगिता करने के लिए वह बड़ से बड़े सत्तिज्ञानी एम्प्लीकायर का प्रयोग कर सकता है।”

अपने देश के साथ नाटककार ने बिदर के रणमंच पर होने वाले घटना पर भी व्यंग्य किया है और अपनी सीखी घालीचना का अिहार बनाया है। एकांकी के इस प्रसंग में बिदर की राजनीति की मौखुदा हालत की क्यु घालीचना है —

( एक मन्त्रनक विरकोड से रणमंच कापता है। )

साहसी— इ गलीच और फीज की हुवाई सेना ने स्वेज पर बस क्यों धारंन की है।

भीखोबी— तो तीसरे बिदर पुन के बास्तार बन रहे हैं। हा, ईस्वर न जाने क्या होने वाला है ?

( दूसरी दिशा ॥ करबराइड, पड़ाके और बीक पुकार की आवाजें )

राणाजी— तो जबर भी कोई गया लूफान उठ रहा है।

साहसी— कुछ नहीं कुछ नहीं। कमी डंक और सेनाप्य अपना काम कर रहे हैं। वे हुंवरी के बिद्रोह को दबाने के पुन कार्य में लग्न हैं।

राणाजी— हुंवरी की इच्छा को बली नथ बसा रहे हैं भला ?

साहसी— हुंवरी एक छोटा देश है। उस महान् है। सत्तिज्ञानी है। साम्यवादी बस नहीं चाहता कि उससे बड़ोती छोटे छोटे देश तातन में अपनी स्वतन्त्र इच्छा का प्रयोग करें।

राणाजी— क्यों भला ?

घाहूजी— कमजोर लोगों की कम स्वतन्त्रता रही है ?

भीखोजी— कमजोर हीना पात्र है ?

घाहूजी— इसमें क्या संदेह ! सब समय कमजोरों को बचाया गया है ! उन्हें

भीलने नहीं दिया गया है !

रमलाजी— वरन् घाहूजी, आज तो धारणी सभ्य होने का गर्व करता है ! उसके अधिकारों को मानने के लिए मोचला पत्र बने हैं ! संयुक्तराष्ट्र संघ जैसी विश्वव्यापी संस्थाएं लोगों के अधिकारों की रक्षा के लिए काम कर रही हैं !

घाहूजी— ( उल्टे में गारो से हँसते हैं ) दुर्बलों की स्वतन्त्रता का मूल्य तो कभी नहीं था ! आज भी नहीं है । ”

मन्त्रकमार ने आज की दूषित राजनीति पर व्यंग्य किया है ! हंपरी की राजधानी की कहीं केनाएँ और डेक डेर लेते हैं ! बली घली में मुक्त होता है ! इस सम्प्रत्य का एक उदाहरण नीम्बिए :—

‘भीखोजी— तो हंपरी का जनसंहार रोका नहीं जा सका ? राष्ट्र सभ मुक्त नहीं कर सका ?

घाहूजी— जब तक राष्ट्र संघ ग्याव और कानून की कारीकियों पर विश्वास करता रहेगा तब तक कत बेकबर्छों को कुकल डालेगा !

मन्त्रकमार— इसने भापी सरकार क सभ्यों की बन्नी बना लिया है ! साम्यवादी कबार से जो बिछले बिगों परबुल कर दिया था बराकड़ कर दिया है ! उसी के नाम पर ध्वंस कार्य चल रहा है !

घाहूजी— कनी डेलाव किया जा रहा है कि कसी हंपरी की जनता के कुलामे पर प्राये हैं ! प्रतिनिधितावादी बहुरों से जसे मुक्त कराते ही उनका काम बजास हो जायेगा—

भीखोजी— छिः छिः आज की राजनीति ! छिः छिः आज की राजनीतिक भाषा ! क्या सबमुच सभ्य कुप में वे सारो बिर्बबनाएँ चल रही हैं ? ”

यह एकही आज के राजनीतिक दूष की जमेक बिजुलतल्ल एल बल्ल, कूडबोजनाएँ छोटे राष्ट्रों का कड़ों द्वारा मोचल, लानाघाहू और बिबिध घत्याचारों का बिब अवस्थित कर देता है ! लेकल ने बड़े मन्त्रकीक कोचल से राजनीतिक जनए की शत्रु मानोबना प्राप्त की है !

## यमराज भारती

इस एकांकी में भारती जी नामक 'यमभूत' पत्र के सम्पादक का व्यंग्य चित्र प्रस्तुत किया गया है। कुमुद एक धार्ष्णिकारी नया सह-सम्पादक है जो भारती जी के निम्न कोटि के हृदयबन्धों से अपरिचित है। भारती जी के हाथ में बृहस्पति हैं चुनाब छा रहा है। मजिस्ट्रो का मनोबलन कर से पत्र को बचाने की योजनाएं बनते हैं। 'यमभूत' की साम्प्रदायिकी है साठवांछ है, सरकारी विकास योजनाओं, सामोत्थान नियमों समाजविकास के अनुदान जस-जोई के बन में उनका हिस्सा है। चुनाबों में किसी भी जमींदार का प्रचार कर से वेद भरते हैं और सास जर क थक हुए कर्म बिकालते हैं। अनेक साधारण कोटि के व्यक्तियों के उन पर कर्म बड़ हुए हैं, पर से अपनी पूर्णता और बेईमानी से सब को बुझ बनाते हैं। ओपों को उनकी घसलियत का पता ही नहीं लगने पता। वे तबस्वित नेताओं को बुझते भी हैं और सब पर कुमती भी भ्रष्ट हैं। नए सैफकों से उनकी रचनाएं छापने के लिए अधिन पैता लेते हैं। धार्ष्णिकारी कुमुद भी इस विधेसे बातावरण में नहीं रह पाते। अथक जी नामक एक कवि जो भारती जी की तरह पूर्ण है उन्हें निकालकर स्वयं सह-सम्पादक की गद्दी पर बठते हैं।

इस एकांकी में सैफक ने कई स्थानों पर दिखावटी और भोखबाज पत्रकारों की कलाई कोसो है। व्यंग्य वालों से नाटक परिपूर्ण है। भारती जी ऐसे ही कुछ पत्रकारों का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनकी नीति अपना काम साम दाम दण्ड मेर बेसे भी संभव हो बेसे ही निकालने की है। उसमें नैतिकता साफ पर रक्त भी गई है। जो जिस तरह जाते में छा गया, उसे उसी तरह बीका दिया गया है। भारती जी के कुछ सकलता धूम ( यदि हम उन्हें अधिक समझें ? ) इस प्रकार हैं। उन्हीं के घरों में सुनिये—

“ब्राह्मणों का आग्रहण तो हर सात सा जाता है परन्तु पत्रकारों का आग्रहण ( चुनाब के मोके पर ) कहीं पांच सात बार भीड़ता है।

एक कथोपकथन सीजिए :—

भारती जी— “यमभूत” ( उनके पत्र का नाम ) को जिया रहना है। आप भीषों के गुलाम में जरपेद भोजन की भी व्यवस्था नहीं है। सब वहीं साठमि किए बिना काम कैसे चलेगा आप ही बताइये ?

जिबेरी जी— हमारे पास रही। विकास योजनाओं में हमारा साथ हो। चुनाबों

में हमारा प्रचार करो। यह देश सेवा का काम है। यह जनता जनार्दन का काम है।

भारती जी— आप लोग देश सेवा करके ही इतने मोठे हो रहे हैं।

मिर्चही जी— और आप तो बेमरोह कर के भी कम मोठे नहीं हैं।

ऐसा कहकर वे एक झटका करते हैं।

एक स्थान पर भारती जी कहते हैं :—

“हर रोज़ जब अपने पीछे एक सख्तबार लेकर चलना चाहता है। वह समझता है कि उसकी पाठ में उसका कारबार चलता रहेगा। उसे यह पता नहीं कि जिस नास्तरत बावत जाने पत्र की जनता में कोई पुछ नहीं होती। उसमें ऐसे तत्वों को लोग छूटा प्रचार समझते हैं।”

भारती जी— ‘लोगों को प्रतिलिखत का पता ही नहीं चलने पड़ता। खर पहन पहन कर ये देश भर्त्स में शामिल हो गये हैं। सरकारी अनुदान और सहायता की बड़ी बड़ी राशियाँ इनके ही हाथों से जाच होती हैं। इनके ही भण्ड सब जाच है। इनके प्रचारकों में भ्रष्टाचार प्रचार छपता है।

कुमुद जी— सरकार इनके प्रचार की जनता की आवाज मानने के लिए विवश होती है।

भारती जी— बही तो। इन्होंने अनेक प्रकार से अपना काल खेना रखा है। धन, संस्कृति बना, साहित्य और समाज के नाम पर इनके कारबार की इमारत खड़ी है। ऐसा कीच है जो इनसे पोछा नहीं जाता।”

गणक के अन्त में आदर्शवाद के गुहारी “यमहूत” पत्र से त्यागपत्र दे देते हैं। उन्हें पत्रकारी में जैसे हुए झट्टाबार कतई पसंद नहीं हैं। वे खुले स्वयंवादी व्यक्ति हैं। पत्रकारिता में खजाना और ईमानदारी का उच्च आदर्श उपस्थित करना चाहते हैं। इसके विपरीत प्रथक जी, जो एक प्रगतिशील कवि हैं, ‘यमहूत’ के सम्पादक होने का स्वीकार करते हैं। वे भी चार तो बीस आधी हैं। उनकी पोलिसी बैजिए :—

“प्रथक जी— मैं बनाऊँगा ‘यमहूत’। किसी को एक पैसा पारिश्रमिक न दूँगा। गये लेखकों को रचनाएं छाँवें, अपने पैसा चुँवें। मंत्रियों के बिना छाँवें। उनके प्रोचाम छाँवें। नेताओं के मुल पाऊँगा। वह सब तरीके करूँगा जिससे ‘यमहूत’ का पैर नरे और मुझे बाय बिस्वुद जाने को मिले। तुम (कुमुद जी) निकल जाओ आत्मवादी कुँवें मुझे और भारती जी की मिलकर छाँवें दो। (कुमुद जी को

देता है । )

कुमुदबी— मैं तो ब्याही रहा हूँ । इस तरह मैं मैं एक साथ भी नहीं रह सकता ।”

इस प्रकार इस नाटक में पत्रकार जगत का एक ध्वंग्यात्मक यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया गया है । लेखक ने बड़ा कटु प्रहार किया है ।

## भूचास

इस नाटक में एक सार्वजनिक महिला संस्था का काका जींचा क्या है । कर्मालय के प्रवेश द्वार पर “महिला सदन” का पट्टा लगा हुआ है पर यह किसी को मात्तुम नहीं कि उसमें क्या होता है ? उसकी कार्यकर्ताओं का कैसा चरित्र और व्यवहार है ? उनका कार्यक्रम, योजनाएँ और प्रयत्नाओ क्या क्या हैं ? वास्तव में यह महिला सदन एक प्रकार की देखने नाम की संस्था है जिसमें दिखावा बहुत अधिक है और काम बाल भी नहीं होता । सांस्कृतिक कार्यक्रम के नाम पर मूल्य संबंधी हत्यादि की भरमार होती है । लेखक ने इसमें दिखाया है कि ऐसी संस्थाओं में सार्वजनिक रुपये का दुरुपयोग होता है और हिसाब में भी बड़ा गोलमाल रहता है । महिला सदन के बाबू भी प्रायः परिवर्तहीन पाये जाते हैं । महिला केन्द्रों के कर्मचारियों को भेतन कुछ मिलता है, और हस्ताक्षर बहुत बड़ी रकम पर कराये जाते हैं । कानों की रकमों और रसीदों में भेल नहीं होता । हिसाब किताब की गोलमाल की टकने के लिए अग्य अनुचित और अनैतिक तरीके काम में लाये जाते हैं ।

इस नाटक में लेखक ने अनेक सामाजिक विषयताओं और बिभूक्तियों पर ध्यंग किया है और धनपेस बिबाह, धामुनिक मिलिताओं की अतिधम श्रु पारप्रियता धनीर अफसरों की बबान पत्नियों का निठस्ता जीवन मूल्यसंबंधी भादि की बड़ती हुई सामाजिक व्याधि हत्यादि । वो एक उदाहरण सीधिए :—

सतीजा साहब की पत्नी उनकी दूसरी बिबाहिता है । इस बने कार उन्हें तो बफ्तर में छोड़ देती है । फिर वो धामाव हैं कि कहीं कार्य बाल भी करें । निठलती पड़ी पड़ी श्रु गार प्रमान उपगमास पड़ती रहें या महिला-सदन के पांच केन्द्रों में मूल्य-संबंधी की कलाओं का निरीक्षण करती रहें ।

धीमती सतीजा कहती हैं— उनकी ( पतिदेव की ) बिस्ता मन करो महिन ओ । ये बड़े ओसे हैं । कभी रोचते नहीं । घुएने पर हंसकर कह देते हैं मैं

मानता हूँ 'वह लो जोड़ दूसरी घड़ी जितना गावे उतना बोड़ी।'

इस पर पूरुबिबी का जवाब सुनिये—

पूरुबिबी— तुम बड़ी भाग्यवांसीनी हो। वहाँ तो बस

धीमती सतीजा— ( निराशानिवाह ) कहो बहो बहिन जी तुम्हें पैरी कस्तन।

पूरुबिबी— मैं तो कहती हूँ 'वह लो जोड़ दूसरी घड़ी जितना गावे उतना बोड़ी।'

उतको कीमत नहीं होती। गृहस्थी के कोमल में बीन की तरह कुते रह कर भी उसे क्या मिलता है ?

धीमती सतीजा— तब तो मैं बचपनी हूँ।

पूरुबिबी— जाय बर्जा।

धीमती सतीजा— लठेरी बहिन मुझे से भी अधिक ?

पूरुबिबी— घरे हाँ वह तीसरी है कि चौथी ?

धीमती सतीजा— घामर चौथी।

पूरुबिबी— तभी तो कोमल की तरह टूटती रहती है। मधुरी की तरह नाचती चलती है। कोई हस्तरसे बाकी नहीं। कोई इच्छार्थ रोच नहीं। बी चाहती है कर पुनरुत्थी है। कोई हाथ पकड़ने वाला नहीं।

धीमती सतीजा— वहीना सबन में बचने उधार के लिए जाती है। पूरुबिबी से वह कहती है कि उनका बेधा आजकल चलता नहीं। कारण ?

धीमती सतीजा— हमारा पैसा जिन गया है। आज घर घर में कँचन की लड़क लड़क और नृत्य-गीत पहुँच गया है। जिसके लिए लोग हमारे बाव घाटे के वह सब कहें घर में ही मिन जाता है। समाज ने ही हमें बनाया है, वही हमें बजाइ रहा है। यही कटिबन्ध लेकर मैं बापक पात धार्य हूँ।

पूरुबिबी— वालिर तुम क्या चाहती हो ?

धीमती सतीजा— यदि यह काम बुरा है तो घर की बहू बैदियों को उलते बजाओ। उन्हें तिलनियाँ न बचने दो। उन्हें पंडित को पुतलियाँ बनने से रोको। नृत्य गीत की नाचक बाइली पिला कर उन्हें प्रबोधित न करो। बेध्या के नाच को उठा दिया गया है, घर घर की बहू बैदियों को नचाने लगे। इससे हम घर रहती हूँ।'

पूरुबिबी का निम्न वक्तव्य हमारे धार्मिक समाज की एक कटु पर सच्ची धामोचना है —

“हमारे धर्म के जीवन में साज भू गार अनावश्यक रूप से बढ़ गया है। आज कोई भी आयोजन बहु-वेतियों को नचाये बिना सम्पन्न नहीं होता। प्रतिदिन घाये तो नाच अधिकारी घाये तो नाच नेता घाये तो नाच। हमारी संस्कृति जैसे नाच पानों की ही संस्कृति हो। बागिकाएँ नाचती हैं किछोरियाँ नाचती हैं। बालाएँ नाचती हैं। सालाघों आभनों और संस्वाघों में सभी जगह तबला सारंगी पड़क उठते हैं। दूरव संकीर्ण की कक्षाएँ पड़काने कुल नहीं हैं। नगर नगर में लीनेबाघर हो गए हैं— यह भयानक सङ्गमारी है। हमारे मुँह की प्रतिदिन इसी बात में होती है कि वे लड़कियों को कितना धिक्कते हैं।”

महिला सदन में एहने नामे बाबू पंढरचर्चन का चरित्र नीचे लिखे अवतारण से मान्य किया जा सकता है—

‘बम्पादेवी— बाबू, तुम बेलन में भोजे लगते हो पर ही बड़े जातिन।

पंढरचर्चन— मैंने क्या जुर्म किया है ?

बम्पादेवी— धूम गये कितनी सल्ल मिरह की भी घन्नी ?

पंढरचर्चन— ओह वह तो प्यार का प्रदर्शन था।

बम्पादेवी— प्यार ऐसे जाताया जाता है ?

पंढरचर्चन— तुम्हें संभारों के प्यार का अनुभव है। वे सीधा साधा लड़मार प्यार करते हैं। हम बाबुओं का प्यार भावा की कलाबाजी से और भी भीटा हो जाता है समझी ?

( पंढरचर्चन के गाल में ठग गी गड़ना है )

बम्पादेवी— तुम महिला सदन के बाबू एहने सायक नहीं हो। तुम घुरे मोहवे हो।

पंढरचर्चन— तुम कुछ भी कहो। आज से मुझे तुम्हारी अध्यक्षता के याल में भी ब गली नङ्गाने का अधिकार मिला गया है।’

हिसाब मिरिसकों को प्रस्तुत करने के लिए पुरुषिणी अपनी मान प्रतिष्ठा तक की कोई परबाह नहीं करती। अपनी १५-१२ वर्ष की मुबती कम्पा को नृत्य के लिए तैयार करती हैं और जब वह सज्जा के कारण नहीं जाती तो उसे झिड़कते हुए ऐसे बन्दु धमक कह आसती हैं, जो आज की प्रसिद्ध नारी के ऊपर सबसे बड़ा धर्म्य है :—

बिद्यापरी— ( कम्पा अपनी माया से ) तो तुम जाकर नाची न घन्नी। रिश्ताघो पण्डे।

पुसबिबी— ( आदेश से कापटी हुई ) कुसी कहीं की । सोकर का जो बहलाने में तेरा मान नहीं बढ़ता । शर्म तेरी शर्म देखती हूँ । ”

यह कहकर वह अपनी कुसी को बकाशा देती है ।

इस प्रकार यह भावक भाव के सम्यक् भाव का वर्णन है, जिसमें हम प्राथमिक सिद्धि समाज की बिह्वलताओं और कमजोरियों के लक्ष्ये विन पाते हैं । समाज का बीबा बेहद नाजुक है । उससे इतने निर्दय दमक अंतरवाक बीबा काटे, घात फुट और जहरीली बातें सुन ली हैं । समाज की व्यवस्था और कम का बदलते हुए हमें इन बुरियों से सदा सावधान रहना चाहिए । समाज को संस्थाएं बन रही हैं उनकी बर्तों के पीछे क्या क्या होता है, इनका हमें सदा सर्वदा ध्यान रखना चाहिए । बनावटीपन, अप्रत्यक्ष, बोली कुबिलता और फुटा धाड़पन किसी भी समाज की बुनियादों को ध्वस्त करने के लिए काफी है । नई पीढ़ी में जो अंतरवाक बिबीने फोड़ उत्पन्न हो गए हैं, जो समाज के समूहों की ओर से सदा देने के लिए काफी हैं अन्तों से अन्तों दूर होने चाहिए । अति प्राथमिक समाज में जो बिह्वलताएं पैदा हो गई हैं लेशक ने उनकी ओर से हमें सावधान कर दिया है । जिस व्यक्ति ने ही इस समाज का बातावरण सुनिश्चित कर दिया है, उन्हें निश्चित करना चाहिए ।

### भाषा का कवि

इस प्रकार की कवि-सम्मेलन में पवारनेवाले नामा बुद्धिमान समाजवादियों के कविओं के सम्यक् विन प्रस्तुत किए गए हैं । कवि लोगों की भावों, समाज की पतनशीलता का कारण व्यवहार, पालनान अन्तर्गत होता है वह करि-सम्मेलन के संयोजक के लिए एक बिर बर्त बन जाता है । कवि लोग अन्तर्गत बन्दे हैं अन्तर्गत भावों के बिर करते हैं । जिसके लिए कवि-सम्मेलन को अंतरवाक बन करने का काम बड़ जाता है, उस पर ही भावों एक बाधता ही था जाती है । कविओं और पंडितों का अन्तर्गत बुद्धिमान से जिसके ऊपर पड़ जाता है, वह बाधता है । वे लोग अपने अन्तर्गत में ही बन्दे लक्ष्य हैं, व्यवहारिक जीवन में नहीं, पारिवारिक पुरस्कार, पैतृ और भाई व्यवस्था के रूप में जो कवि लोग बड़ी बड़ी भावों पैदा करते हैं । सम्मेलनों की अध्यक्षता के विषय की लेकर भी वे कभी कभी बड़े विरोध बड़ कर देते हैं ।

अन्तर्गत कवि हैं आदेश बुद्धि —

‘अन्तर्गत कवि— ही भावों की धृष्टि कर पाता और सदा केर जाता है । कवि



सकड़ के घाये तुम्हारे सारे कवि तुम्हारे हैं। हा हा हा ! हम किसी की भी सम्मति में कविता तुम्हारे की तैयार हैं। कहो तो अभी तुम्हारे। धातु कवि हैं हम। कहो तो तुम्हारे सारी रात और दिन इसी तरह इसी गति से, बिना पुरस्कार, बिना पारिभिक, बिना भेंट के ? बात याबा और भलाई की धाराबना में अपनी तरसती प्रसन्न है। इसके प्रतिरिक्त सकड़ की और कुछ भी नहीं चाहिए।

बंभु कवि—( गला फड़ककर ) चुप करो। सामन्ती-बरबार का बन्दुकार कवि। सामुन पड़ता है मार्क्सवाद नहीं पड़ा है इसने। नये जमाने के प्रगतिशील साहित्य से सर्वथा अनजान है। क्या इस तरह के कवियों को सब पर स्वागत मिलेगा ?

कंकाल जी—क्या सबका ठीका क्यों से रहे हैं ? लोक साहित्य और लोक संस्कृति की अपने हँस में चलने क्यों नहीं देते ? उन्हें बाँधों की स्याही से क्यों लाला करते हो ?

बंभु कवि—अच्छा भगवान पड़ जाओ बैठ। कितनी ही चिड़ता फाँटो पर सम्भावित तुम्हारे हाथ नहीं धाने का।

कंकाल जी—यह तुम्हें भी मसीह नहीं होने का। झाँझलीगर के यहाँ कमड़ से घाये हो। वे पुनः नये होंगे। जाओ जाकर से लो। किस संयोजक जी के नाम बनवा देना। सतक रहना कथित और व्यक्तिगत किसी का भी शोषण न होने पार्वे।

बंभु कवि—( अवगम्य अनुसंधान ) साधितो इस प्रतिक्रियाकारी का मुह बन्द करना होगा।

दो तीन नवयुवक कवि तत्काल उठकर कंकाल जी पर अध्यस्त हैं और उनका गला बचाते हैं। सकड़ कवि तान डीकता है और विद्यामंदिर के मन्त्री लोमेश्वर, जो एक अनुमती साहित्यकार हैं बड़ा तान कर कहते हैं छोड़ो छोड़ो यह विद्यामंदिर का साहित्य-कक्ष है। यहाँ बस प्रयोग सर्वथा वर्जित है।' बाँधों और हुनामा सब बाँधता है।

इस नाटक में कवियों का व्यक्तित्व और काव्य अथवा काम करनेवालों की दीक्षावेद की गई है। लेखक ने विद्याया है कि उनकी यावत् कौंसी बेहूदा होती है और वे कौंसी धनपल बातें किया करते हैं। सीधी तरह न लाते पीते हैं न व्यवहार करते हैं। कोई माँठ मछली की माँग करता है कोई विजया तो बाँधें भारतीय को कोई बाँध काँधे भलाई भाँग इत्यादि की। एक ओर परागत कवि जो गिहस्की और बाँधी के लिए हाथ

सीमा मचा रहे हैं तो दूसरी ओर कवि काल भी मांस मसली के बिना एक कौर भी होवने को तैयार नहीं हैं। हमारे कवियों ने शिव जी की बरसात को भी मांस कर दिया है। इसी पर यह कब ध्याय है।

### सकसेना जी की साधारणत मान्यताएं

समाज-सुधार के क्षेत्र में सकसेना जी उन तत्वों को दूर करना चाहते हैं, जो समाज को धुन की तरह का रहे हैं और जिसे समाज का विकास धक्का खा हो गया है। ये समाज के विद्रुप के एकांकी हैं। जिनके कुछ पात्रों में हम अपने इवेंगिल बताते फिरते वाले व्यक्तिओं के प्रतिबिम्ब देखते हैं। ये लोग मुंह पर बघावटी बेहरे लगते हुए हैं और समाज को बीका दे रहे हैं। सार्वजनिक जीवन में ऐसे दृष्टान्तकारी व्यक्तियों की कमी नहीं है जो कुपचाप समाज विरोधी प्रवृत्तियों में लगे हुए जनता का अपेक्षा कर रहे हैं। हमारी सामाजिक संस्थाएं निम्ना प्रदर्शन में लगी हुई हैं। वे दिखाती बहुत हैं, जोश काम बहुत कम करती हैं। कई परिस्थितियों में यदि हम लम्बाई और ईमानदारी से काम करना चाहते हैं, तो हमें समाज के इन दुर्मित बीटाछुओं को निरासता होना। **॥** संस्थानों और स्वतंत्र सार्वजनिक जीवन के तथा कार्यकर्ताओं के लिए आवश्यक यह है कि व्यक्ति जनता के प्रति अपने दम को बर्तने और लम्बाई ईमानदारी, और लम्बी सेवा को सर्वोपरि समझे। समाज की उन्नति को प्रथम महत्व दे। बीरे बीरे अपने बसते हुए इच्छिकोला को अपने व्यवहार में लम्बाई के साथ समाविष्ट करे। धृति प्राप्तिविष्ठा से बने और पाठ्यक्रम संस्कृति का प्राप्ताभूकरण न करे। प्राप्तिविष्ठा में तब कुछ सम्पदा ही सम्पदा नहीं है। हमें तब बुद्धियों और करारियों को गुरमत्त्व देना चाहिए इनी में हमारे समाज की जलाई है। समाज के इन जहरीले बीटाछुओं को बस्ती से बस्ती समाज-दरीर में से निरासता करना चाहिए। नीतिक धूमों के साथ नीतिक और प्राप्तिविष्ठा धूमों का समन्वय होना निरासता आवश्यक है।

### नए एकांकी मुक्ति का प्रश्न

इस सामाजिक एकांकी में लेखक ने दिखाया है कि समाज के समाज में अनुप्य विविध बन्धनों में जकड़ा हुआ है। समाज के सामाजिक जीवन में हम पर नए आधारित सम्पदा, संस्थाओं, नियमों अनुपातन और समाज का नियंत्रण है। कभी कभी अनुप्य इन बन्धनों से तिलमिला उठता है। उसकी प्रश्ना इन्से टूटने को जुरी तरह दृष्टमता

पड़ती है। उसे मुक्ति की परख चाह है और वह इसी के लिए सतत प्रयत्नशील है। इस सर्वतोमुखी आत्मा की भावना को इस दुकाँची में स्पष्ट किया गया है।

अमानक घरल सा है। ईसाय घर का अभिवाहित सासिक है उसके घर में बेला नामक बारी रहती है जिसका बुनिया में कोई नहीं है। ईसाय के घर की बेलायत का कार्य उसकी सम्बन्धित एक धुआ बारी करती है। बेला उस परिवार के बच्चों से परेमान है क्योंकि कोई उसे प्यार नुसार नहीं करता। उसकी आत्म-प्रतिष्ठा पर पय पय पर ठेस पहुँचती है। वह परिवार से बच निकलने के लिए धातुर है। संयोग से बेतुके बेलाय, कड़े-पुराने बेरीबक कपड़े पहिने एक अजनबी आकर द्वार की कुन्डी सदसटाता है। बेला काम छोड़कर घाती है और कुन्डी खोल देती है। आनन्दुष जते अपनी आत्मबीज से प्रभावित करता है सहानुभूति दिखाता है मुक्ति की सम्भावनाएँ प्रस्तुत करता है। कमस्वल्प वह घर से भाग निकलती है और इस प्रकार मुक्ति का दर्शन करती है।

आनन्दुष एक प्रकार का प्रतीक (Symbol) है जो मुक्ति का दर्शन कराता है। वह मुक्ति दिवाने का एक साधन है। जिनगी में कभी कभी ऐसे अवसर आते हैं जिनसे आत्मा की प्रज्ञा होने में बड़ी सहायता मिलती है।

इस दुकाँची का सबसे आनन्दुष रचल वह है जहाँ ईसाय और उसकी बूढ़ी बारी उसे रोकते हैं परन्तु वह उनसे लकरी नहीं कुछ जीवन की ओर आग्रह होती ही जाती है। मानो मनुष्य की आत्मा समस्त सांसारिक बच्चों का परिचय कर मुक्ति की ओर बढ़ रही हो। इस दुकाँची में धरत तक पहुँचते पहुँचते बड़ा सुन्दर परिवर्तन आता है जो अभिवाहित है। इसलिए—

“बारी— तुम्हारी बारी मां गारक करना नहीं जानती है बेला।

ईसाय— तो साफ साफ क्यों नहीं बोसतीं ?

बारी— क्या बीनूँ ?

बेला— ( अमानक ) वह बी न बारी।

बारी— क्या वह बूँ ? वह बूँ कि निकस जा ?

बेला— वह बी हाँ कह बी।

बारी— तब तुम्हें जाना पड़ेगा। कहीं जायगी ?

बेला— उस उगमुक संगीत की कोश में जो बुधबाप बसता थाते ही कोयल के  
 कंठ से पूर बढ़ता है। उसने मुझे बचन दिया है। वह मुझे ले जायगा।  
 कलाम— वह कौन ?

बेला— बाबगुल ? ओह कितना घमण्ड है वह। वह बांयता नहीं वह मुक्ति  
 देता है। बाबाजी बेला है।  
 बामी— कलाम।  
 कलाम— बामी।

बेला— मैं का रही हूँ। नती जाने जंगल पहाड़ सागर, मस्बल सभी मुझे  
 बुला रहे हैं। वह सब सब जाता है। सब सब उसका स्वागत होता है।  
 कलाम— तुम नहीं का सकती। कोई बहुकार मुझे नहीं लेजा सकता।

बेला— मैं जानूँगी। मैं जन्म में नहीं रह सकती। घर का जन्म बाहरल  
 का जन्म सम्यता का जन्म सम्भावों का जन्म, नियमों का जन्म अनुशासन का  
 जन्म समाज का जन्म — मैं नहीं रह सकती मैं नहीं सह सकती। मैं अपने समय  
 का सद्बुधोप कक बी। अपनी सबहूँ वर्णपाठ के उपलक्ष में उस बाबाजी का बापल  
 कक बी।

( एक एक कर सारी जालें फँकती है )

बामी— ( भीषककी सी देखती है ) तुफान मचा वह कलाम तुफान है ?  
 कलाम— बेला बता ( उत्पलर स्तर बढ़ता जाता है ) बबरबार, यह सब नहीं  
 ल सकता। मैं मुझे इस घर की रानी बनाऊँगी। तेरे साथ ब्याह रबाऊँगी।  
 ( बेला की धार बढ़ता है )

बेला— नहीं मेरा उत्तर है नहीं। मैं तुम्हारे बिना के से पूणा करती हूँ। मैं  
 तुम्हारे घर की लाला मारती हूँ।  
 और यह कहकर वह बांध से मेज की मुडका देती है। लैप सहित मेज पिरती है।

घर में धाम्बेरा मचा जाता है। बेला धाम्बेरे में डार से निकल जाती है मानी समुध्य की  
 धार का समय सांसारिक जन्मों को छोड़ती हुई उगमुक ही जाती है। उसे कोई भी  
 बाधित प्रलोभन रोक नहीं जाता। इस प्रकार लेखक ने प्रतीक रूप में बाबाजी का डार  
 स्पष्ट किया है।

तो है वो एक धर्मो जमीन लौट आयेगी। हम फिर उसमें हल बतायेंगे, सत्ताइस साल के बाद। पर इधारी ठेक का क्या होगा? वह तो पूरी नहीं होगी। वह तो सच्चा-स्वराज्य घाने पर ही पूरी होगेवाली थी।

कागहा जी— ( स्तब्ध ) घोर तब—

पाँचा काका— घोर तब मेरी घोर से चलने मित्रों स्नेहियों नेताओं और बापु को लिखा, जब प्रजा पुनित की सहायता लिए बिना रहना सीक आयेगी उसी दिन मेरे स्वराज्य की ठेक पूरी होगी। चीन की संवीनों के घातक बिना स्नेह्या ॥ जब हम अपना कल व्य निभायेंगे, तो जानो स्वराज्य था गया। बापु जिस दिन साबरमती-आश्रम लौट आयेंगे उसी दिन मैं समझूँगा कि स्वराज्य था गया। जब तक यह नहीं होता तब तक कैसे मानूँ कि स्वराज्य था गया ।<sup>17</sup>

लेखक ने घाज के राष्ट्रीय और सामाजिक जीवन की कमजोरियों पर उ गनी रक्त की है। वास्तव में हम आजाद तो हुए किन्तु हममें स्वतन्त्र वैश्यों में पाई जानेवाली जिम्मेदारी और देश व समाज के प्रति कर्तव्य भावना नहीं आई है। हम तनिक तनिक ही बातों पर लड़ते और फिर कोड़ते हैं। साम्प्रदायिक बीज में माई माई को जापते हैं। हमन के लिए हमें घाज भी वास्तव के युव जैसी चीज के घातक की जरूरत है। सच्चा स्वराज्य सभी आयेगा जब हमारे देशवासी कर्तव्यभावना को समझकर साम्प्रदायिक तथा पारस्परिक भेदभाव से ऊँचे उठेंगे। घाज हून कहाँ हैं? “हून” ॥ हमारा तात्पर्य हमारा देश, हमारी राजनीति हमारी सामाजिक मनोवस्था हमारा अर्थव्यवस्था व्यवहार। यदि हम अपने समाज की घोर गहरी रुझि जानें तो हमें यह देख कर बिना होगी कि हमें कहाँ होना चाहिए वा हम कहाँ नहीं हैं। ऊँचे नहीं उठ पाये हैं। स्वतन्त्रता के पश्चात् जैते हमारी कर्तव्यभावना और विकास की गति धिक्कित हो गई है। स्वराज्य प्राप्ति तो हमारा एक साधन मात्र था। क्या हम नहीं कहते थे कि इस साधन को प्रयुक्त करके हम इस दुखदभूमि पर एक नया समाज एक नई धार्मिक व्यवस्था बुनिया में एक नया आदर्श व्यवस्थित करेंगे जिससे मानवता पुनित एवं फलित होगी? हमें घाज अपनी स्थिति अभिलेख सुधारनी चाहिए— यही इस एकांकी की प्रेरणा है।

भाखू की हार

यह एकांकी वास मनोविज्ञान पर आधारित है। यम्मु सीता का जे सात का दोटा

माई अधिक प्यार बूझार ले बिगड़ गया है। उसका बापू उसे सुभारने के लिए उठे के बल पर लौटा करने वाला जिसका बालू लाय करता है। बालू के कोड़े से सभी घरवाले भयभीत होकर हैं। घर बम्बू झकड़ के साथ घटा है और एक उड़ती-सी इच्छा बालू पर बैठता है। सभी उसे डराना चाहते हैं। घर बम्बू कहता है, "कोड़ा मेरा क्या कर सकता है? मन को तो नहीं जीव सकता? बेकार है ऐसा कोड़ा। मैं उससे नहीं डरता।" और बम्बू बालू के कोड़े से खेलने लगता है उसे खरोड़ता है। इतने में ही बारी चुकाव की तरह घटती है और लकड़ी लाजवाब करती है, "कोड़ी मेरे बच्चे को। मेरे लाल को छोड़ो। अगरदार जो मेरे लाल को हवा लगाया। कोड़ा मैं बूझूँ मैं जीवती हूँ।" बापू निराश हो जाता है और कहता है कि अब सभी बच्चे को बिगाड़ने पर तुले हुए हैं। तो मैं झकेला क्या कर सकता हूँ।

लेकिन वे बालू के मुँह से बकित करवाया है कि लकड़े को अधिक नहीं डरना चाहिए, क्योंकि इससे उसका स्वतन्त्र व्यक्तित्व विकसित नहीं हो पाता। बाल मनोविज्ञान के लक्ष्य को बड़े प्रभावोत्पादक रूप से प्रतिबिम्बित किया गया है।

माँ

बारी मनोविज्ञान पर आधारित इस एकांकी में माँ के चरित्र तथा पुत्र मनोभाव माँओं को प्रकट किया गया है। इसमें एक बुझती बारी के प्रेम वाला और बल्लस्य का संघर्ष चित्रित किया गया है। रामा अपने पति तथा दो बर्ग के पुत्र रघुवीर को छोड़कर अपने प्रेमी द्वारका के साथ भाग जाती है। तब से वह अपने पहले सगे सम्बन्धियों को त्याग चुकी है। अब वह अपने प्रेमी द्वारका की ही चुकी है और द्वारका उसका। लड़ाई भयङ्करी, हथौड़ी, लाड़ प्यार जो कुछ भी होता है उसके ने दोनों बरबर के बान्धवार हैं। उनके बीच में अब कोई तीतरा नहीं जाता क्योंकि अपने पूर्व पति तथा उसके सम्बन्धियों से अब उसका किसी प्रकार का कोई सम्बन्ध नहीं रह गया है। एक दिन रामा का पहले पति से उत्पन्न पुत्र द्वारका उसे धारण लेने आता है। रामा कितनी ही बूझो जीवती है और रघुवीर को देखकर अब से काँप उठती है। लेकिन वे माँ और पुत्र में भी कभीपकबन करवाया है वह दोनों के अलङ्कार से परिपूर्ण है। रामा के मन में भी लज्जावाप बल्लस्य हुआ है और वह अपने पूर्व पति को त्याग देने पर चुकी होती है। माँ माँ बारी होती है। घर अपने प्रेमी को भी छोड़ नहीं सकती। वह उसके प्रति भी लज्जावाप रहना चाहती है। पुत्र और माँ लाले कर ही रहे हैं कि

इतने में सराब के लड़े में रामा का प्रेमी डारका सा जाता है। वह रामा के चरित्र पर समीह करता है और दोनों को कत्ल करना चाहता है। सभी रामा रघुबीर के हाथ से कटार चीन लेती है और डारका की पीठ में भोंक देती है। वह चीन कर नीचे गिरता है। रामा उसके ऊपर गिरती है और बराबर कटार चलाये जाती है। रघुबीर भी के इस भरबी कम को देख कर चरखों में सावधानी बख्शत करता है। नाम का सिर काट लेता है बड़ पड़ा रहने देता है। इतने में ही रामा को होश आता है कि प्रकाशक धारेल में मैंने यह क्या कर डाला। वह रघुबीर पर हत्या का बोध जवाती है और कहती है "रघुबीर, तू ने उनकी हत्या की है दुष्ट ! आलम हाथ तू ने मेरा लुहान छूट लिया।" यह सुनकर रघुबीर स्तब्ध रह जाता है। रामा पुलिस के लिए बिहमाती है और कहती है कि इसने मेरे मादमी का खिर काटा है। उसके बदन से सारा रंग कांप उठता है। रघुबीर भी क्रोधित होकर रामा की मार डालने का मन दिखाता है। जब पुलिस आकर रघुबीर को हत्या के अभियोग में गिरफ्तार करती है तो खिर माँ का मन बदलता है। वास्तव्य कोर मारता है और वह पुलिस वालों से कहती है —

"बानेदार साहब मेरे बच्चे की छोड़ दीजिये। वह निर्दोष है निर्दोष है। उसने कुछ नहीं किया है। हत्या मैंने की है। पुरा मैंने मारा है। सिर मैंने काटा है। मुझे से जलो। मुझे फाँसी बढ़ाओ। मेरे बच्चे की छोड़ दो। मेरे कलेजे के टुकड़े को मत पकड़ो। मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ।

पादशर— कुछ-बाप और मत करो। कानून को अपना काम करने दो।

रघुबीर— ( १ पकठा है ) माँ माँ मेरी माँ ! मुझे बचा।

रामा— ( बिहमाती और लकड़फाटी है ) मैंने तुन किया है। मैं — इत्ती है फिर उस पून से बालक की क्यों सताते हो ? उसे छोड़ दो उसे छोड़ दो। ऐ बल्लाओ, उसे छोड़ दो। मुझे पकड़ो। मुझे से जलो। मैंने पुरा मारा है। मैंने हत्या की है। मैंने उस मराधम की पापों का मजा चखाया है।

वह बिहमाती रहती है। सिपाही रघुबीर के साम धसे भी नकड़ से जलते हैं। इस बीच एकज हुई भीड़ घोर करती है "हमारे बानों हैं। बानों की फाँसी पर बढ़ा दो।"

सिपाह ने नारी के प्रेम सम्बन्धी पापों का बड़ा ही मुकम घोर तबीयत बिगड़ किया है। नारी के मन में क्या क्या उलझ छेद घाते हैं यह प्रमो घोर पति की क्या कीते समझती है ? फिर एक कुच्छ माँ के हृदय के गहन तन में भी तब्ये मानु-रनेह की

संक्रुस बारा प्रचारित होती रहती है— यह सब क्रिम की तरह हमारे सामने आ जाते हैं। यहाँ हमें प्रपगन्दा के मनोबिज्ञान का परिचय भी प्राप्त हो जाता है।

### सामाजिक एकाकी सगाई

कस्टोमर और का 'सगाई' (१९३४) एक सामाजिक समस्या एकाकी है। हमारा समाज धर्म शिक्षा के प्रभाव के कारण बहुत कुछ जागृत हो गया है, किन्तु धर्म भी प्रबल सामाजिक कुरीतियों समाज में बिछो हुई हैं। हम धार्मिक जोते होने पर भी उन्हें बर्बाद करते हैं। जातिवाद क्यों? यह इसलिए कि वे सामाजिक कुरीतियों हमारे व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति में सहायक होती हैं। व्यक्ति की यह सामाजिक दुर्बलता है कि अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिए वह समाज के हित-विरुद्ध की बात भुला देता है। इन सामाजिक कुरीतियों से मुक्त करना बड़े साहस के बिना और चतुरावला का काम है। ऐसी ही कुरीतियों की लोह-जु जंजीर को टूटन दिखाने के लिए कृष्णचन्द्र साहसी पुस्तकों को प्रेरणा देने के लिए वह 'सगाई' सम्बन्धी एकाकी लिखा गया है।

'सगाई' एकाकी धर्म की बिबाह सम्बन्धी समस्या का विस्तृत व्याख्यान सम्पन्न है। हिन्दू कन्याओं का बिबाह एक विषय और कुछ समस्या बन गई है। पहले, मेन देन, छहराब, बिबाहा और अनमेल बिबाह हमारे ग्राह्य धर्म भी विरुद्ध बने हुए हैं। कन्या का जन्म होते ही बंसे घर घर में मातन आ जाता है। पुत्र का जन्म होने पर बीत पाये जाते हैं, भगवन्मन्त्र होने लगती हैं, बिदाई बाँदी जाती है। कन्या जाती ही सबको बुरा लगता है, यहाँ तक कि जिस माता ने भी महीने पेट में रखकर उसे जन्म दिया, वह भी अपने कलेजे से कुछकुछ बल नहीं बाँटिका को लेकर प्रसन्न और संतुष्ट नहीं होती। कारण, हमारे समाज में कन्या और पुत्र के बीच असमानता बलवत्, यत्न पूर्णता, कन्या के प्रति दुष्प्रचार और पुत्र पक्ष द्वारा घोषण है। अत्यधिक बल प्रतिक्रिया के क्षेत्र में भी कन्याओं पर उतना व्यय नहीं किया जाता जिसका पुत्र पर किया जाता है। यदि लड़की बीमार होकर मर तक जाय तो माता को छोड़कर अन्य लोगों को प्रबलता ही होती है। हमें धर्म की राक्षसों में प्रचलित यह प्रचार स्मरण हो जाती है जब कन्याओं को जिप देकर या अन्यत्र ही बाई द्वारा मर जाने की विसम्भक चेष्टा की जाती थी। पुत्र मृत्ती के मध्य को यह भारी असमानता है उसका कारण रहे हैं। बिबाह में बिबारे कन्या पक्ष का बुरी तरह घोषण होता है। लड़के-बाला उससे बहुत हा कम, बेबर, बल, रेडियो, साइकल, पड़ी जर्नीयर, कपड़े और



न जाने क्या क्या सेता है। कम्पा पसबासे घर पक्ष के तोषों की खातिर और मुसामब इतनी शीनता से करते हैं जैसे खोर को पुमिस नानेदार की करनी बड़तो है। इस घर भी कम्पा पसबासे घर बड़ा ग्रहस्तान समझा जाता है। कम्पा का पिता हीरा एक वासी बन गई है क्योंकि वह बेचारा बोपी भाष्यहीन और धुक प्रकार से पापी माला जाता है। सेकक ने अपने "सपाई" नामक एकांकी में यह चित्रित किया है कि कम्पा का पिता होना हिन्दू समाज में एक बड़ा दुर्भाग्य है। इसका वृत्त कम्पा के पिता को कितना भी मिले मन मसोसकर सहन करने के प्रतिरिक्त उस बेचारे को और कोई चारा नहीं है।

इस एकांकी के नायक मुरलीधर बीछा के पिता एक मध्य वर्ग के गृहस्थ हैं। बीछा और नेना के प्रतिरिक्त उनकी तीन बड़ी पुत्रियां और भी हैं। पांच कम्पाओं के घर की बजह से वे जैसे कुट-मिस पड़े हैं। घर में घरीबी और बेवसी है। पुराना मकान स्थान स्थान से टूट गया है। बेचारे मुरलीधर एक सघेड़ किन्तु धमीर सघेड़ पामील से बीछा का विवाह करने की सोचते हैं। पत्नी विरोध करती है, बड़े के कारण मकान ठक को बेचने की नीयत आ जाती है।

सेकक ने स्थान स्थान पर विचारोत्त एक संजीर बातें कही हैं, जो हमें घड़े समयसा पर घहराई से सोचने के लिए बाध्य करती हैं। धमीर लोग अपने घर के बल पर जैसे कई उज्र की कम्पाओं से विवाह करने का व्यवसाय करती हैं और बेचारे घरीबों को निर्बलता कैसा अभिघात बन जाती है, यह निम्न उद्धरण के वर्णन में देखिए। अनुना प्रौढ़ किन्तु धनी घर पर ध्वंश करती हुई कहती है :—

“अनुना— ऐसे सज्जन का मैं सचार रजु बी। बाबा की उज्र का होकर बसा है ब्याह रचाने। जो मैं प्राया नृति बकड़ कर हिलाऊ और कहूँ का अपनी माया को गाड़ रख। कोई सुनका ही तुम्हें बरेगी।

मुरली— ( ठसका पति ) कह देती।

अनुना— घर भवानीसकर ने उठी गया समसकर भिन्ना ? ऐसा ही सधनीनुमा का ही अपनी बर्षती के लिए कर सेते। वह ती मेरी बीछा से दो लाख बड़ी है। बेका मरीज हैं। घर के सोन से लड़की की नौक बेंगे।

“मुरली— स्रब पारा बड़ गया है। जाकर बोड़ा ठम्हा वाली पिबो।”

सेकक ने कप्यर्सेली के नायकियों की सार्विक विचयता और समाज द्वारा शोषण

के नए नए तरीकों की स्पष्ट कर दिया है। साम के मुद्दों की यह वृत्ति प्रकृति है कि वे जमी के कम से कमी उपयोगी बन्या चाहते हैं। एक ओर बड़ी रकम पर खेती चाहिए, तो दूसरी ओर काम्या केहू सुम्बर होनी चाहिए। साबली घामुली या जाली लकड़ियों का बिनाही भी एक बिबम समस्या बन गया है। यदि इसी प्रकार चलता रहा तो एक दिन बहुत धानेना कम घामुली कम्याओं को कोई न पूछेगा और न पसन के मार्ग पर जायेगी। होना यह चाहिए कि कम्या के कम के स्थान पर उसका पूरा देखे जाय। धीत, पूरा करिब और घर के बागवानी की सुचकता गृहस्थी के लिए महत्त्वपूर्ण है। निजक में इस दृष्टिकोण को राजा के पु हूँ इस प्रकार स्पष्ट कराया है —

राजा — कैसे धानमी हो तुम लीप ? क्या घर की बहु-वेदियों की बागार में बिबना है ?

लाला — धानी धापी नहीं समझने ।

राजा — मैं क्या समझूँगी ? नये कामान के तुम लीप समझो । कोई मतमानत धपनी लकड़ी केने जाता है तो उसने इस तरह का व्यवहार किया जाता है। ऐसा ही घर घर होने लगे तो जाली कट्टी लकड़ियों कहाँ जायेंगी ? रंयकर क्या धपने हाथ का है ? मयमान के बिदे हुए कप का धपना समझकर और बिना देखे ही । छि ।

ज्वाला — ठीक कहती हो । ऐसा नहीं होना चाहिए ।

राजा — बहु वेदियों का रंय देखा जाता है या नुल ?

ज्वाला — देखा तो पूरा ही चाहिए ।

राजा — फिर धपने लकड़े को भी देख लो । बहु कीमती लंगमरघर का बेचना है ? — लो इस प्रकार सरस्वती और लक्ष्मी का प्रभाव करते हैं उन्हें वे फिर पु हूँ नहीं बिबली ।

लाला प्रताप की जाली मुनोबना नए युग की लीनर्ग प्रकृति को स्पष्ट कराती है । जो व्यक्ति कोरे लीनर्ग हैं लीनर्ग के पीछे बापल रहते हैं उन्हें बहुत खराब बहु मिलती है और जमी कमी बिबुल ही नहीं मिलती । ऐसे व्यक्तियों पर भी 'सवाई' एकाकी में बध्या ध्यंय बिबा गया है । निम्न कडरल में इसी समस्या का निबान प्रस्तुत किया गया है (वेदिक) :—

“लाला — जाली तुम्हें जाला बादनी-ली बहु कुरी क्यों जगती है ?

राजा — कुरी किते लवती है ? मैं लो कहती हूँ तुम लीन बादनी-ली हो लाली ।

सुलोचना— तो ।

राजा— मैं यही कहती हूँ कि हीरों की तलाश में कहीं कौयलों को भी मत जो बेना । तीन साल से चर्चा चल रही है । अभी तक तो कुछ नहीं हुआ । चाँगी-सी बहू पाते तो मने नहीं बैठो ।

सुलोचना— नीली मलमल पर मोतियों के हार की घोषा का बिचार करो । तब देखा कही ? ( सुसज्जती है )

राजा— यह तो अपने स्वार्थ की बात हुई । यह भी तो सोचो कि हमारे घर में ही बार लड़कियाँ हों तो, तो क्या वे सब अष्टराष्ट्र होतीं । फिर अगर कोई उसके लिए ऐसी माँग करता तो उसे हम क्या कहतीं ? जिसकी सयानी लड़की के लिए ऐसा कहा जाय उसकी माँ की तरफ से सोचो । लक्ष्म का बिबाह ही जाय तो उसके मौ हो सकती हैं । अगर लड़कियाँ ही हुईं अष्टराष्ट्र न हुईं, तो कहां जायेगी ? आरमी को इन्कार उसके अनुकूल होनी चाहिए ।

एक स्वतः पर एक कपवती प्रायुनिक कला का अंगवस्त्र प्रस्तुत किया गया है । प्रायुनिक शिक्षा में डली हुई कन्याएं अपने पार्श्वस्थ जीवन में छिद्र नहीं हो पाती; उसका सभी के साथ दुर्ध्वबहार होता है । घर घर परेशान हो उठता है । उम्मी की बहू के विषय में सरला की यह मानिक छवि देखिये—

सरला— क्या ही क्या है । बियोजी न काम की न नाम की । आते ही उठ कर सास को तक में घर दिया । कभी छत पर कभी सड़क पर । पड़ों कंधी बोटी में लबाती है । तीन बार आइसकीम खाती है । बार बार चाय पीती है । बुझिया तो बुझा पूँकते पूँकते झम्बी हुई जा रही है ।

राजा— ( सुलोचना का हाथ कोचकर ) तो तुम तो ।

सुलोचना— बुझिया तो सिहाते सिहाते बरी जा रही थी ।

सरला— बही तो मैं आज बपाई देने लगी तो बुझिया धाक धाक धांधू रो पड़ी ।

सुलोचना— उम्मी कुछ नहीं कहता ?

सरला— उम्मी क्या कहेंगे ?

राजा— वह बहू का क्या बैठेगा या माँ का दुःख ?

सुलोचना— राम राम !”

घातकल के मुक्कों की विवाह सम्झौती नहीं भी दायीर हैं। वे गृहपाली नहीं चाहते, प्रत्युत बनी ठनी रंघो-र नाचने गानेवाली सभियो चाहते हैं। तितली की कामना करते हैं। उनकी मनोकुति कृपित करने में फिस्सों का पूरा हाथ है। वे बीसरा फिस्म प्रतिनिधियों का बलाब नृपार घोर बेधमूषा आन भंगिया बेचते हैं। अपनी पाली में भी बीसी ही कामना करते हैं। कामता प्रताब की मांग बेचिये ओ हमारी कृपित मनोकुतियों का स्पष्ट रूप है :—

‘कामता— मैं उसी लड़की से दाजी कफ या ओ फिस्म में मेरे साथ प्रतिगम करने को तैयार हूँ ? मृत्यु घोर सपीत की जानकार हूँ ।

मुरली— आपकी इच्छा ।

कामता— कला की बुनिया तो घातकल माफ कोबियेया, फिस्म में ही बसती है ।

मुरली— त्रिनेत्र के बाहर का जीवन तो—

कामता— निरुपमा है ।

मुरली— घर घर की लड़कियाँ तो—

कामता— कुण्ड की मैकली है ओ । नारना मे नहीं अनितो, पाला मे नहीं जानतो । जीवन की नाव को नहरबल में लेना हो ती कोई उनसे व्याह करे ।”

— समाई ( पृष्ठ ४२ )

मध्यम का प्रतिनिधि बेधरा मुरलीवर उहाँ गया वहीं उसे मालूम हुआ कि घाव के धार्मिक मूर्खोंका के रुप में बीली बील कर सक्रम प्राप्त होते हैं। वह कहां कहां जाता है घर के पितामहों की वहेर का मोसमाव करता हुआ पाता है। उसके पात से बेकर एक नकार है। उसे बेबकर कय्या के वहेर की समस्या को हल करना चाहता है। खेक व बेन घर कही सास प्राप जयल रही है तो कहीं वह प्राप समाकर आत्म हारा कर रही है। इस प्रकार वहेर कुपना क कारण घर घर में राकत है। इस समाज के आपाच्छ और विभिन्न सभी घोर दुख, सभी का दृष्टिकोण कृपित हो गया है। यदि यह कुपना बनती रही तो निरुपमा ही यह समाज रसमम को कामना। मुक्त की बात तो यह है कि लोग बेन घोर छहराव व वहेर प्रभा को हलाने की बात फे निचे मोन सबसे अधिक करते हैं लेकिन यह सब केवल सेकों घोर अघवारों में ही है, व्यवहार में नहीं। व्यवहार में सबसे अधिक सोमी और गुनाम फे निचे ही हैं। एक धार्मिक स्वत

भी बेसिए, जिनमें पति पत्नी गिराफ़ होकर रहते हैं —

‘मुरलीधर— हमें बीछा का बेड़ा बार लगाना है। मकान बेचकर वो हमारे रुपये मिल जायेंगे। कुछ तुम्हारे पहले हैं। एक-दो हजार का करार करने से झोसत बर्ष का लड़का मिल जायगा।

जमुना— धीर कोई उपाय नहीं है ?

मुरलीधर— तुम्हीं बताओ।

जमुना— तुम्हीं से सुनती भी पड़े लिखे लोप करार की प्रथा उठा रहे हैं।

मुरलीधर— ( हसते हैं )

जमुना— क्यों ?

मुरलीधर— केवल लैकों धीर प्रचारों में व्यवहार में नहीं। व्यवहार में सबसे अधिक लोभी धीर पुनाम पड़-लिखे ही होते हैं।

जमुना— ऐसे समाज को बिनासनाई दिखाओ।

मुरलीधर— परन्तु बिलाना कठिन है।

जमुना— ऐसे समाज को छोड़ दो। मैं कहती हूँ छोड़ दो। जलो हय ईसाई हो जायें, मुसलमान हो जायें। ऐसी बनिबा में चल कर बलें, जहाँ मनुष्य न बचते हों।

—समाई ( पृष्ठ ६१ )

इस एकांकी में मध्यवर्ष की विवाह समस्या के विभिन्न पहलुओं पर अच्छा प्रकाश पड़ा है। लेखक ने दिखाया है कि समस्या का निदान हमारे कर्तव्यनिष्ठ और सही रिश्ता में विकसित होने वाले युवकों के हाथों में है। बहूत्र के कारण हमारी नारी जाति की दुरावस्था होती जाती है। जो समाज अपनी कम्पारों को हीन समझता है, उनके धीन कुछ चरित्र इरादों का ठीक प्रस्थापन नहीं करता उनका सम्मान नहीं करता, वह निर्विषय ही एक बंठित समाज है। तिरस्कृत नारी के हृदय में आत्म-धोरण के भाव नहीं उठ सकते। वह अपनी महत्ता उपयोगिता और प्रतिष्ठा अनुभव नहीं कर सकती। जिस समाज के आत्म-धोरण को बुरा विधा गया हो विवाह की चर्चा के दिनों में ही बिलने अपनी व्यर्थता का अनुभव कर लिया हो, उसका प्रता-करण कभी तेजाबी धीरे साहस पूर्व बीरता से परिपूर्ण नहीं बन सकता। उसका मन सदा बुरा बुरा सा रहता है। इस मादक की नायिका बीछा ( मुरलीधर की बीवी कम्पा ) का मन सदा बुराबुरा सा रहता है। ऐसी लड़की के लिए कोई बड़ा विचार समय नहीं हो सकता। लेखक ने

चित्रित किया है कि जिसका मन गर गया जिसमें अपने की तुल्य मान लिया हो, उसका विचार क्षेत्र और कार्य क्षेत्र भी वही अनुचित ही रहेगा। भाव क्षेत्र में धारण ऐसी जारी दूसरों के लिए भार ही बन सकती है शक्ति रह सकती है भीमन बनाने करने करने और घर की बीबीबारी का काम भले ही कर सकती हो, पर वह गृहस्थियों के रूप में अपना प्रतिष्ठित प्रपन्न न कर सकती।

मया हस्त

इस एककी में भारत के एक पिछड़े हुए गांव में खेती से मात्र में कानि साने का प्रयास चित्रित किया गया है। मेजर के द्वाराय के धारण से नवीन कानि और विचार बार्थ स्पष्ट की हैं। कबालक नयन है और उसका निर्मित पुराने और नए जीवन की तुलना करने की इच्छा से हुआ है। द्वाराय नवीन युग की विशेषता स्पष्ट करता है ठा गांव की छाता का धारणक शावरण नए युग की कमजोरियों पर भी प्रकाश डालता है। इस प्रकार धातुनिक प्रगति के गुण दोषों का विवेचन करते हुए मेजर के धातुनिक भारत की विकास योजनाओं से होने वाले लाभों को स्पष्ट किया है। पञ्चरात्रिह के ग्रंथों में मेजर का संवेद्य इस प्रकार है —

“यद्यपि देश प्राज्ञाव है। सब नागरिक बराबर हैं। एक मोट में दे सकता हूँ, बड़ी धन्य दे सकते हैं। बड़ी गांव का किसान और मेजर दे सकता है। उसी तरह वैज्ञानिक औजारों को हर कोई काम में ला सकता है। धार भूँ मोह में बड़े हैं। उसे छोड़ बीजिए और धार के (युग) भर्ष का ऊँचा उठाइये।”

यह एककी ठीक विचारों और समीर चित्तन से परिपूर्ण है। मेजर के बीजुदा कृष्ण समाज में पाई जानेवाली भ्रष्टियों का कई स्तरों पर संकेत किया है। देश की धातुनिक विकास योजनाओं को स्पष्ट करने और धातुनिक का मन्त्र बूझने की इच्छा से यह बहुस्वरूप है। भारत का साधारण किसान क्यों कमजोर है और उसकी निर्बलता के क्या कारण हैं इसको मध्य कर मेजर ने लिखा है :—

द्वाराय— “परिचित तो यह (भारत का साधारण किसान) इस धर्म में है कि यह युग के काम नहीं करता। यह धर्म भी बाबा द्वाराय के युग के रीतिरिवाजों से चिपका हुआ है। यह मोहर-मोहर और शारी-ग्याह में घर की सम्पत्ति बूँक देता है। धर्मधर के भूत में डूब जाता है। जारी व्यापार करता है। खेत में बरफ़ी चार नहीं दे पाता बल्कि बेल नहीं रख पाता। तिबाई के साधन नहीं जुटा पाता। गये किस्म के

जी बैकिंग जिनमें बति पानी निराशा होकर करते हैं —

‘मुरलीधर— हमें बीसा का बैड़ा पार लगाना है। मकान बैचकर वो हजार रुपये मिल जायगे। कुछ तुम्हारे पहले हैं। एक-दो हजार का करार करने में भीतरी धर्म का लड़का मिल जायगा।

जमुना— और कोई धरम नहीं है ?

मुरलीधर— तुम्हीं बताओ।

जमुना— तुम्हीं से चुनती भी पड़ लिये सोच करार की प्रथा खटा रहे हैं।

मुरलीधर— ( हसते हैं )

जमुना— क्यों ?

मुरलीधर— केवल मेरों और प्रसक्तों में व्यवहार में नहीं। व्यवहार में सबसे अधिक लोनी और गुमान पड़ लिये ही होते हैं।

जमुना— ऐसे समाज को बियासलाई दिखाओ।

मुरलीधर— बरम्बु बिकाना कठिन है।

जमुना— ऐसे समाज को छोड़ दो। मैं कहूँगी है छोड़ दो। बसो हम ईसाई हो जायें, भुक्तमान हो जायें। ऐसी बुनिया में चल कर बच्चों, कहीं मनुष्य न बचते हों।

—समाप्ति ( पृष्ठ ६१ )

इस एकांकी में मध्यम वर्ग की विवाह समस्या के विभिन्न पहलुओं पर अच्छा प्रकाश पड़ा है। लेखक ने दिखाया है कि समस्या का निदान हमारे कर्तव्यनिष्ठ और सही विद्या में विकसित होने वाले युवकों के हाथों में है। बहुरंग के कारण हमारी नारी जाति की कुराबस्था होती जाती है। वो समाज अपनी कम्पाओं की हीन समझता है, उनके शील गुण चरित्र इत्यादि का ठीक मूल्यांकन नहीं करता, उनका सम्मान नहीं करता, वह निश्चित ही एक पतित समाज है। तिरस्कृत नारी के हृदय में आत्म-वीर्य के नाम नहीं खट सकते। वह अपनी महत्ता उपभोगिता और शक्ति का अनुभव नहीं कर सकती। जिस कम्पा के आत्म-वीर्य को बचा दिया गया हो विवाह की बर्बाद के दिनों में ही बिलने अपनी व्यर्थता का अनुभव कर लिया हो, उसका अन्त-करल कभी तेजस्वी शौर्य साहस एवं वीरता से परिपूर्ण नहीं बन सकता। उसका मन सदा बड़ा बड़ा सा रहता है। इस नाटक की नायिका बीणा ( मुरलीधर की बीबी कम्पा ) का मन सदा बड़ा-बड़ा सा रहता है। ऐसी लड़की के लिए कोई बड़ा विचार संभव नहीं हो सकता। लेखक ने

विश्रित किया है कि जिसका मन भर गया, जिसने अपने को सुखा मान लिया हो, उसका विचार क्षेत्र और कार्य क्षेत्र भी सदा समुचित ही रहेगा। भाव क्षेत्र में धामन ऐसी सारी वृत्तों के लिए भार ही बन सकती है बाती रह सकती है जीवन बसाने अपने आपन करने और घर की चौकीदारों का काम भले ही कर सकती हो पर वह गृहलक्ष्मी के रूप में घरना अस्तित्व प्रगट न कर सकती।

नया हंस

इस दुकाकी में भारत के एक निम्नरे हुए गांव में केती के सत्र में कांति साने का प्रयास विव्रित किया गया है। लेखक ने बयाराम के माध्यम से नवीन कांति और विचार बाराए स्वयं की है। कथानक मजबूत है और उसका निर्माण पुराने और नए जीवन की तुलना करने की दृष्टि से हुआ है। बयाराम नवीन युग की विवेकताएं स्वयं करता है, तो गांव की घाता का प्रभावक सिक्करले नए युग की कमजोरियों पर भी प्रकाश डालता है। इस प्रकार प्राथमिक प्रवृत्ति के कुछ बावों का विवेचन करते हुए लेखक ने प्राथमिक भारत की विकास योजनाओं से होने वाले लोगों को स्वयं किया है। यत्रावस्थित के कर्मों में लेखक का लक्ष्य इस प्रकार है —

“यह तो देश प्राकृत है। सब सामरिक धरावर है। एक मोट में से सक्ता है, वही धार से सक्ते हैं। वही गांव का किसान और मेहनत से सक्ता है। उसी तरह वैज्ञानिक प्रयोगों को हर कोई काम में ला सकता है। धार कुछ मोह में पड़े हैं। उसे छोड़ बीजिए और गांव के (युव) वर्ग का सदा उठावो।”

यह दुकाकी ठीक विचारों और नवीन चिंतन से परिपूर्ण है। लेखक ने नौवरा कृष्ण समाज में पाई जानेवाली भ्रष्टियों का कई स्थलों पर उल्लेख किया है। देश की प्राथमिक विकास योजनाओं को स्वयं करने और जाति का धर्म बूझने की दृष्टि से यह महत्वपूर्ण है। भारत का सामारण किसान क्यों कमजोर है और उसकी निर्भरता के बराबर है इसकी लक्ष्य कर लेखक ने लिखा है :—

बयाराम— “गरीब तो वह (भारत का सामारण किसान) इस धर्म में है कि वह युग के साथ नहीं चलता। वह सब भी जाया धारम के युग के रीतिरिवाजों से चिन्ता हुआ है। वह छोटा-मोटा और सारी-बहा में घर की सम्पत्ति बूक बैठा है। साहूकार के ब्रह्म में डूब जाता है। भारी व्याज भरता है। पैर में धमड़ी धार वही से पड़ा, अपने पैर नहीं रख पाता। तिहाई के सामन नहीं बुटा जाता। नये धर्म के



हल नहीं खरीद पाता वह इस तरह प्रकाश की बुनियाँ में रहता है। विज्ञान ने खेती को कहाँ से कहाँ लाकर बढ़ा कर दिया है यह वह क्या जाने ?

शिवचरण— यह बात तो सही है। अभी तक पाँचों के लिये प्राथमिकताओं में पड़े हैं। अभी तक सूत-मेस, बोना-बोझका तरह तरह की विद्युत्-संचालों से इनका फुलकारा नहीं हुआ है।

और इसी वर्क के साथ फिर सैकड़ों में देश के नए निर्वाह और ज़ानों के बहुमुखी विकास की योजनाओं पर प्रकाश डाला है। प्राचीन साधारण भूमि को लेते हुए नए युग की वैज्ञानिक आविष्कारों को खेती के उपयोग के लिए कैसे काम में लाया जाय यह सब इस एकांकी में स्पष्ट कर दिया गया है।

एकराजसिंह के ये सब वास्तव में सत्य हैं, 'यह विज्ञान का युग है। अब ऐसी वैज्ञानिकों का युग कार्य हो गया है। अब तो नये नये वैज्ञानिक उपकरण ही खेती के काम में आयेगे— आप जमाने के साथ नहीं चलेंगे तो आपकी कोई नहीं बुद्धिवा ... आपको ज़िन्ना पड़ना है वो जमाने के साथ चली।' '

—नए एकांकी ( पृष्ठ ७२ )

## नया खेत

विकास योजनाओं के अन्तर्गत छोटे छोटे खेतों को बढ़ा कर के सहयोग पद्धति पर सहकारी खेती की एक योजना इस एकांकी में प्रस्तुत की गई है। परसारी एक फिल्म में पुराने बेड़ों में डेढ़-डेढ़ तिकोने खेत बेक कर आता है। सब के खेतों के डेढ़-डेढ़ होने के कारण बहुत-सी जमीन मेड़ों में बँका हो गई है। खेतों की सीमाएँ निश्चय करने में बड़ी कठिनाई होती है। ज़रूरत में मेड़ों के बँक जाने से भयड़ा हुए बिना नहीं रहता। सैकड़ों में दिखाया है कि बचकान्दी से किसानों का बड़ा हित हो सकता है। सरकार की नीति परसारी के फिल्म वास्तव से स्पष्ट हो जाती है :—

“सरकार ने गाँव बाँटों से ही एक पाँच आरामियों की एक कमेटी चुनवा ली। इस कमेटी से गाँव की भूमि का बर्णोकरण कराया गया। निष्पक्ष कीर्ति की भूमि तन्नि तित चरपास बनाने के लिए छोड़कर बाकी के चार वर्ष किये गये। उन चारों वर्षों की प्रति एकड़ पैदावार बूत ली। उसी के मुताबिक गाँव में जितने परिवार थे जतने बक बना दिये और साटरी द्वारा कीमता बक कितने मिले इसका निर्णय कर दिया।”

पाँचों की हालत सुधारने के लिए सैकड़ों में सरकारी नीति को स्पष्ट किया है।

बकसमी के न में घालेवाली बाबाओं के निराकरण के उपाय भी स्पष्ट किये हैं। हरिजनों की बुराईया के सम्बन्ध में कई नाटिक दृश्यों में निरूपण है। एक हरिजन, बीजा और कस्तुरा नामक एक किसान युवक की वस्त्रचीत का एक घटा देखिये —

‘कस्तुरा— क्या हरिजन सेती करेंगे ?

‘बीजा— हाँ, भय्या ! बहुत गरक डोया ! कुछ कुछ तक बूतलों के सेतों में जाव पहुँचाई। यह अपने सेतों में जाव डालेंगे। पैर तो मरेगा।

परसारी — पैर तो पहले भी मरता था।

बीजा— बहुत पैर भरवा गया था ? बहुतों से भी गया बीता। सुन्, सुन्नी वाली छड़ी, बुनी, वाली-बुनी मोड़ी-मोड़ी पन्ना भी कोई बिम्बणी है ? हम सपाह में बुत्तों से भी दखतर बनकर रहे हैं।

कस्तुरा— समाज का यही बस्तूर है। वह कुछ अपने हाथों नहीं देवा। राज बिना देवा सभी कुछ देवा। उसको बर्तन बकाने की छक्ति रखने वाला बससे सब कुछ ले सकता है।

परसारी— ऐसा भी नहीं है। राज ने सुपाकृत हटा दी है पर समाज तो नहीं बड़ा है। धात्र भी हरिजन भाइयों की कुलों पर पानी नहीं भरने दिया जाता। भविष्यों में जाकर वे उपासना नहीं कर सकते। होटलों में लकने जाव बैठकर नहीं जा सकते। माई उनकी हजामत बनाने को तैयार नहीं होते।

कस्तुरा— हरिजन कृषि करने लग आयने, सब ऐसा नहीं रहेगा।

बीजा— और वह भी नहीं सकता। जिस पैरे के हूँ समाज में विरा बिना है, उसी को सब हम छोड़ देंगे, तो बहुत करक बड़ जाववा।

इस प्रकार इस एकांकी में समाज की बुराईया सब बिनी जीर्ण बरम्बरारों से बिचके रहने की पदी गोष्ठि और सरकार द्वारा बुवार के कबायों पर पर्वत्र प्रकाश कड़ा है। नवी सामाजिक व्यवस्था माने में सरकार क्या कर रही है यह स्पष्ट हो जाता है।

### नया गाँव

इस एकांकी में बिचार के उपरान्त भारत के एक गाँव में धाय हुए नवीन परि-बर्तन स्पष्ट किये गये हैं। नगण बाहर के सेतों में भी बर्तन भरल करके अपने बुराने घाट में लीकता है, तो पाता है बाँधे जम पाँव का पुराना नकसा बिबकुल ही भरक गया

है। यह सिव इटली, फ्रांस, जर्मनी, कत इत्यादि की प्राथमिक व्यवस्था देख कर जाता है कि वहाँ कहीं भी मुर्त साक्षि नहीं है। यह कहता है —

“घाबनी को साक्षि कहीं नहीं है। जहाँ जहाँ गया, एक न एक घाब सभी मुर्त देखी। साक्षि से मुम अवसता केवल इती देख में देखा। कौन कहेवा कि वहाँ भी साक्षि में भुक्तम भी घाबे धीर नहीं रचना भी रची गई।”

आजाद भारत की महिमा इस एकाकी में देखने को मिलती है घाबों गृह हो जाती है। जयपत गाँव के स्कूल का भवन देखकर जाता है। स्कूल का भवन ऐसा लपटा है कोई बड़ा कारखाना हो। इस एकाकी में प्राथमिक की सब समझाए हन होती दिखाई गई है। एक प्राथमिक प्रश्न देखिए —

“जयपत— स्कूल का भवन देखकर लपटा है कि कोई बड़ा कारखाना हो।

“सागर— वही बनने का रहा है। इस्तकारी केन्द्र धीर बर्तसाय ये दो विभाज साक्षि साक्षि साक्षि करेंगे। साक्षि साक्षि के तीस पानीत गाँव के बच्चे तो घाबने ही दूर दूर से भी पढ़ने वाले घा सकते हैं।

जयपत— प्रश्न... लोग तो यों ही करते हैं। बड़ बड़े विज्ञानय घाबों में ही होने चाहिए। गाँवों से नगरों की धीर बौढ़ने जाता जल-अवकाह नहीं बड़ा तो भय-भय परिणाम हो सकते हैं।

सागर— घाबों को देखा बना देना चाहिए कि लोग नगरों को भुक्त जाय।

जयपत— इस तरह के नये गाँव में ही भारत की आत्मा का विकास होना... हँकली से काम नहीं ले रहे हैं आजाद ?

सागर— नहीं कुछों में पश्य बिठा दिये गये हैं। अपने गाँव में अँबाई के नारत नहर का पानी नहीं घा रहा घा। इतलिए पम्पों की योजना की गई।

जयपत— यह काम कौन करता है ?

सागर— सहकारी समिति ही करती है या कह सकते हैं कि सरा गाँव ही करता है। सहकारी समिति ने गाँव का साक्षि साक्षि से मुक्त कर दिया है। गाँव की समुद्रि अधिष्ठात उती के कारण है। जमींदारों की राग-जाय से किसानों का जीवन कराह रहा घा। उतासे मुक्ति वाकर यह प्राप्ता स्वर्ण या गया है। क्षेत्र प्राप्ता एक घोषण साक्षि के अन्त से ही जायवा ।

इस प्रकार सहकारी योजनाओं से घाबे वाली समुद्रियों की एक पश्य भाँकी इस

एकान्ती में बस्तुतः की गई है। लेखक ने बिनास किया है कि भविष्य में भारत की सामील सामाजिक बुद्धियाँ—जीते मृत्युमोक्ष जाति-पाति का भेद-भाव व्याह-धारी में प्रपञ्च्य अन्ध-नीति के अन्तर्गत आपत के बीर विरोध मुकामदेवारी मार-बीड इत्यादि समस्त हो जायगी। अधिमो का यह वैध सत्ता को शांति-संविद्ध देगा। बुनियाद जिस शांतिमय जीवन के लिए तरस रही है, शांति का वह धूल-मग्न भारत के पास ही है।

समावेश

इस एकान्ती का निर्माण किसवाराम नामक एक किसान के दो बड़े बेटों— बुद्धिया और मनुष्य को लेकर किया गया है। किसानाराम की गई पत्नी बड़े बेटों को विद्या देने के लिए मजदूर करती है। पति का कुछ बेटों के प्रति प्रेम उससे देखा नहीं जाता। बेतारर किसान उन्हें बेचने की सोचता है। धीरे धीरे बुद्धिया को मुक्ति मिलती है और वह बड़े बेटों को संन्यास का कारण भाव कर बेचने का विचार छोड़ देती है। लेखक ने दिखाया है कि जापकों के प्रति आत्ममान रखने से किसान बहुत लाभ उठा सकते हैं। जब तक किसान अपने कामगारों को विचार का ही एक अभिन्न अंग नहीं मानेंगे, जब तक कीर्ति लाभ नहीं हो सकेगा। बेटों के पशुओं की भी उसी प्रकार सेवा और देखभाल होनी चाहिए, जैसे परिवार के व्यक्तियों की होती है।

### कर्तव्य की ओर

इस एकान्ती में हमारे समाज की एक नई कमजोरी पर व्यंग्य किया गया है, वह है अधिकारों के प्रति हर विद्या से खोदकर भाव। आज हमारे मुकाम हर विद्या से अपने अधिकारों ही अधिकारों की भाँति कर रहे हैं। "मजदूर अधिकारों के लिए लड़ते हैं। किसान अधिकारों के लिए लड़ते हैं। जाप अधिकारों के लिए लड़ते हैं।" सभी चाहते हैं कि मिलकर अधिकारों का आनन्द उठावें। अधिकारों के लिए भटकनेवाला महावीर इस एकान्ती का नायक है। उन्ने अधिकारों की पुनर् प्राप्ति पत्नी अचला को उपेक्षित कर रखा है। दोनों पुत्र अशांति आनेक, क्रोध धर्मबन्धी जीवन के मरम्भ में भटक रहे हैं। दुखी और धिक्कृत नायक लक्षण मुकाम की कर्तव्य को अधिकार से अधिक महत्व देता है। महावीर और अचला में अधिकारों पर और देने के कारण भपड़ा होता है। पत्नी बेवारी कर्तव्य करती थी पर किसी ने उसका महत्व नहीं माना। अब वह कर्तव्य की बात छोड़कर अधिकार की बात करती है। इस प्रकार दोनों ही अधिकारों के गले में डूब कर बैठते हैं। नमस्यो अन्धधर्म वाले सोचते हैं।

इससे उनका सारा जीवन व्यस्त हो जाता है। दोनों में घारपीट हो जाती है। इस भार बोझ में निरंतरता बरपन हो जाता है। जबकि निरंतरता की उदासी उसका रक्त पीछेती उसके लिए को अपनी पीठ में रख कर हुआ करता है। महावीर इस पर धीरे धीरे बर्तनित होकर उसे व्यसक्त कहता है। धीरे धीरे दोनों का अधिकारों का लड़ा खतरता है और वे जीवन में कर्तव्य की महत्ता को स्वीकार करते हैं।

इस एकान्ती में कर्तव्य द्वारा समाज सुधार की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है, जो सर्वथा धर्मित एवं तर्कपूर्ण है। नैतिक का संबंध निम्न प्रश्नों में प्रकट हुआ है जो कवित्वपूर्ण है :—

“निर्धारण— जब नाटक कर्ता द्वारा अपना कर्तव्य करता है। जब जून सुबानि फैलाकर अपना कर्तव्य कर रहा है। जब नाटक कर्ता ने लिए अपने धीरे को बना रही है। उनमें कोई भी तो अधिकारों की बात नहीं करता फिर हम ही क्यों बैठा करें कर्तव्य केवल के पद कभी बन्द नहीं होते। वरा जुसे रहते हैं। उसके यहां कोई प्रयुक्त नहीं है। बड़े से बड़ा वापी एक घासन पर बैठ सकता है।”

समस्त में प्रति सभी अधिकारों का व्यर्थ प्रस्ताव त्याग कर कर्तव्य-पथ के अधिक बनते हैं। अधिकारों से मुह मोड़ने की घोषणा करती हैं। कर्तव्य ही उनके जीवन का प्रधान ध्येय हो जाता है।

इस तथ्य से कोई भी विचारशील व्यक्ति इन्कार नहीं कर सकता कि प्रायः के प्रसिद्ध नवयुवकों में कर्तव्य के प्रति आत्मकता की भावना की अभाव कमी है और कर्तव्य के प्रति समन पैदा करने की वरम आवश्यकता है। इस नाटक द्वारा नैतिक ने कर्तव्य की प्रेरणा के साथ साथ नीतिकवाद से हटा कर साम्यवाद की ओर मानव को मोड़ने का लक्ष्य प्रकट किया है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रस्ता सम्बन्धी नीति में परिश्रम और सुधार करना आवश्यक है। यदि हम अपने देश की प्राचीन संस्कृति को ही देखें तो स्पष्ट है कि हमारी जनता एवं विचार का कारण कर्तव्य के प्रति आत्मकता ही को। यही वर हमारे स्वतन्त्र भारत तथा नए समाज की जनता निर्भर है। वेद का विषय है कि इन विद्या में कर्तव्य की महत्ता के लिए कोई लक्ष्य करन नहीं उठाये जा रहे हैं। युवकों में नैतिक और सामाजिक प्रवृत्तियों को बढ़ाने के लिए हमारे द्वारा कोई प्रयत्न नहीं किया जा रहा है। इस नाटक का प्रधान नायक समस्त में अधिकारों से मुह मोड़ कर्तव्य पथ पर अग्रसर होते रहने की घोषणा करता है। यह ध्येय निरन्तर

महम्मदपुर है ।

सब से बड़ी सेवा

इत एकान्ती का सम्बन्ध बीयत नामक एक उद्भट विद्वान की साहित्य-स्थापना में है । वे अपनी साहित्य-स्थापना में निरन्तर लगे रहते हैं । घर-घर में गरीबी और विवशता है । उनकी बत्ती बार-बार जलन की आवश्यकता में विनित रहती है । धन्य समाप्त हो चुका है । नमक तक नहीं है । कुछ सूखे पत्त खूट कर रचे हैं । उनके साथ कुछ भित्ताने तक को नहीं है । अपनी कुचबाब विद्वान् पति के समीप इत धाया से लड़ी है कि धान्य कुछ भोजन का प्रबन्ध हो सके । पर कंसद की यह सब बेयारी तक का प्रयत्न नहीं है । इससे बत्ती के दूरम पर चोट भगती है । अतीत का तारा मुक नरा हृदय बसके बेजों के प्राये खेल बसता है । सम्पूर्ण बाह्यल परिवार की काया के प्राय में भी ये गरीबी और जमान के दिन बहे थे । बेचारी विधवा बत्ती के तैयों में समु द्युनयना धाते हैं किन्तु वह उन्हें बलकों में बाध लेती है । पति के उपाङ्ग शरीर पर धाँस की दूध न फिर पड़े इसकी तत्ता लाचरानी रहती है । इसमें में निर्जन बहारी के प्र जल से जगतीर बरैम धति अन्तर्मात्रिक से प्रेरित विद्वान् कंसद के बात धाते हैं । बेचारी परिवार के बात धातिम्ब-सरकार के कोई साधन नहीं है ।

महाराज कहते हैं कि उनके राज्य में विद्वान् की वरिष्ठ बीयत नहीं बिताता बाहिष्ट, क्योंकि इससे राजा को पान लभता है । वह उनकी दूर प्रकार सहायता करने को प्रस्तुत हो जाते हैं । सेवा करने की धाता चाहते हैं । विद्वानों और बंदिता को मुक्ति करने में ही धीरव समझते हैं । पर कंसद वह कुछ नहीं चाहते । वे अपनी गरीबी विवशता, धन्य, मुखा और हर प्रकार की कठिनाई की कोई परवाह न कर वह कह देते हैं :—

‘कंसद— तो प्राय हवारी सेवा करने को कुछ संकल्प है ? प्राय हमें मुक्ति करने की प्यारे है ? हमारी सबसे बड़ी सेवा यही होयो कि प्राय फिर कभी यहाँ धान का कष्ट न करें ।

महाराज— ( धावर्ष से ) हैं ।

कंसद— न प्राय किसी कर्मचारी को ही भेजें । सारे जगती वस्तु की कायना नहीं है । मेरे दाय्यवग में भिन्न न पड़ । यही मेरी सबसे बड़ी सेवा होयी । समझे महाराज !”



बच्चों को उसी तरह धुल्लु की बीद में व्यापारपूर्वक छुटपछाने दिया जाय, प्रत्येक उसकी आत्मा को बिर आग्लि दे दी जाय ? याँबी की इस प्रश्न के हम में बच्चों को नुसुबान ही पर्ने लगभते हैं । बाह्य दृष्टि से सामाजिक मर्यादा के हिसाब से यह भीत की आत्मा नाप है किन्तु उन विशेष परिस्थितियों में नुसुबान मुख्य है । अन्त में बापु बच्चों को इन्जेक्शन देकर भार आसने की ही आत्मा दे देते हैं और इस प्रकार से यह संसार से बिदा से लेता है । जो लगते ही मोक्ष कपली धुल्लु प्राप्त हो जाती है । लेखक ने दिखाया है कि परिस्थितियों को सामने रख कर ही उचित-अनुचित तथा पाप-गुण का निर्णय होना चाहिए । इस एकांकी का विषय नैतिक सुस्थापन है । बर्म-संघट्टों के समय पितामों की बड़ी सुबहुक से काम लेना चाहिए और परिस्थिति के हिसाब से ही बर्म-प्रवर्तन के निर्णय लेने चाहिए । अब बच्चों की धुल्लु से बचने की कोई भी समाधान नहीं की धुल्लु का इन्जेक्शन देना भी धर्म ही दिना जायगा । इस निर्णय से याँबी की नैतिकता और आभिरता में कोई भी अन्तर नहीं आता ।

## नेहरू के बाद

११

इस समय यह प्रश्न है कि नेहरू के बाद कीम ऐसा बिहान् कर्तव्यनिष्ठ, त्यागी और चतुर राजनैतिक नेता है जो स्वतन्त्र भारत की बाबडोर सकलतापूर्वक सम्भाल सकता है । लेखक ने दिखाया है कि भारत में अनेक सच्चे देशप्रेमी और निरपेक्ष सेवा प्रवर्तन भी मौजूद हैं जो देश का कुशलता से संचालन कर सकते हैं । इस एकांकी का धूल भाव यों रहा जा सकता है— या ईश्वरताम भव नेतुरप्ते — (अध्याय ३/१/१७) अर्थात् केवल अ दृष्ट व्यक्ति ही जनता के नेता बनें । हमारे देश में जनता के नेतृत्व की बाबडोर अत्यन्त-अनिवार्य व्यक्तियों को ही हाथ में रहनी चाहिए । सच्चा देशभक्त अति, बर्म, इत्यादि को कुछ भी महत्त्व नहीं देता वह तो देश की सच्ची सेवा तथा उसके लिए अधिक से अधिक त्याग में विश्वास करता है ।

इस एकांकी के नायक स्वर्गीय भी रक्षी अहमद किरवर्दी हैं । अब से उन्होंने देश की सेवा का कार्य आरम्भ किया है तब से उनके पुत्रावरण निस्वार्थ भाव सक्रियता, आपकृता के कारण महान् परिवर्तन आये दिखाये गये हैं । कर्तव्य के प्रति निष्ठा के कारण उनसे कामचोर रिक्थता जाने जाने अध्यापारी, फिदावरण आत्मता और सभी करने गये हैं । अमुक और अत्यन्त व्यवहार समाप्त हो गया है । इलाहीवचन असे पुनित



यह सुनकर कस्मीर के महाराज को महाराज के त्याग, संयम विद्याभ्यास अर्थम् के प्रति निष्ठा, एकाग्रता आदि का ज्ञान होता है। महाराज त्यागी ब्रह्मस्य की वरदा रज सिर पर रखते और कुपचाप निकल जाते हैं। आरवा घर की गरिबता घर पर अनुभव करती है और सुन जाती है कि उसके घर में धाब खाने को कुछ भी नहीं है। कैपट पंडित पुस्तक निकालकर पुन उसी में तस्वीर हो जाते हैं।

लेखक ने प्राचीन विद्वानों अथि मुनियों की त्याग-वृत्ति और विद्याभ्यास के प्रति सच्ची निष्ठा को स्पष्ट किया है। हमारे यहां जो यह कहा गया है कि “अग्नि अग्नि ब्रह्मस्य पांचमस्य पुरोहितः (अग्नेव) विवस्वी ज्ञानो, पवित्र तथा संयमी पुरोहित हों।— यह उद्देश्य इस नाटक के नायक में स्पष्ट हो जाता है। सुखी जीवन के लिए अपरिग्रह की आवश्यकता है। अर्थात् सामग्रियों बड़ बड़ आजारों आदमियों सुख से सुख महलों और सांसारिक सुविधाओं के होते हुए भी समुच्च बुद्धि हैं परंतुष्ट नगर जाते हैं। दूसरी ओर ऐसे संयमी त्यागी इन्द्रिय-निग्रही कैपट जैसे महापुरुष भी हैं जिनके पास रहने को घर नहीं है, सोने की व्यवस्था नहीं है भूख मिठाने की भोजन नहीं है कोई निश्चित आयवनी नहीं है और पय पय पर प्रापसिवां जुंहु जाये अड़ो हैं फिर भी बचप से उन्हें सम्मान की कोई भी कामना नहीं है। वे अपने विद्याभ्यास में हमेशा प्रसन्न हुए, हर्षित और मस्त रहते हैं। आबाद के कारण विन्ता और कुल के कोई बिगड़ उनके मूकमण्डल पर हस्तिगोचर नहीं होते हैं। “त्यागाच्चाभिरनमराव” (गीता १२-१२) त्याग से ही परम साधित होती है— यही इस एकलौ की धूल सत्य है और त्याग का महार विवित करने में लेखक सफल हुआ है।

### सुसुधान

पाद और बुद्ध्य धर्म और धर्म उचित और अनुचित धर्म और धर्म— ये सभी शब्दों सापेक्ष (Relative) हैं और निश्चय ही समय की परिस्थितियों से सम्बन्धित हैं। इस धृक्की में ऐसे ही एक धर्म-संकट को स्पष्ट किया गया है। साबरमती आश्रम की घोषणा में राम का एक और बीमार बहुरा तड़प रहा है। आश्रम के वपति अपने उपचार में सफल हैं, पर उनके मृत्यु के मुख से बचने की कोई आशा नहीं। सब उपचार निष्फल होते हैं। रिश्ता बताने रिश्तेदारों के बाद कितने बचत भोपने के बाद भीत प्रायेणी। बापु के समय तक प्रश्न उपस्थित होता है कि

बच्चे को उसी तरह मृत्यु की गोद में अन्धकारपूर्ण छटपटाने दिया जाय अथवा उसकी आत्मा को फिर आन्ति बे ही जाय ? पाँची की इस क्रांति के हल में बच्चे को मुमुक्षुत्व ही बर्न समझते हैं। बाह्य दृष्टि से सामाजिक सर्वाङ्ग के हितार्थ से यह नीति को धारण पाय है किन्तु उन विवेक परिस्थितियों में मृत्युवाण मुख्य है। अन्त में बापू बच्चे को इन्डिक्शन बेकर भार उतारने की हो आशा बे बैठे हैं और इस प्रकार से बहु संसार से निरा से मेठा है। उसे समझे ही मोक्ष कपली मृत्यु प्राप्त हो जाती है। मेहरू ने विचारवा है कि परिस्थितियों को सामने रख कर ही उचित-अनुचित तथा पाप-मुक्त का निर्णय होना चाहिए। इस एकांकी का विषय नैतिक मुस्यांकन है। बर्न समझों के समय मेताओं को बड़ी सज्जद से काम लेना चाहिए और परिस्थिति के हितार्थ से ही बर्न-प्रवर्न के निर्णय लेने चाहिए। जब बच्चे की मृत्यु से बचने की कोई भी सम्भावना नहीं की मृत्यु का इन्डिक्शन देना भी धर्म ही बिना जायगा। इस निर्णय से पाँचीकी की नैतिकता और नैतिकता में कोई भी अन्तर नहीं आता।

### मेहरू के आद

इस समय यह प्रश्न है कि मेहरू के आद कीम ऐसा विद्वान् कर्तव्यनिष्ठ, स्वाधी और चतुर राजनैतिक नेता है जो स्वतन्त्र भारत की बापकीर सफलतापूर्वक सम्हाल सकता है। मेहरू ने विचारवा है कि भारत में अनेक लक्ष्ये देशसेवी और निम्नूह सेवी आद भी मौजूद हैं जो देश का कुशलता से सम्हाल कर सकते हैं। इस एकांकी का मुल आद में कहा जा सकता है— 'वा वैशालीय भव-केतुरान्ते — (आग्नेय ३/१/१७) अर्थात् केवल व द्य व्यक्ति ही जनता के नेता बर्न। हमारे देश में जनता के नेतृत्व की बापकीर आत्म-वलिवासी व्यक्तियों के ही हान में रहनी चाहिए। अथवा देशभक्त अति बर्न, इत्यादि की कुछ भी महत्व नहीं देता वह तो देश की सच्ची सेवा तथा उसके लिए अधिक से अधिक त्याग में विश्वास करता है।

इस एकांकी के नायक स्वर्गीय की रथी अहमद किराई हैं। जब से उन्होंने देश की सेवा का कार्य प्रारम्भ किया है तब से उनके शुद्धाचरस निस्वार्थ भाव सक्रियता आनन्दकता के कारण बहुत परिवर्तन पाये दिखाये गये हैं। कर्तव्य के प्रति निष्ठा के कारण उनसे कामकीर रिश्ता जाने वाले अथवाकारी किरकापरस प्राप्त की और करी करने लगे हैं। अमुक और अन्तर्य व्यवहार समाप्त हो गया है। इसाहीवत्स— जैसे मुनि

बागैदार, डेविड जैसे ब्रिक्क बैरर, कर्तारसिंह जैसे डाक तार विमान के बाहु, रोशनमल्ली जैसे राशन की दुकान के मालिक सभी किरबाई साहब के पक्ष में खँसकर सबक सीख चुके हैं। सैबक ने किरबाई साहब की इन्तानियत तथा कर्तव्यनिष्ठा की प्रशंसी तरह स्पष्ट किया है। उन्हें सच्चे इन्सान के रूप में चित्रित किया है। नाटक का एक मार्मिक अंश इस प्रकार है देखिए —

‘इलाहीबख्त— मुवा की कलम हिन्दुस्तान एक धात्रीब देख है।

डेविड— यह जातियों फिरकीं धर्मों धीर सभ्रबाबों में बँटता आ रहा है बँटता आ रहा है।

बिजयकृष्ण— यह देश का दुर्भाग्य है, पर तथ है।

रोशनमल्ली— लोग दूसरी तरह लोचते ही नहीं। इन्तानियत में लहजे में लोचने की यहाँ की मिट्टी में संभव ही नहीं।

झकरनाल— यह वसत है। यह बाहिषात है।

कर्तारसिंह— कीते ?

झकरनाल— सच्चे इन्सान की लोग कद्र करते हैं। यहाँ जाति धर्म की कद्रई प्राप्त नहीं।

इलाहीबख्त— मुस्लिम तो यह है कि सच्चे इन्सान बहुत थोड़े हैं।

झकरनाल— देखिए हैं वे ही इन्तानियत के बिराद को रोशन रखते हैं। हमारे रकी पहलव किरबाई को मे लो। मुतसमान वे जी हैं न, पर कीन हिन्दू मुतसमान धरक से उन्हें तिर न झुकायेगा ?

कर्तारसिंह— सचमुच जाला साहेब किरबाई साहब बेमिसाल आदमी हैं। उन्हें हिन्दू मुतसमान सब बेहिचक अपना मानते हैं।

झकरनाल— किरकापरसती का हृष्टिकोरण स्वार्थी नेताओं के विषय की प्रशंसा है। बरता के दरबार में कबीर धीर बाहु, रहीम धीर तुलसी धरबी सेवा के अनुयाय से ही आदर-मान के हक्कार होते आये हैं।

बिजयकृष्ण— किरबाई साहब का तो कहना ही क्या .. १”

इस प्रकार सभी पात्र अपने ऊपर बीतनेवाली किरबाई सम्बन्धित घटनाएँ सुनाते हैं जिनसे इस मञ्ची की जागृकता और अप्रत्याचार-निवारण की मनीवृत्ति स्पष्ट होती है। अप्रत्याचार आक्षिप्त क्यों नहीं रहता ? कीन जिम्मेदार है ? और कीन तार्क

जनिक जीवन से इत कमजोरी को दूर कर सकता है ? यह सब कुछ अच्छे नेता ही कर सकते हैं । उन्हें सेवाभाव तथा इत्थानियत की दृष्टि से कर्तव्य निर्धारण करना चाहिए । भ्रष्टाचार निवारण के लिए जनता और अच्छे अधिकारियों को मिलकर कार्य करना चाहिए । सासन की मधीनरी में जो पुर्न भ्रष्ट गप हैं उन्हें कठने की प्रावश्यकता है । अगर हमारे देशवासी राष्ट्र सेवा कर्तव्य पुति और सतत कामककता से कार्य से तो समाज में बने हुए दुस्तकार सामन बन का भीह ईर्ष्या इ न, धन, रंभ कपड, सुसजोरी अर्त्तधन एक स्वार्थवरता दूर हो सकते हैं ।

### कन्यादान

यह एक मजीब प्रकार का एकीकी है । वेसठ साल का मरणातम्य रामेसर मजी, जिसका जीवन मार-मार्ड में ही व्यतीत हुआ है और जिसका परिवार नहीं है । मनमन्ती नामक सांड को अपनी कन्या समझता है । उसकी इच्छा है वह अपनी कन्या का विवाह कर ही मृत्यु को प्राप्त हो । रामेसर की मृत्यु पास आ रही है, मनमन्ती बूढ़ की काँपरी हुई आवाज सुनकर बीकती है । प्राण निकाले देतो है । रामेसर को उसके प्रति बड़ा मोह है, उसके प्राण उसमें धरके हुए हैं । इतने में ओरावर राठीर नामक एक मरुवापी बुचक आता है । वह सांड के जाना चाहता है । उसका सुगर के सिकार में घोड़ा घायल हो गया है । सिकार के लिए अब बने सांड चाहिये । बिन छिपने से पूर्व ही उसे सुगर को मार कर मारता है । रामेसर उसे सामान बना कर सांड का कन्यादान स्वीकार करने का निमन्त्रण देता है —

‘रामेसर— मेरी बात का उत्तर दो कु मर लाहेव । मैं इस इलाके का मनमन्तर रामेसर मजी हूँ । ये मेरे साडी हैं । या तो हम मारों की हुरमा करके तुम उसे जीन से मारो या बेटी का कन्यादान स्वीकार करो । दूसरी दशा में इस इलाके के मचास मोंकों और मेरे रत्न मंडार के तुम स्वाडी होते हो ।”

ओरावर इस बात को स्वीकार कर सांड पाणिग्रहण कर लेता है । बीमार रामेसर को निद्रा की प्राप्ति है और उसमें वह देखता है कि सांड छिपार में सुगर की ठोकर खाकर धिरो तो कमने पास कर पेठ में बाँध मुता दियो । पेठ फाड़ कर धाँवें बाहर कर दी । रामेसर अपने में बड़बड़ाता रहता है । माच रंर पतकता है । फिर उसी दुःख में उसका धीरर शिथिल हो जाता है और धाँवें फली की कमी ही रह जाती है । वह एक

सफल हृदय-विदारक बुझाना एकांकी है ।

लेखक ने स्पष्ट किया है कि बाबू के हृदय में भी बाह्य मनुष्य के पुत्र-पुत्री के लिए न ही पर जानवर तक के लिए वात्सल्य भाव रहता है। पैसेज सान के शमैसर माटी के हृदय में सांड के प्रति प्रथम वात्सल्य भाव है। वह उसका बिछोह भी सहन नहीं कर पाता। विस्फुल बेटी की तरह उसका सम्बन्ध करता और रहेज बैठा है। बाई त शमैसर माटी का यह वात्सल्य और पुत्री प्रेम उसके चरित्र की हमारी दृष्टि में बहुत ऊँचा उठा बैठा है।

## रेवड़ का सौदा

इस एकांकी में निर्धन बर्ग का एक मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया गया है। ग्रहमर पाड़ेवाला अपने कच्चे मकान में बीछा बिछाई बैठा है। उसकी बाहिरी छाँट में एक कुत्ता है, बाई भी पूरी तरह नहीं सुनती। मझोला कब और पु ह पर केबक के साथ हैं। बचने कम उस की एक हसीन स्त्री कातिमा से बिबाह किया है। ग्रहमर कुछ मन्त्र बुद्धि है। मियाँ बीबी की नहीं पसंदी। बीबा नामक पुस्त बालाक बीजबल उसे पोका बेकर छग से बाठा है। बाय बेल बकरी डेड़ और डेड़ सी स्वया नरद के बरसे में वह एक घायल और बीमार ऊँठ बरल बैठा है। इस वर बर्माणन बहुत और लोबा करने वालों में मार पोछ हो जाती है। नाटक की प्रधान पात्री कातिमा पति की मन्त्र बुद्धि पर कुपित है। कुछ ही कभी कभी वहाँ से बाय निकलने तक की योजनाएँ बचाती है। अन्ततः ग्रहमर पर बया करके उसके वहाँ विषम आर्थिक स्थिति से ही समझौता कर लेती है।

लेखक ने विधन बर्ग के एक परिवार का मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है। वहाँ आर्थिक निर्बलता झूठता चरित्र की कमजोरी के साथ साथ अक्षरय प्रकार की बिचपताएँ हैं। समीर लोच, बीसे से उनकी मोरलों की धममत तक पारीबना चाहते हैं। धनुषित सम्बाध कर बीसे कमाने वाले लडा उनके पीछे मने रहते हैं। मुसेमानी ऐसी ही पूर्व बुरचरित्र नारी है। ठीक अवसर पर कातिमा में लहबुद्धि पाती है और लह मुय्या मुसेमानी के पति से बातबाल बचती है। ग्रहमर के जीवन की हीत और धनाथ लेखक ने स्पष्ट कर दिये हैं। यह लज हास्यरस का पुह भी है जिससे इसे Delightful Comedy कहा जा सकता है।

## मुरों का व्यापार

इस एकांकी में कलकत्ता में होने वाले मुरों के व्यापार का विनीत और ध्यायपूर्ण चित्र खींचा गया है। सेठ सिंघानिया का तीन वर्ष का पोता बेलक की बीमारी में बल बसता है। उसका दान्तकर्म करने के लिए घोसाल को कोन किया जाता है। मुरों का दान्तकर्म करना ही घोसाल का व्यापार है। वह २० रुपये लेकर मुरों कटाता है। सिंघानिया अपने पोते के दाँव के लेबल इस रुपये देना चाहता है। मारवाड़ी बचात नहीं देना चाहता तो घोसाल बीच रूपा से दाँव को पुनः उठा लाता है। घर में लात की बेलकर कुहरान बल जाता है। हार कर सेठ सिंघानिया को पचास की बचत हो रुपये देने पड़ते हैं। लेखक ने दिखाया है कि दाँव के वांछित पुनः में और व्यापारों की तरह मुरों तक का व्यापार चल रहा है जो समस्त मानवीय भावनाओं से शुद्ध है। बड़े नगरों में मानवीय संवेदनाओं को स्थान तक नहीं रह गया है। दाँवों का बाह्य करने के लिए भी दान्य कार्यों की तरह काबी करने काम देने पड़ते हैं।

यह एकांकी बीमत्स रत्न से परिपूर्ण है। पुरख की लो भवभीत हो हो उबली है। रात्रि के बने सन्तकार में बनेत बल में निरदा हुमा सिंधु का सध अपने पूर्ण अस्तित्व में उसकी दाँवों के दाने आकर कड़ा हो जाता है। एकांकी का अन्त होते होते पाद करते करते सिंघानिया बायल ला हो पड़ता है कहता है 'लो, उसने मेरे बच्चे को ले जाकर पेढी में डाल दिया। उसके ऊपर दो तीन मुरों और लाकर डल रिये। बेचारा फूल ला दातक बोम से बचा आ रहा है। बीड़ो बचाओ उसे मेरे बच्चे को।' अथ, विमय तथा बीमत्स रत्न से परिपूर्ण यह एकांकी हमारे आधुनिक समाज पर तीखा ध्वज है, जिसमें मानवीय संवेदनाओं को कोई स्थान नहीं रह गया है।

## स्नो और पाउडर

यह एकांकी बाल मनोविज्ञान पर आधारित है। रतन और किशु रासमन के दो पुत्र हैं। वे घर में बहुत उदास रहते रहते हैं। रासमन तथा उनकी बहन रेशा इस कब्रिता से बहुत परेशान हैं। बच्चों की तोड़ फोड़ के कारण उन्हें लम्बा देने की सोचती हैं। वे दोनों पूरे बहिष्कृत हैं। उनका बड़ोसी जपबीत बाल मनोविज्ञान से परिचित है। वह बतलाता है कि बच्चों द्वारा की गई तोड़ फोड़ उनकी रचनात्मक प्रकृति और प्रतिभा को स्पष्ट करती है। अतः हमें बच्चों की चारदलों के प्रति अपना दृष्टिकोण

कारण एकनाथ अपनी निश्चय से विरत नहीं होना चाहते हैं। वे इसे एक ब्रह्म मानना शुरू करने पर सुते हुए हैं। इतने में धुआँ प्यासा धातुन लड़कड़गा हवा एक दस महीन करता है और प्यास से व्याकुल हो एकनाथ के सामुख फिर बढ़ता है। तब एकनाथ कदवा से घाबोड़ित होकर उसे देखने लगते हैं। सब घात्री "पानी लाओ! पानी लाओ!" कह कर बिस्माते हैं किन्तु दासपास कहीं पानी नहीं है। इसलिए सब इधर उधर मागते हैं। तब एकनाथ हतबुद्धि से कदवा भर घाबोड़ की ओर दौड़ते हैं और फिर ठड़फटे हुए उस घुट पशु की ओर। दकावक कर्तव्यविभूत उनके नामक में प्रकाश की प जाता है। किसी ओर से बल दाटा न देखकर वे अपनी काँवर से बलदा उतार लेते हैं और भरते हुए पदों के मुँह से लपका देते हैं। पवित्र संसारक उस महामाय बड़े में घबुत का खोल बन कर विरता है। वे बूझा कदवा भी उठा लेते हैं और उसे बिताने लगते हैं। जिस मगावक के लिए उन्होंने सब लस स्वर्ण मुद्राएँ वहीं ली, कदवा ओर दयावश कहीं संसारक एक पदों के प्राण बचाने में व्यव होता है। एकनाथ के साथी उन्हें मुँस बतनाते हैं। लेकिन तब एकनाथ इसी की जमवान रासोवर का पुष्पाभियेक लगभगते हैं। उनके एक-दोनों ने कितना प्राममसतोष करा है इसलिए—

जो भी शक्ति से है। भयबान का स्वस्व ही इन सब चीजों में व्याप्त है। इस चीज की शक्ति से जोड़ कर वो व्यक्ति बनकर या मातृ की शक्तियों की सेवा करते हैं, वो शक्ति से दूर। भयबद्ध बन्तों को अपने इस विश्व दृष्टिकोण से अनुपम तो क्या, समस्त चीजों पर अपनी बखला की वर्षा करनी चाहिए। शक्ति के व्यावहारिक स्वस्व को व्याख्या इस प्रकार में प्रस्तुत की गई है।

## सामाजिक न्याय

प्रस्तुत एकांकी में हमारी व्यक्ति समाज-व्यवस्था पर ध्यातु किया गया है। हमारे समाज के प्रस्तुतता का कलक सब तक नहीं हटता, सब तक समाज पर एक बड़ा बंधन विस्तृत और उपस्थित ही रहता। यह एक कठु सत्य है कि प्रजापुत्र, वर्ग, जाति, जनोप के ही संकीर्णता हमारे समाज, और देश की प्रगति में बाधक है। ऐसे हिन्दू समाज की प्रजापुत्रता की बड़ी हानि पहुँची है। हमारी समृद्धि की ओर से कठु हिन्दुओं ने बड़ी हानि पहुँचाई है। हिन्दू समाज ने अपने २० प्रतिशत पूरा पूरा और विपन्न हुए पेशा करकेवाले व्यक्तियों को बचाने रखा और उनकी शक्ति सेवा के लिए प्रयत्न कर ही।

इस एकांकी के नामक मनुष्यता पोषी की है। व सबकुछ हिन्दुओं से प्रतीत करते हैं समाज से हरिजनों के प्रति कृपा का भाव निकाल रहे। परिवर्तों में जाकर प्रजापुत्र। सबकुछ की तरह बुद्ध और वर्णन करें। जो भी हकमान, शास्त्र, बनील सब अपना बना कर दें और सबका समान रूप से समाज में सम्मान हो। मनुष्यता बांधी की से प्रत्येक इस एकांकी के प्रारंभ है। —

११११

‘मनु— मेरी माता हरिजन माता है इसलिए कि हरिजन समाज के सबसे बड़े बाधक हैं। उन्हें अपने भक्तु ठहराया। सामाजिक व्यवस्था का यह भाग हमारी बाधता में कारण है। उसका परिमार्जन ही हिन्दू धर्म की उबार सक्षम है। हरिजन माता के धर्म की ओर हैं। उनके हाथों में सब चीजों का निवास है। मैं इस माता में सबकुछ हिन्दुओं को यह कहने निकला हू कि हरिजनों की समाज में समाज बर्बाद बिये, बिना सामाजिक व्यवस्था का कोई प्रभाव नहीं है। ... यदि माता सबकुछ मुझे प्रसन्न करना करते हैं तो हरिजनों के साथ होनेवाली सामाजिक भेद-भाव को दूर कर गिरी माता की उबार बनाओ। उन्हें भेद से भले लगाओ, उन्हें अपने घर के परिवर्तों में, से, जलो



कारण एकनाथ अपने निश्चय में बिरत नहीं होना चाहते हैं। वे इसे एक व्रत मानकर पूर्ण करने पर तुले हुए हैं। इतने में सुला प्याता आकुल लड़खड़ाता हुआ एक नया प्रवेश करता है और प्यास से व्याकुल हो एकनाथ के सम्मुख पिर पड़ता है। संत एकनाथ कबला से आलोकित होकर उसे देखने लगते हैं। सब मात्री 'पानी लाओ! पानी लाओ!!' कह कर बिस्ताते हैं किन्तु आतपास कहीं पानी नहीं है। इसलिए सब इधर उधर नाचते हैं। संत एकनाथ हतबुद्धि से कुछ भर साकाश की ओर देखते हैं और फिर तड़कते हुए उस मुक्त पशु की ओर। यकायक अर्धव्यवस्थित उनके मानस में प्रकाश हो प जाता है। किसी ओर से जल आता न बेलकर वे अपनी काँवर से कलश उतार लेते हैं और भरते हुए पर्व के धुह से नगा देते हैं। पवित्र संवाजल उस महामाग पर्व में समुद्र का स्रोत बन कर बिरता है। वे दूसरा कलश भी धरा लेते हैं और उसे पिलाने लगते हैं। जिस मयाजल के लिए जगुंनि लल लल स्वर्ण सुहम् नहीं ली, करता और बबाबद वही संवाजल एक पर्व के प्रातः बचाने में व्यय होता है। एकनाथ के साथी उन्हें मुर्ख बतलाते हैं। लेकिन संत एकनाथ इसी की अवधान रामेश्वर का पुष्पाभिवेक समझते हैं। उनके अस्तिम अर्थों में कितना अस्मत्तंतोष भरा है देखिए—

"एकनाथ— (ममता और स्नेह से पुलकित होकर गले पर हाथ करते हुए) मैं तो जबबानू रामेश्वर का ही पुष्पाभिवेक कर रहा हूँ। मैं ही तो मेरा ज्ञान हुआ पवित्र संवाजल पी रहे हैं। ओह! कितना संतोष है जबकी पाँवों में। मैं जाने क्या से प्यासे थे थे? पुण पुन की जबकी प्या को बुझाने का इस अविवन की लीभाय मिलता। आज मैं मग्न हुआ। आज मैं कुतार्न हुआ। मेरे परमाराध्य जगुं आरकी अविवन बरिह के तिरा मुने ओर हुए न चाहिए। साकली पाँवों में लिग्न स्नेह की जो अवोति कप छड़ी है वससे अधिक मेरे लिए कोई अवधान नहीं।"

इस आभाबध सं संत बिलोर ही अवधि विश से निहारते रहते हैं। पुलकित होते रहते हैं। जब उस शुरुक प्रवेश की पुच्छबुमि में रामेश्वर की अवभा अवरासि लहराती हुई दिखाई देती है और सब को अवधान रामेश्वर के बिरम् कप के दर्शन होते हैं।

लेखक ने लिखाया है कि बीबी पर बया, जैसी ही वे बितने ही निम्न कात्रि के गले लीते निहृष्ट पल ही क्यों न हों, ही लवते अवेक भलि है। बया का सम्बाध प्रभु की

सबसे भक्ति से है। भगवान का स्वरूप ही इन सब चीजों में व्याप्त है। इस जीव सृष्टि को छोड़ कर को व्यक्ति घर-घर या मातु की मूर्तियों की सेवा करते हैं, वे भक्ति से दूर हैं। भगवद् भक्तों को अपने ईश्वर निर्धन रहनेवाले अनुपम तो क्या समस्त चीजों पर अपनी कहला की बर्बाद करनी चाहिए। भक्ति के व्यावहारिक स्वरूप को व्याख्या, इस मात्रक में प्रस्तुत की गई है :

### सामाजिक न्याय

प्रस्तुत एकांकी में हमारी दूषित समाज-व्यवस्था पर आक्रामक किया गया है। हिन्दू धर्म से अस्वस्थता का कलक जब तक नहीं हटता, तब तक समाज का एक बड़ा बर्ष तिरस्कृत और उपेक्षित हो रहेगा। यह एक कठु तरव है कि पुनरावृत्त बर्ष, जाति, ऊच्चनीच जैसी संकीर्ण भावनाएँ हमारे समाज, और देश की प्रगति में बाधक हैं। इससे हिन्दू समाज की आचारप्रवृत्त एकता को बड़ी हानि पहुँची है। हमारी समृद्धि को रोकने में कंठुर हिन्दुओं ने बड़ी हानि पहुँवाई है। हिन्दू समाज ने अपने २० प्रतिशत अल्प, गुरु और पिछड़ हुए वेदा करनेवाले व्यक्तिगणों को रखाये रखा और उनकी सम्पत्ति सदा के लिए अवरुद्ध कर दी।

इस एकांकी के माध्यम बहुमता पायीं की हैं। वे अवर्त हिन्दुओं से अपील करते हैं कि समाज से हरिजनों के प्रति दृष्टा का भाव निकालें। भविष्य में जाकर अल्प भी सबलों की तरह पूजन और वर्धन करें। मोची हज्जाम, वागट, बक्रीन सब अपना अपना काम करें और सबका समान रूप से समाज में सम्मान हो। महात्मा गांधी जी के ये शब्द इस एकांकी के प्राण हैं :—

1110

बापू— मेरी माता हरिजन माता है इसलिए कि हरिजन समाज का सबसे बड़ा सेवक है। उन्हें हमने धन्य ठहराया। सामाजिक अन्धकार का यह बाप हमारी बलात्ता का कारण है। बलका परिणाम ही हिन्दू धर्म को उबार सकता है। हरिजन मंदा के निर्धन वीर हैं। उनके हाथों में सस्त्र तीरों का निवास है। मैं इस माता में अवर्त हिन्दुओं को यह कहने निजता है कि हरिजनों को समाज में समान दर्जा दिये बिना सामाजिक उत्थान का कोई उपाय नहीं है। ... यदि बाप सम्मुख मुझे प्रसन्न करना चाहते हैं, तो हरिजनों के साथ होनेवाले सामाजिक भेद-भाव को दूर कर देरी माता को सकल बनाओ। उन्हें प्रेम से पाले लयाओ, उन्हें अपने साथ भविष्य में, से लो

ताकि वे भी समानता के वर्धन कर सकें। उनके लिए सब सार्वजनिक स्थान खोल दी — ।’

सम्पूर्ण एकाधिकी में हरिजननों के सम्बन्ध प्रत्यक्ष तथा धन्युभ्यता को दूर करने का भाव प्रकट किया गया है। लेखक ने दिखाया है कि हिन्दू समाज को इस तकीर्त समोच्चता से बड़ी हानि पहुँची है। जो एक बार निम्न कोटि के पक्ष में पड़ गया है, उसे उठती ही बचकू कर बांध दिया गया है। उससे यदि वह निकलने के लिए क्षम्यता है, तो निकलने नहीं दिया जाता। घुलघुल और क्षीयता की ऊँची ऊँची प्रसंध्य बीमारों उसे बाहर निकलने नहीं देती। धन्यु पर्यन्त उसे ऊँचे बलों के हाथों सामाजिक अपमान या तिरस्कार का कबुजा घूँट पीना पड़ता है। इस रोज रोज के अपमान से तब धा कर हिन्दू समाज की धार्मिक छोटी छोटी जातिवादी मुत्तमनल या ईसाई हो गई है। बचकू होती जा रही है। अतः हिन्दुओं को इस समस्या पर गंभीरता से विचार करना चाहिए। लेखक ने हरिजननों के नर का कठोर समर्पण करते हुए समाज में उन्हें समान दर्जा और समझे व्यवहार की प्रतीति की है। धन्युभ्यता की भावना ने हिन्दू समाज को निर्बल बना दिया है। धन्युभ्यता निवारण के प्रमुख कारकों धन्युभ्यता, धर्मिया प्रशिक्षा और जीवन धर्म धर्मविषयों धर्मि की तदा के लिए समाप्त कर देना चाहिए। इस विषय में सब सरकार ने वैधानिक प्रयास भी किये हैं, किन्तु उन्हें परिहार करने का मार सब जनता के ऊपर है। हमारा कर्तव्य है कि हम सम्पूर्ण हिन्दू समाज में समान व्यवहार तथा समानता की विचारों में प्रयत्न करें।

## अगारों की मोत

भारतीय स्वाधीनता संघाय स्वयं अपने आप में ऐसी ऐसी सहस्र बीरता, पौरव, स्वातन्त्र्य प्रेम राष्ट्रियता और बलिदान की शोभापूर्ण घटनाएँ समेटे हुए हैं कि उनमें से प्रत्येक पर एक एक भागिरा नाटक लिखा जा सकता है। ‘अगारों की मोत’ (१९६१) नाटक में सन् १९२४ से लेकर २३ मार्च १९३१ तक सरकार भयतिरिह मुखर्जी और राजपुत्र की फाँसी तक की अनेक घटनाओं तथा स्थितियों की संज्ञाया गया है। भयतिरिह, मुखर्जी राजपुत्र अन्धधरधाराय बहुदेखरवत धर्मप्राप्त धर्मि इस नाटक के प्रमुख पात्र हैं। उन्हीं से सम्बन्धित सारा घटनाओं की लेकर एक संक्षिप्त कथानक का निर्माण कर लिया गया है, लेकिन नाट्यकार का मुख्य उद्देश्य आजादी के लिए प्रयत्न करने और



विद्यार्थी भी कहते हैं "प्रताप संकटों में ही बढ़ा और संकटों में ही बड़ा हुआ है। संकटों से सब उसे भय नहीं रहा है।" मिथ भी के घरों में 'हुकुमत' प्रताप "को बचावने पर तुली हुई है।" और "प्रताप" उसे समुद्र पार भेजने के लिए कृतसंकल्प है। इसी समय पोस्ट से वो हजार का ड्राफ्ट आ जाता है। बाता का नाम नहीं है। सबको इस बात का हर्ष होता है कि जलता कमार्बन ने इस पत्र को छाती से लगा लिया है। पता: यह मर नहीं सकता। इसी समय हैब्सबार्गरी घामन्सुक के रूप में यक्षतिह नौकरी के लिए प्रवेश करता है। यह मिस्रुह युपक नेबल देश की लक्ष्मी सेवा की उत्कृष्ट भावना लेकर ही 'प्रताप' कार्यालय में आया है। यह स्वतन्त्र नाटक का एक भागिक स्वतन्त्र है।  
 विक्षिप्त :—

११ घामन्सुक— आप मेरी आश्चर्यकृतियों की ओर न देखें सिर्फ कोई काम बता दें ?

१२ विद्यार्थी भी— फिर भी आप जैसे शिक्षित नवयुवक को पचास साठ मासिक तो चाहिए ही।

१३ घामन्सुक— यही २०-२० लेकर मुझे क्या करना है? दोनों समय किसी तरह देह भर जाय। बस इससे अधिक कुछ नहीं चाहिए।

१४ विद्यार्थी— ऐसा है।

१५ घामन्सुक— जी, मेरी इच्छा तो आपके घरों में रहकर कुछ काम करने की है। आपके कुछ सील सड़ना वह मेरा सौभाग्य होगा।

१६ विद्यार्थी भी— अच्छा तो आप आज से प्रताप परिवार के सदस्य हो गये। इस कार्य में, जी आप भी कार्य में और हम जुड़े रहेंगे तो आप भी रहेंगे।

१७ विद्यार्थी भी— यक्षतिह के घरों पर मुख हो जाती हैं और बलबल के नाम से नौकरी प्रारम्भ कर देते हैं। ऊपर घर में उनकी आज्ञा लक्ष्मी जाती है। उन्हें विवाह के आयन में बांधने की तैयारी हो रही है। सिद्धि इस प्रकार भाग कर उन्हें यह बताया जा रही था कि वह घर बनाने के लिए नहीं देश बनाने के लिए पैदा हुआ है। सभी तो देशसेवकों के घर जन्मा है। मैदानल बालेज में ही उसे भयवर्तीचरण, राजपुत्र, मुकदेष, पद्मबाल जैसे साथी मिले हैं। अतः देश सेवा के जत्ते को घर से भागने के प्रतिरुद्ध और कोई धारा ही नहीं था। 'प्रताप' कार्यालय में ही उनकी मुलाकात साथी ब्रह्मेश्वरवत्त ने होती है। दोनों के मयाज उद्देश्य हैं। मनीष भी और पानीबाल भी बाहर आने जाते



विद्यार्थी भी कहते हैं "प्रताप संकटों में ही अम्मा और संकटों में ही बड़ा हुआ है। संकटों से सब उसे मज नहीं रहा है।" मिय भी के छात्रों में "हुकुमत" प्रताप "को बचावने पर मुनी हुई है।" और "प्रताप" उसे समुद्र पार भेजने के लिए कृतघ्नकर्म है। इसी समय मोस्ट से दो हजार का ड्राफ्ट था जाता है। बाटा का नाम नहीं है। सबको इस बात का हर्ष होता है कि अमता बगार्वन ने इस पत्र को छाती से लगा लिया है। अब वह मर नहीं सकता। इसी समय हितसूक्ष्मारी आयन्मुक के रूप में अपतसिंह नीकरी के लिए खोज करता है। वह तिस्रहू धुलक केवल बैरा की तबको सेवा की जरूरत भावना लेकर ही "प्रताप" कार्यालय में आया है। यह स्वतः नाटक का एक मार्मिक त्वन है देखिए—

११ आयन्मुक— आप मेरी आवाजकताओं की ओर न देखें सिर्फ कोई काम बता दें ?

विद्यार्थी भी— फिर भी आप जैसे शिक्षित नवयुवक को यहाँ साठ मासिक तो चाहिए ही।

१२ आयन्मुक— नहीं २०-३० लेकर मुझे क्या करना है? दोनों समय कितनी तरह पैदा मर जाय। वक्त, इनसे अधिक कुछ नहीं चाहिए।

विद्यार्थी— पैसा है।

१३ आयन्मुक— जी, मेरी इच्छा तो आपके कार्यों में रहकर कुछ काम करने की है। आपसे कुछ तोज लूँगा वह मेरा तीमाग्य होया।

१४ विद्यार्थी भी— अच्छा, तो आप आज से प्रताप परिवार के सदस्य हो गये। हम कार्यो तो आप भी कार्यो ओर हम खुले रहेंगे तो आप भी रहेंगे।

१५ विद्यार्थी भी— अपतसिंह के बपनों पर मुग्ध हो जाते हैं और अलबन्त के नाम से नीकरी प्रारम्भ कर देते हैं। उधर घर में उनकी ओज मज आती है। उन्हें विवाह के आयन में आने की संपादी हो रही है। लेकिन इस प्रकार भाव कर उन्हें यह बताया जाकर या कि वह घर चलाने के लिए नहीं पैसा बनाने के लिए पैदा हुआ है। सभी तो ईश्वरों के घर अम्मा है। नेशनल नासेज में ही उसे नवयुगीन रात्रयुक्त हुकूमत, यद्यपि जैसे सभी मिले हैं। अतः बेज सेवा के सभी को घर से भागने के प्रतिरिक्त और कोई चारा ही नहीं था। "प्रताप" कार्यालय में ही उनकी मुसाफिर सभी बहुदेश्वरता से होती है। दोनों के समान उद्देश्य हैं। नवीन भी और वामीवाल ओ बाहर चले जाते

हैं और 'प्रत्यक्ष' के सम्पादकीय तथा उसके प्रकाशन का सारा भार भयर्तसिंह पर आ जाता है। इस प्रकार प्रमाण इवम् में ही भयर्तसिंह तथा १९२४ के राजनैतिक संघर्ष की मोड़ी मिल जाती है। संघर्ष का वातावरण बनता जाता है। हमारा ध्यान उन चीजों की ओर खिंचता जाता है जिन्होंने कांग्रेस के पीछों की धपने रक्त से लीबा है। —

इस प्रकार के दूसरे दृश्य में ईस्वी सन् १९२६ की ग्रीष्म ऋतु में कानपुर की एक पुष्पान बस्ती में एक बुढ़ासा सा मकान है। 'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन पार्टी' के कार्य को कानूरी दृष्टि से इसकी के सम्बन्ध में हुई तापियों की निरक्षारी से काफी क्षति पहुँचती है। उसे फिर से संयोजित करने और धामे बढ़ाने पर विचार करने के लिए सब के सख्त दूर दूर से धाये हैं— भयर्तसिंह, सुखदेव अग्रसेनर आजाद, भयर्तसिंहरत सिद्ध बर्मा, विजयकुमार विन्हा, कलाम्नी प्रीत, आनिप्रम अदुकेवरदत्त आदि आदि। देश की आजादी का जो बत इन्होंने सिखा है वह सबके सामने है। इस समय की-सिद्धि में अर्हति बहुत से बाकी को रिये हैं, पर मुँह भारी है। विजयकुमार के लक्षों में — ।

“राष्ट्र का धर्मवत् हममें से हर एक को काम कर सकता है पर वह उस बुद्ध को धर्म नहीं कर सकता जिसे हमने छोड़ा है। वह भारी रहेगा। देश की आजादी का लक्ष धामे वह स्थिति दूर हो, हमारे करीब आ रहा है। इसी धर्म विश्वास को लेकर हम सब यहाँ इकट्ठे हुए हैं। बुद्ध के विचारधारा में व आजी बुद्ध का एक भक्तता बना सेवा चाहते हैं।

1-1

अग्रसेनर आजाद कहते हैं “मैं अपने आपको आजादी का एक सिपाही पर मानता हूँ। बुद्ध के जिस मोरचे पर लड़ने का प्रयत्न हो मैं तैयार हूँ। इनसे मिल भर भी खिलकने की बात धाय नहीं सुनो आहें धारीर की बोटी बोटी बदल में खिलक आय।”

भयर्तसिंह बोल्ते हुए कहते हैं “हाल की घटनाओं के इन्हारे संघर्ष की बाटी क्षति पहुँचाई है। सब तरह के प्रयासों में हम धिर गये हैं। बहुत दिनों के हमारे प्रयत्न व्यस्तब्यस्त हो गये हैं परन्तु इनमें क्या हम हुनाग डी जायेंगे? अगस्त १९२६ की इकट्ठे न होये। हमारे दिन और दिमाग जिन बचिभ उद्घम व जिन दुर्घटनाओं में, वह इतना ऊँचा धोर भय है कि हम उसे छोड़ नहीं सकते — कई जिन जिन प्रयत्नों की सीमाएं हमारे काम में बाधा न पहुँचा सके।”

इस प्रकार 'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन पार्टी' का प्रयत्न सब मैत्री के रूप में



नेतृत्व के लिए तैयार होता है। कई नामों से हर प्रदेश में प्रत्यक्ष प्रत्यक्ष नाम प्रारम्भ होता है। धार्मिक संघर्ष के प्रकल्प बनते हैं। पुनर्निर्माण की योजनाएँ तैयार की जाती हैं। धर्म-धर्म का प्रारम्भ कोई धार्मिकता से राष्ट्र को उठाना ही नहीं, लोग जन-जागृति का कार्य करना है। देश के नेता भी जनते भय करते हैं कि कहीं वे अपने कार्यों से उनके नेतृत्व को खोना न कर दें। लेकिन आधिकारिकों की नेताओं की बरबाद नहीं। उन्हें केवल यही डर है कि कहीं इससे जनता गुमराह न हो जाये। इस लिए विभिन्न विभिन्न नामों से इसी की योजनाएँ आधिकारिकों के देशप्रेम स्वतन्त्रता के महान् लक्ष्यों तथा धर्मधर्म से प्रभावित कराने के प्रारम्भ से स्थापित होती हैं।

इस दृष्टि में व्यक्ति के लिए तैयारियों का प्रारम्भिक रूप दिखाई देता है। इन के कार्यकर्ता संस्कृति धर्म, सम्प्रदाय आदि धर्म को छोड़ स्वदेश-सेवा की भावना धर्म में डुबते हैं। वे देश को ही बिल्कुल चारों नहीं करना चाहते जिससे किसी प्रकार का भेद भाव प्रकट हो। कभी से कभी बड़ी हत्यादि ताक की जाती है यकीनकीत तोड़ दिया जाता है। अब सर्वप्रथम हिन्दू मुसलमान सिक्ख क्रिश्चियन न रहकर सभी भारतीय बन जाते हैं। राष्ट्र-धर्म में दीक्षित हो जाते हैं। धर्म इन के प्रारम्भ स्पष्ट करते हुए प्रकटित करते हैं —

‘सुखानी धर्म से काम करो हमें देश की रथों में घुम कीला देना है। लोगों को बसा देना है। सुखान को यह बता देना है कि हर जगह उनके लिए हमारा मोर्चा तैयार है। हर जगह मुझे संघर्ष प्रचार और सहायता के लिए हमारी बीठ बर होनी —।’

यह कोई साधारण अभियान नहीं है पुनर्निर्माण भी सतर्क है तब योजनायुक्त कार्य की तैयारी होती है। इस दृष्टि में अवसर्गिक अग्रगण्य धार्मिक, और राजगुरु हत्यादि के आधिकारी चरित्र उभर कर ऊपर उठते हैं। धर्म के कार्य के प्रति हमारी जिज्ञासा आवृत्त होती है।

तीसरे दृष्टि में सन् १९२६ में आगरा के गुरी बरबादे के भीतर हिन्दुनाथ ओझासिंह, रिचरिचकन धर्मों की छावनी का सिबिर देख पड़ता है। आज़ाद जगन्निह बिजयकुमार, ब्याजताव, बेधध्यायन सहासिधराम, मुसदेव भवभानुधाम हत्यादि उल्लिखित हैं। इसमें जीवन का दृष्टि है। हर प्रकार के प्रभाव होने हुए भी देश के लिए सर निरन्तरता में त्याग और धर्मन की भावनाएँ उभरी हुई हैं। तब प्रकाश में

पक्षी मृत्यु की बाधा बकार की बह्यवाएँ कर रहे हैं। पक्षा लड़ते हैं। योवेरा बारा की पुलिस के बंने के घुड़ने की घोषणाएँ बनती हैं।

जोने हम्म में लहौर के धामोमार बाम में १६१६ के प्रचदुकर लहौर के सार्यकाल बिबित किया गया है। पार्क के एकांत दुकान की छाया में भयतलह, मयबतीबरख और मुकरेव पास पर लेते हैं। कार्यकाल हो चुका है। वे बुपबाव इस की प्रतिबिम्ब की बातें कर रहे हैं। उह पाक के दुप्यों लले प्रमियों के दुपय लबा विर्जी के इस धाते हैं और मिल मिल प्रकार की बलबोल करते हैं। इती काम में दोबुद्धों द्वारा लेलक के मयतलह के नेतृत्व में होनेवाले कान्तिकारी कामों की प्रतिक्रिया दिखाई है। इससे कान्तिकारियों के प्रति बलता के भाव दिखाये गये हैं। रामलीला में एक बम बरता है जो धायर लिटी मुकतमान दुप्यों के द्वारा हुआ है। लेकिन इसका नाम कान्तिकारियों के जिम्मे लपाया जाता है। पुलिस घरमर्मी से जाँच करती है। उसकी बाड़ लेकर कान्तिकारियों की पकड़ का भावाभास होता है।

दुसरे पक्ष के प्रथम हम्म में लहौर में कान्तिकारियों का गिबिर दिखाया गया है। १६१५ के दिवस का मध्य और दिन का तीतरा पहर है। साहयन कमीशन के बहिष्कार के मुकूत का नेतृत्व करते हुए पुलिस के लपड़ी-ग्रहण से बाहल लाला लाकपतराय की मृत्यु लतरह दिन में ही हो गई है। इन कुत्तित दुप्यटना से चम्पु प्रेमी बलता के मन में एक प्रकार का क्लार ला छा गया है। उती तिलमिले में बयला करन बलने के लिए एब० एल० धार० ए की बैठक बुलाई गई है। इस बैठक में लाला लाकपतराय की मृत्यु का प्रतिशोध लेने का निर्णय किया जाता है। इस इसे राष्ट्रीय जनमान समझते हैं और इसलिये बलता लेने में कोई कसर नहीं रखना चाहते। इस निर्णय के साथ एक बहुत लड़ा मोर्चा जुमता है। राजगुप एकेले ही लाला की की हत्या का बरता लेने की कठिनाई है।—

“राजगुप— लाला की का बरता तो मैं सोचता ही के बलता हूँ। एब० एल० धार० ए का मोर्चा इस छोटे से काम के लिए जोलने की क्या बकरत है?”

इस पर मयतलह कहते हैं, “इस समय मैंने हुए लिपाहियों की हमारे लिए बड़ी कीमत है। इन किसी एक को भी बिना पूरी चौकसी के लतारे में नहीं लीक लभते।”

बित प्यलित ने लाला की की हत्या की है उनके पीत की सजा की जाती है।



“मपठतिह— साबियो, बाबाओं और कठिनाइयों के बावजूद भाव हमारी स्थिति  
 है। आपने का काम पूरा हो गया है। अब हम बिस्नी में जा रहे हैं। उत्प्रेषण-केन्द्र  
 हर प्रेस के लिए प्रत्यक्ष प्रत्यक्ष बनाने की व्यवस्था हो गई है... साइमन कमीशन को  
 हम अपने तीव्र बंद नहीं कर सके और वह इस देश से जाने की तैयारी में है। इसका  
 मतलब ही यह मया। वह हमारी बाबनाओं को समझ कर जाता तो अपनी रिपोर्ट सही  
 रूप से बनाने में उसे जरूर मदद मिलती। असेम्बली में कहने की तो बात के  
 प्रतिनिधि हैं पर होता नहीं है जो सरकार चाहती है। हमारे प्रतिनिधि किसी अनिष्टकारी  
 या अन्यायी कानून के खिलाफ रस्य बैठकर उसे प्रभाव्य कर दें, तो भी सरकार उसे  
 बिलो धरेश से समझ में ले पाती है। ऐसे ही दो दिन “धोखेपत्र विचार” और  
 ‘सर्वजनिक सुरक्षा’ असेम्बली द्वारा रद्द कर दिये गये हैं पर सरकार विधाय कानून  
 द्वारा उन्हें कानून बना देवी। एक हमारे अधिकारों के अधिकार को चुनौती देना तो दूसरा  
 हमारी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का अपहरण कर लेना —।”

इस पर बिजयकुमार स्पष्ट करते हैं कि सरकारी परिस्थितियों में एच० एल०  
 धार० ए० का कर्तव्य जनता के हितों की रक्षा ही उचित है। असेम्बली जिन बिलों को  
 रद्द कर दे, वे कानून न बन सकें भूत बात सरकार के बहरे कार्यों को सुनाने के लिए  
 अन्यायी उसका ध्यान अपनी ओर खींचना चाहते हैं। क्योंकि सरकार असेम्बली के  
 बहुमत का विरुद्ध करके जनता की ओर खींचना करे सती समय असेम्बली में विस्फोट  
 बिये जाय और इस तरह लोक-शासन की व्यवस्था बिगड़ जाय।

इस कार्य के लिए कौन जाय ? इस प्रश्न पर देर तक वाद विवाद होता है। हर  
 साक्षी जाने का प्राप्ति करता है। अंत में असेम्बली में वाद खेदों का उत्तरदायित्व  
 मपठतिह पर सी पा जाता है।

जैसे दृश्य में १९५६ के समयकाल नहीं बिस्नी में असेम्बली के एक माननीय सदस्य  
 की कोठी में असेम्बली में जन-विस्फोट के जाती जयकर, मीठीलात मेहक और  
 सौकुंमि किन्तु बड़े बर्बा कर रहे हैं। उनके अनुसार असेम्बली द्वारा विरुद्ध बिलों  
 को कानून बना देने के कारण ही यह विस्फोट हुआ था। मपठतिह और दत्त दोनों बल  
 खेद कर इन्कलाब के नारे लगाते रहे। उनके विवाह में काफी नीतियां थी किन्तु  
 उन्होंने किसी को धुन नहीं किया। मपठतिह को लगा कि विस्फीत उसके हाथ में है।  
 इसी से साधक पुस्तित जाने नहीं पा रही है। उन्होंने पिल्लों को खेद दिया और जानी

हाथ बड़ें हो पये और सब सामान्य पेरी में आगे बढ़ कर उन्हें विरफ्तार किया।

इस समय में सैकड़ों में क्रांतिकारी दल के गुप्त इरादों की प्रकट किया है। क्रांतिकारियों ने बड़ी बहादुरी से जनमानस को व्यक्त किया और गुलामी की जंजीरों छोड़ने में जन-मानस को प्रेरित किया; लेकिन विदेशी व प्रेमी सरकार ने उनके इरादों को दुरे से दुरे रूप में प्रस्तुत किया और उनके नैतिक साहस को संशय करने के लिए कमीने हथकड़ों का प्रयोग किया। सैकड़ों ने दिखाया है कि भयतःसिंह तथा उनके साथी प्रकट देश प्रेम के बलीभूत थे और उनके साहस ने असेम्बली को धिक्का दिया।

सत्रहवें महीने में १९ सितम्बर १९२८ का एक लापकाल बिक्रित है। बंजारा परबर्नर ने लाहौर उद्दाम-भरणी समस्त कागजात तलब किये हैं। एक अधिकारी गुप्त कागजों का परीक्षण करता है। सैकड़ों ने अग्रयण रूप से भयतःसिंह के चरित्र और प्रतिष्ठे में छाये घातक को प्रकट किया है। प्रेमी सरकार की नीति तथा भारतवासियों की प्रति दुर्भबहार के भी विरुद्ध हैं। सरकार की कमजोरी स्पष्ट कर दी गई है। इसका एक दार्शनिक स्वतः इस प्रकार है —

‘अधिकारी— १७ बुलाई भयतःसिंह द्वारा अदालत के सामने प्रतिष्ठे के दुर्भबहार की बकवास। अपेक्षा करती जाने पर मुकदमा दूसरी अदालत में से जाने की प्रतीति। प्रतिष्ठे सुपरिन्टेण्डेंट से भयतःसिंह की भद्रता। उद्दाम के लिए अदालत द्वारा बखियों के लिए बंध की घोषणा।

परबर्नर— स्वयं की और सबका की सुविधा थीम ली यही न? बहुत हल्का बंध। इससे उनके हौसले बढ़ें हैं।

अधिकारी— बकर धीमन्। यह प्रेमी सरकार है जो इतना भीका बेसी है। बंधक हनुमन्त से बहने ऐसा होता तो कभी के ये सब अहमम ग्योद कर दिये जाते।

परबर्नर— बिस्मिल सही। मुसलमानों के शासन का तरीका ही इस देश के लिए मौजूद था। कोई कानून नहीं, कोई न्याय नहीं। बिजोही की बकड़ा और तिर कमल।

परबर्नर के द्वारा जो अर्थ सैकड़ों ने कहलवाये हैं उनसे भयतःसिंह का चरित्र स्पष्ट होता है —

‘भयतःसिंह का बेहुरा धार्मिक और बुद्धिमत्तापूर्ण निहायत महीर और धाम्प। प्रतीति बातचीत और दृष्टि में सज्जनता। यतीनवात तो और भी मुकुन तथा एक कन्या की तरह कोमल और गुलाबी एक बम मूँ और बनावटी। ये काँप त बातें ये

माजीदारी प्रहिंसा और सत्य के पुजारी भी बनते हैं और हिंसक हथारों की प्रशंसा करते भी नहीं सकते हैं ।”

पबर्नर की कन्या एक वैद्यकालों के शीर्ष साहस, भीरुता और देश के लिए होने वाले अपूर्व बलिदान से सहानुभूति रखती है । वह एक सरकार द्वारा आन्ध्रकारियों पर होनेवाले अत्याचारों को दृष्टि में रख कर बहु विदेशी कन्या एक कहती है :—

“कन्या— उसका साहस पक्का था ही न पापा । वह दिन का लम्बा अनशन । इतिहास में अनोखा ।

पबर्नर— ( अचकचाकर ) तुम ऐसा कहती हो, मेरी बच्ची ?

कन्या— क्यों न कहूँ ?

पबर्नर— ये सुनी हैं चिन्तोही हैं ।

कन्या— ( अनसुनी करके ) पापा मैं बतीन बीस बैसवत्स के लिए प्राण न रोक सकती ।

पबर्नर— क्या ?

कन्या— बड़ी यतीनवात जिसकी छत्र पात्रा का बच साहीर से कलकला तक कुली और प्रांमुखों से बचा था । वह उसका हुक्मारे था पापा, क्या वह नहीं था ?

पबर्नर— ओह, सबसे बड़ी नलती को सरकार के की बहु बहु थी । उसका मुत धरोर देना नहीं था । उन्होंने सबसे बुरा कायदा उठाया । उन्होंने तारे देश में धाम करवा दी है ( अधिकारी के प्रति ) एक आवेस लिखी इसकी पुनरावृत्ति एक हम बर्जित । बंदियों के छत्र उनके घर वालों को तो बने की प्रवा लमझ ।

कन्या— पापा पापा सर्वाधिक कर और अमानुषिक लावेस । छपवा इसे रद्द कर दीजिए ।

पबर्नर— शासन इसी तरह होता है -- हमें तो अपने देश का हित देखना है ।”

अधिकारी के निम्न चर्यों में बैसवत्स यतीन के प्रति यदावधि बड़े धार्मिक चर्यों में अभिव्यक्त हुई है :—

“यतीनवात, जीहू ! केचार । बन्धियों के अधिकारों की रक्षा के लिए बलिदान हो गया । उन दिन पबर्नर साहब पुनश्च साहीर नये थे तभी मैंने उसे देखा था । कितना धाम और सीम्ह, वरन्तु कितना बहादुर । कपट बूझने के इन्कार कर दिया, अपरिचित

की जमानत से किसी रिहाई को ठुकरा दिया। मुट्ठी भर इन्डियन और तिरसक दिन का अपवास। हिमुरस्तान को भरती सुने में तिर झुकाता है, जो ऐसे सपुतों को जन्म दे रही है।"

इस दृश्य में सिक्क के काम्तिकारियों के चरित्र को प्रदर्शनों तथा पुलिस अधिकारियों के मुँह से उभारा है। देश के प्रति उनके अनन्य समुदाय और बलिदान की माननाओं को अभिव्यक्त किया है। पश्चिम की प्रशंसा और निरक्षर दूधवा कन्या के प्रह से जो बाली निःसृत हुई है, उससे प्रकट होता है कि विदेशियों तक के दृश्य में भारतीय काम्तिकारियों के प्रति कितना समुदाय था।

तीसरे अंक के प्रथम दृश्य में लाहौर बहावलपुर रोड पर काम्तिकारियों का नया निवास दृष्टिगोचर होता है। २२ मई १९१० दिन का तीसरा पहर है। लाहौर पर्यटन के सभी बंदियों को बीच जमानत से उड़ा कर ले जाने की योजना पर बल का निर्णय हो चुका था। पूरे साधन न कुछ सकने से अब बीता संभव न ही सका तो अठेम्बली बन कांड के दोनों अभिदुस्तरों— जयसंतोष और बल— को छुड़ाने का विचार किया गया। इसी की पूर्ण करने के हेतु एक एकान्त में बहावलपुर रोड पर एक बंबला किराये पर लिया गया है जिसमें एक सम्पन्न परिवार के रूप में धात्रा, जयसंतोष, यमपाल, ब्रह्मप्रायन कुर्मी, सुधीला तथा अन्य साधियों ने आसन जमाया है। यह तब ही चुका है कि बोस्टन केत में बम्बियों के निधनसे ही धात्राण करके उन्हें पुलिस के हाथों से छीन लिया जायगा और मीटर में बिठाकर सुरक्षित स्थान पर पहुँचा दिया जायगा।

इस दृश्य में बल का बरीजल करते समय कट जाने से हरी भाई की धृष्ट तथा मुकदेबराज का पावन हीमा बिजित किया गया है। इस धृष्ट से कुर्मी और सुधीला पर भी बड़ा आघात पहुँचता है। धात्रा उन्हें अपनी माँ बहिन से बड़ कर मानने का आश्वासन देते हैं। मरते मरते तक हरी भाई की यह प्रकृति रहता कि वे जयसंतोष को छुड़ाने में योग नहीं दें सके। धात्रा तक ऐसे कर्मनिष्ठ सर्वस्व त्यागी और पर धात्रु कहते हैं। उनका अंतिम समुद्रोप या कि एवमन न रहे।

दूसरे दृश्य में लाहौर की सैम्युल केत में ७ अक्टूबर १९१० का एक सायंकाल दिखाया गया है। लाहौर पर्यटन केत के लिए नियुक्त डिप्युनल ने धात्रा अपना बीतना सुना दिया है। यह समाचार अग्नि की तरह बोस्टन केत से सैम्युल केत की बहार कीवारी के अंदर गूँब गया है। बंदियों ने लाना देने से इन्कार कर दिया है और वे

“अप्यतिह विम्वारः” के बारे समझे हुए बापत सोच जाये हैं। इसमें जेल के अधिकारियों की हलचल विनिवृत्त की गई है। जेलर के ये कार्य सरकार को अधिकारी वर्ग में फैले हुए हंगामे को दबा करते हैं :—

“जेलर— जेल के बाहर और भीतर एक सूक्ष्म उब कड़ा हुमा है। चापके (अर्थात् सुपरिन्टेन्डेण्ट साहब के) इकबाल से जेल के बाहर हम उसे इस तरह नियंत्रण कर देंगे कि उसका नियंत्रण भी बाकी नहीं रहेगा।

तीसरे दृश्य में इलाहाबाद के हीरो रोड के एक एकान्त रेस्टोरां में तीन पत्रकारों के सम्मेलन से एक कारवरी, १९११ की दोहर से पहले की कुछ पहचान दिखाई गई है। इसमें आचार्य की मृत्यु का मोमहर्षक चित्रण है। निष्कर्ष में भारत प्यासी नृजना की एक लम्बी परम्परा दिखाई है। भारत में तिपाही विद्रोह बंसीप क्षान्ति, रिस्ती और नंदा के जलजले व दूसरे क्षान्ति के प्रपल भारत में छ ऐसी को दिखाते के ही प्रपल से। ही निर्मो के अन्तर्गत में आचार्य और पुस्तिक के पोलीकॉर का यह चित्रण देखिये —

“बहुता मुक— मैं तो दूर था। वह पुष्पातिह आराम से सिटा अपने साथी से बस्ती में सम्मेलन था।

दूसरा मुक— विस्मृत जेलर ?

पुष्पा मुक— फिर भी पुस्तिक की भीतर बात बताते ही वह एकदम उदत्ता और बीबी और से बलादान मोतिमा छुटने लगी। पुस्तिक कप्तान की पहले से बची हुई पोली उसके लगे साथ ही उसकी बीबी ने कप्तान की कलाई बीच कर पिस्तौल दूर धरा दिया, वरन् पुस्तिक दिखी बस की मांति उसे बेर चुकी थी। मोतिमा जाकर भी वह और पिस्तौल बलावे का रहा था। उसकी आखिरी पोली एक बड़े पुस्तिक अधिकारी के मुँह में फँस गई...।

दूसरा मुक— आचार्य के आचार्य के ? क्षान्ति की अविश्व मूर्ति, आचार्य। हाय, तो क्या यह उनके दर्शन भी नहीं हो पाये ? यह उनके बिना अप्यतिह को कौन मुकामेपा ?”

निष्कर्ष में आचार्य की मृत्यु पर होने वाले वैद्यकीय मुक को आधिकार्य से अभिव्यक्त किया है। इसमें पुस्तिक की कोई बहादुरी नहीं है क्योंकि एक और पुस्तिक की पूरी बहादुरी की और दूसरी और उसके आचार्य। सम्मेलन करार हो जाते हैं और इस



जात की पुनित के तिर पर मारी कर्मक समझा जाता है। प्रसिम्बती कांड के बायी, जसबांड के बायी तथा प्रण्य क्रान्तिकारी को पकड़े जाते हैं, व पुनित की बोधता के प्रमाण नहीं माने जा सकते क्योंकि उनमें से अधिकतर अपने आप की स्वयं ही सी प डेते हैं, या दुर्भाग्यशून्य बनकर में जा जाते हैं।

बाँधों हथ में लाहौर, सैफुल केल के भीतर कांसीघर का आहाता २३ मार्च १९३१ दिन के तीसरे पहर बिछाया गया है। इस हथ में 'अबारों की भीत' जातक की बरत सीमा पहुंचती है।

कांसी की लड़ा पाये हुए बन्धियों में जयसिंह, सुकदेव और रामगुप्त अपनी अपनी कोठरियों में भीचुर हैं। वहीं समीप दूसरे लाहौर वद्वान्त कत के जयसिंह सरदारसिंह जहांगीरालाल जमवाल और जयसकाश भी बन्द हैं। आज जसालत से उन्हें जस्वी ही लौटा दिया गया है और उनकी कोठरियों में जाकर बिरा दिया है। तीसरे पहर तक केल के सभी जस्वी कारकों में भेज दिये गये हैं और सब जयस कड़ा पहरा लगा दिया गया है। आज दिनों से भिन्न हलकल से बन्धियों की कितनी नई बटना का आभास हो रहा है। जयसिंह अपनी कोठरी के दरवाजा पर जड़ जड़े सीब रहे हैं —

“आजाए आकांक्षाए सब जयापड हो चुकी हैं। इन कपड़ों की छोड़कर अपनी कही जानेवाली कितनी चीज को मैंने नहीं रखा है। सब जांड खी हैं। मोह का जामरा लंकटा हो गया है। वह इस धरीर तक सीमित भर रह गया है। कुछ थंडों बाव इस धरीर का मोह भी छूट जायेगा। जीब की वह बरत शांत अवरता होगी।

इसी प्रकार रामगुप्त और सुकदेव भी दैत के लिए जतिवान का कुछ संतोष अनुभव करते हुए लाहौर और निर्भवता से मरने के लिए तैयार होते हैं। सुकदेव महात्मा गांधी की पत्र लिखते हैं कि जयस आप हमारी सहायता नहीं कर सकते, तो हमें हम पर रहम कीजिए और हमें जकेला छोड़ दीजिए। आप अपनी अपनी सीमाओं के द्वारा हममें कुछ और बिदातघात के बीज डाल रहे हैं। आपकी अपनी क्रान्तिकारियों के प्रति जलपन हो रही सार्वजनिक सहायसुति और सहायता की भावना को नष्ट कर रही हैं और सरकार जससे साज पकाकर हमें जूजल रही है।’

जयसिंह समझते हैं कि म्यून्-ना की इन जयों से जनमान नहीं हैं लेकिन जनता की क्रान्तिकारियों का दृष्टिकोण स्पष्ट करने के लिए ऐसा पत्र लिखना आवश्यक समझा जाता है। जयसिंह मरने से पूर्व क्रान्तिकारी सेनिक के बिचार बजते हैं, उन्हें हथकड़ी

सगाई जाती है और आज़ादी के पीत धाते हुए पोंती के तख्ते पर चढ़ जाते हैं। यह हम इस नाटक की बरम सीमा कहा जा सकता है।

अंतिम दृश्य में सरकार भयर्तसिंह ने पिता सरकार किशनसिंह का पुत्र की मृत्यु पर बिभाप दिखाया गया है जो कबख रस से प्रोत्साहित है। इस नाटक का नायक भयर्तसिंह है। निम्नलिखित शब्दों में लेखक ने भयर्तसिंह का चरित्र भर दिया है :—

“सन्तानम्— पोती और बहादुर के नाम से भी अधिक धाम भयर्तसिंह का नाम लोगों में प्रिय हो गया है। उसकी इस वयासि से अंग्रेज सरकार भी डरती है।

राज— मैं कहता हूँ जोषित भयर्तसिंह से उन्हें कम डरता है। मृत भयर्तसिंह ब्रिटिश सिंह को कबजा ही कहा जायगा। सारे देश में घर घर यही यही भयर्तसिंह पैदा हो जायेंगे।”

और इन्हीं शब्दों को बुरे नाटक का मुख्य भाव कहा जा सकता है। लेखक ने ब्रिटिश किया है कि क्रांतिकारियों के बलिदान स्मार्थ वहीं पड़े पड़ित इन क्रांतियों ने ब्रिटिश सरकार की बुनियादों का हिला दिया। भारत ने इन बलिदानों का प्रतिशोध लिया और धाम इन लेखते हैं कि भारत से ब्रिटिश राज्य का अन्त ही चुका है।

नाटक का मूल भाव : क्रांतिकारी मार्ग का चित्र प्रस्तुत करना—

“अ गारों की नीति नाटक का मूल अभिप्राय भारतीय अन्धता का इतिहास प्रस्तुत करना ही था है। प्रमुख पात्रों सरकार भयर्तसिंह, बख्शेकर धामाव सुखदेव, राजगुरु और भयर्तसिंहरख इत्यादि के नामों से लेखक ने भारत को आज़ाद करानेवाले विप्लववादियों के उद्देश्य नीति प्रधान काम, योजनाएँ और दुष्क-दर्श की भाविकता से अभिव्यक्त किया है। विप्लववादियों को बचाने के लिए सरकार ने क्या क्या बहाने दिये पुलिस को कैसे खतरे का सामना करना पड़ा, उन्हें निर्दुल करने के लिए कहाँ कहाँ नीचे लगे— यह सब तथ्य विस्तार से प्रकट किये गये हैं। कुल मिलाकर नाटक में भारत की लघात अन्धता का इतिहास और क्रांतिकारी भूतिमान ही उठे हैं।

पूरा नाटक को पढ़कर एक बार स्मृतिपटल पर बैठ सब कठिनाइयों से भरे दृश्य धूल उठते हैं जो भारतीय बीरों को आज़ादी लाने के लिए अपने तन और मन पर सहने पड़े थे। इस नाटक की रचना कथोपकथन, और औरबार दलीलों को पढ़कर हमें सुई माइकेल के ये शब्द याद हो जाते हैं— स्वाधीनता के लिए लड़नेवाले हूबहों को केवल एक ही अधिकार मिलता है— पोती की धन ॥ सीने का टुकड़ा।”

भारत के समर बाहीर बयर्ततिहू अग्नयेकर आन्नाय और राजपुर के बसिबान बिरला बिरलाकर इस बात की घोषणा करते हुए दिखाई देते हैं कि बाहीरों के रक्त का एक एक बुद का अर्धकों से बरला भिया जाय। नाटक समाप्त करते करते हम राष्ट्रीयता, स्वदेश-प्रेम और बसिबानों का बरला लेने को आहुर हो उठते हैं।

नाटक की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

लेखक का उद्देश्य काँग्रेस के अन्तर्गत आर्तक-मार्ग का अनुसरण करनेवाले इन का इतिहास और अन्तिम की चेष्टा प्रस्तुत करना रहा है। काँग्रेस में एक बात ऐसे उग्र विचारवाले नेताओं का भी था, जो सरकार से जुलफ तो नहीं चुपचाप पुष्ट तरीकों से संघर्ष कर रहे थे। इन्हें आर्तक-मार्गी कहा जा सकता है। उनका विचार था कि जो ब्रिटिश सरकार विमानबाद की उपेक्षा करती है वह आत्मकबाद से अन्तर्गत होकर रहेगी। इस आत्मकबाद की कल्पना के मुख्य कारण ब्रिटिश सरकार का भारत वासियों पर घोर बमन और अत्याचार था। विक्टोरिया की घोषणा के बाद से हिन्दुस्तान में रहनेवाले अधिकारियों का व्यवहार ऐसा भिन्न भाव धूमक स्वार्थपूर्व तथा निर्दय रहा कि यहां आसकर लाहुरी राष्ट्रवादी युवक ही स्वाधीनता के लिए प्रयत्न करते रहे। अन्तर्गत और आन्नाय राक में वही विचारियों की तरह थे, जो अनुकूल हवा पाकर उग्र हो बैठे और अन्तर्गत घण्टा सरकार की बड़ों तक हिता भी। अनेक स्वार्थों पर पुष्ट समर्थ, आन्तिकारी बलों द्वारा की जाती रही।

नाटक १९२४ से आरम्भ होकर २३ मार्च १९३१ को समाप्त होता है। ये सप्त वर्ष अन्तिकारी बल के जीवन को सबसे कठोर वर्ष थे। सन् १९१६ में १९२१ तक आत्मककारी आन्दोलन महामा बोधी की के अन्तर्गत से जग रहा था, पर सन् १९२२ में अन्तिकी विरक्तारी के उपरांत जन और शोर से आरम्भ कर दिया गया था। सरकार को अधिकारियों को भीती का मिश्रण बनाने आत्म का टक्का बसत देने की प्रयत्न, कुल योजनाएं बनाने आक आत्म का अन्त कर से आरम्भ हो गया था। सरकार की घोर से भी अन्तिकारी को मानते बसाये गये और सविनय या प्रमाणित आन्तिकारियों को कठोर दंड दिये गये। उनको अनेक मानिक आन्तिकारी इस नाटक में अन्त तन्त मिलती हैं।

लेखक ने अन्तिकारी के अन्तिक तथा कावों की लेकर नाटक का तानाबाना बुना है। अन्तिकारी को 'मोक्षबान भारत ताना' तथा पु० पी० की 'सोअन्तिकारि रिपब्लिकन एन्तिकारि' का एकीकरण होकर 'हिन्दुस्तान सोअन्तिकारि रिपब्लिकन आन्तिकारि' बनी थी,

वित्तका केन्द्र जाती वा। इसके दो प्रमुख नेता थे भगतसिंह और कान्हेरकर ब्राह्मण। इस दल ने भारत की आजादी के लिए रोमांचकारी प्रयत्न किये अनेक प्रकार के कब्जे, मुक्ति से भी लिए। इन सबका प्रवक्ता लामची के आधार पर इतिहास-सम्मत विस्लेखक लेखक ने प्रस्तुत मातृक में उल्लिखित किया है। प्रायः इतिहास से सम्बन्धित मातृक भुल हो जाती हैं, जबमें श्रीलुण्ण भावना नहीं रह पाती किन्तु इस मातृक में एक और ती इतिहास का मुहूर्त और अध्ययनपूर्व आधार है दूसरी ओर मानवीय हर्म, विद्या, कछुआ वैज्ञानिक बन्ध लक्ष्मिता, और कमिशन की हृदयस्थली कोमल संवेदनाओं का विस्लेख है। भावमयता है। अनेक तरह भाव-भीने प्रत्यक्ष हैं।

हास्य रस का एक उदाहरण देखिए

प्रथम भोजन का है। घाटा बाल संवा कर टिकड़ खेंकने की सोची है। उसके पास बरतन नहीं हैं। भिड़ो के कप्पर में बाल डबाली है। विरजुन अघोरियों की तरह भोजन पक जलता है। आत्राय सबसे पहले और भयतिविह भार में आगित होते हैं। पूरी मक्की का कप्पर जिसमें बाल बनी है लाकर बीच में रख दिया जाता है। उसके पास अन्नमसी रोडिनी। बिना हस्ती बाल का रस घुमला था है। आत्राय बड़ी बैतकस्तुकी से रोटी का टुकड़ा तोड़कर खाने लगते हैं भयतिविह कुछ निराश्रित हैं :—

“भयतिविह— (इसी के भाव का मन में क्षिपाकर) चाबियो, हमारा भोजन किसी छाही भोज से कम नहीं है। तो क्यों न हम उसी लकड़भुकी अन्नाज से खावें, जिससे लकड़भु के भोजन और रसित जाते हैं।

कान्हेरकर— (इसकर) बहर, पर हम लकड़भु भोज हैं। हमें तो रस भर कर जाना है। लकड़भु और लकड़भु में कड़ रसों में तो

‘भयतिविह— पर धनीरी अन्नाज की कोई छुरा नहीं है। देखो ।”

ये बड़ी लज्जासे विरजुन में से एक विस्तृत धीमा सा टुकड़ा लौकते हैं, देखे कि कहीं बैधारे टिकड़ का रस न कुछ जाय और अपनी संघर्षियों में करोंच न धामे जाये।

‘भयतिविह— (जाते हुए लकड़भुकर) कुछ बाकिरमसी छाह की भी माग है दिया।

विजयकुमार— कोई मागनी बैक सेमी तो लकड़ ही जायगा।

भयतिविह— बस्ताह क्या लकड़भु-छाना है। लकड़भु-छाना है।

चित्रण— ( आन मारकर ) सबके जाईं तेरी छाया के ।

चित्रणकुमार के ये शब्द कितने मधुर और मार्मिक हैं :—

‘चित्रण— और मोहन जावनी रात में वहाँ पार्क में जाँव को निहारते हुए बकई जायेंगे । सम्मोहन में गिरपड़ जुब पुसिचबातों से ही पुसिचबाँटें से बिगिन जसा तुमने जाँव जी देखा है ? कुरा ज्वर देखो ! ओह ! कितना प्यारा कितना सुन्दर है वह !’

आबाद के पुसित से मुकाबले का एक मार्मिक चित्रण इन शब्दों में दिया गया है —

‘वह आराम से सिरा अपने साथी से बातों में लक्ष्य था ... फिर भी पुसित की ओर पल्ला छोड़े ही वह एकदम उड़ना और दोनों ओर से बनावन मोलियाँ छूटने लगीं । पुसित कप्तान की पड़से से लगी हुई मोली उसके साथी, साथ ही उसकी मोली ने कप्तान की कलाई बीच कर विस्तार को दूर मिरा दिया बरम्बु पुसित टिकड़ी बल की भाँति बड़े घेर चुकी थी । मोलियाँ जाकर भी वह और विस्तार जलाये जा रहा था । उसकी आँखिरी मोली एक बड़ पुसित अधिकारी के मुँह में बँस गई ।’

भगत्सिंह का मोरठा और साहू से काँतो के लिए जाना जनता के ‘हाकनाब जिम्मादार’ के बारे, भगत्सिंह के पिता किशनसिंह का ककल शेरन आदि स्वतः विवेक सफल और मार्मिक बन पड़ हैं ।

सम्पूर्ण नाटक आबादी की प्रचलित भावनाओं से परिपूर्ण है । राष्ट्रीय जागृकारियों का वह इतिहास अपने विषय तथा प्रतिपादन दोनों दृष्टियों से सफल सुन्दर और प्रभावशाली बना है । इसे मेटक की सर्वाधिक प्रभावशाली रचना कहा जा सकता है । व स्वयं राष्ट्रीय विचारों में अग्रण्य विश्वास रखनेवाले हैं और उनकी जागृकारी भावनाओं को इस नाटक के पात्रों के माध्यम से प्रकट होने का प्रयत्न अवसर मिला है ।

## छठा खण्ड

### राजस्थान में कहानी का विकास, उसमें लेखक का योगदान

राजस्थान में कहानी का इतिहास भारत के अन्य प्रांतों की प्रवेष्टा पुराना है। यहाँ साहित्य के क्षेत्र में कहानी बहुत पुराने घुप से बनी घा रही है। राजस्थानी भाषा-साहित्य का इतिहास छे सो बर्ष पुराना है। प्राचीन भारवाड़ी साहित्य में अनेक कहानी बंदी छोड़ी मोड़ी गनाए हैं, जिनमें कुछ लौकिक तथा कुछ पालीकिक हैं कुछ प्रन तथा नृ मार सम्बन्धी हैं कुछ लोकप्रिय लोक गायकों के सम्बन्ध में हैं कुछ ऐतिहासिक और सम्बन्धी लोक गायन हैं जिनकी प्रतिष्ठा लोक मानस में बार्षों के कर यौवन, और परम्परा स्थाय साहस और अलिखित धारि के कारण लहक ही प्रचलित हो गई हैं। यहाँ इन लोक बाधाओं का जुनवा और जुनवा एक लोक परम्परा सी रही है।

लोककथा बार्षों और लोककथा संघीत में तो राजस्थानी साहित्य सम्पन्न है ही, उन्के बीर बीरोंपनाओं ने एक नवा शिक्षितता ऐतिहासिक कथाओं का यहाँ के साहित्य को प्रदान किया है। राजस्थानी बार्षों की बार्षों और बरबारी कवियों के पन्नों में प्रचलित बीर मानाओं का वयन हुआ है। कथा साहित्य के इस स्वक्य में जितने "पुहलोद भलसी री कथा" जैसे वयन हैं, तारे भारत के लेखकों और कवियों को प्रेरणा बी है।

इन कथाओं और बार्षों ने नया जीवन और नया प्रास भारतीय साहित्य के क्षेत्र में नृ का है। प्रास हुबेनी पर रजकर जीवन-आधार में संलग्न बीर-बीरोंपनाओं के बार्ष लैखकों के लिए पालीकिक प्रोन के लोत रहे हैं। बिदेसी लेखक जैसे कर्नल जेम्स टाड और हेन्सीटोरी इन कथाओं के शास्त्र-अनुपम पर तो प्रुप्त हुए ही हैं उन्के बदला कन के ऐतिहासिक प्रनाओं ने तो उन्हीं प्रभिभूत कर दिया। जेम्स और स्पाई के बीरों की बार्ष उन्हीं प्रुप्त गई। उन्हीं राजस्थान की बार्षी घाटी में बार्षपनी और स्त्रोनिवात मिले। इन बीर कथानकों पर बिकसित प्रचुर और बिदात कथा-साहित्य बंवात है तैकर पनाव-नित्य तक के कहानी साहित्य पर घा गया। बीसवीं सताब्दी के प्रवम बरस में उत्पन्न राष्ट्रीय चेतना पर इस साहित्य ने मौलिक प्रभाव डाला।

राजस्थान के लेखकों ने भी इन कथाओं पर प्रचुर कथा-साहित्य रचा। कथा-काव्यों के रूप में, कथा-नाटकों के रूप में तथा उपन्यास कहानियों के रूप में यहाँ के लेखकों ने बहुत सा साहित्य तैयार किया। लखाई, बीरता, श्वाप, सारथानिमग्न, प्रेम और छाहूत के धर्म हृदयों से इस समय का कथा-साहित्य मोत-मोत है। यह धारा बहुत दूर तक जारी रही और अब तक यह बीड़ी बहुत मात्रा में मिल जाती है।

राजस्थान के कथा-साहित्य के तृतीय उदय में यह साधुनिक कहानी आती है जिसकी सामग्री जन-जीवन के बहुविध चरित्रों के मग्न से प्राप्त होती है। समाज की पृष्ठभूमि पर नित्य प्रति घटनेवाली घटनाओं से लेखक जहाँ कहीं समाहित होता है, वहीं उसे कहानी के बीज मिल जाते हैं। यह उसे साहित्य में संजो कर रहता है। मनोविज्ञान के संतुलन के निष्पत्ति से यह कथा-साहित्य का ऐसा धूपसाही बरत चुन कर रहती है, जो रोचक और चतुर्कारण्य तो होता ही है कला की अविस्मरणीय कृति भी होता है।

इस प्रकार की कहानियों का प्रारम्भ भारतीय साहित्य में अर्धशताब्दी साहित्य के संतर्प से हुआ है सही, परन्तु राजस्थान में आते आते उसका स्वरूप प्रायः मौलिक बन गया है। कथा के ऐक्यिक की दृष्टि से, बिहार सामग्री की दृष्टि से जैसी की दृष्टि से यह साधुनिक कहानी का सही रूप प्रस्तुत करती है। इसमें राजनैतिक सामाजिक जीवन के विभिन्न विभिन्न वर्गों का चित्रण जीवन के नये पृष्ठों का स्थिरीकरण करने की प्रवृत्ति दिखाई देती है। ऐतिहासिक कथानक भी इस काल की कहानियों में प्रोक्षित हुए हैं। पर जिनमें भी नये दृष्टिकोण का प्रवेश दिखाई देता है। इस काल में हिन्दी और राजस्थानी दोनों भाषाओं में कहानी साहित्य प्रचुर परिमाण में रचा गया है। इस काल के प्रमुख कहानीकारों में सर्व धी चण्णर घर्मा गुलेरी, चण्णारायण व्यास, जगदीशप्रसाद 'वीरक' डा० विष्णु अम्बालाल बोस, जगदीशराय नाथर, सुन्दरलाल वर्मा, चण्णुप्रसाद राकसेना, मोहनसिंह सेनर इत्यादि हैं। इन्होंने अभी जैसी की ऐक्यिक की कहानियों का प्रारम्भ किया और राजस्थान की कहानी की नई दिशा की ओर बढ़ा।

राजस्थान ने भारत की साधुनिक हिन्दी कहानी के विकास में भी प्रचुर योगदान दिया है। हिन्दी की लीकप्रियता तथा मध्य में अल घाने पर साधुनिक पाठ्यक्रम दोनों की कहानियाँ राजस्थान में मिली आने लगीं। भारतीय लोकजीवन भी जीवन दिया की ओर प्रभावित होने लगा। जयपुर निवासी प० चण्णर घर्मा गुलेरी ने चण्णाराय कथा-

काली का ब्रह्मण्य अपनी तीन कहानियों में दिखाया। ये कहानी के क्षेत्र में सर्वथा नए प्रयोग थे।

४० बग़रुम शर्मा गुलेरी को क पिता पंडित शिवराम बजाकरले आदि आत्मीयों के बंदिश के धोर जयपुर के महाराज सवाई रामसिंह जी क बरबारी थे। उन्हीं के कवचताद्विधिक संस्कार मुनेरा जी में प्राये थे। आरम्भ में गुलेरी जी ने अपने घर घर ही अपने विद्वान् पिता जी से शिक्षा प्राप्त की थी। सा कम से ही आपकी सस्कृत का अभ्यास करमा पया था। आपकी छोटी बचपना से ही आपल छोरे लेखन का शौक था साहित्य प्रेम धोर वैद्यभक्त के कहान् बिचार बिचपन के। सन् १८०३ में आपने ब्रह्मण्य विश्वविद्यालय की बी० ए० परीक्षा प्रथम क्र० में पास की थी। आपने प्रॉप्री की का भी पर्याप्त अभ्यास कर लिया था। आपका सैप्टीमैण्ट नोट के साथ इन्हीं स प की में “दी जयपुर आक्जबैररी एन्ड इट्स बिस्तर” नामक ग्रन्थ लिखा था। सन् १८२० में गुलेरी जी कासीविश्वविद्यालय के सस्कृत विभागे के अध्यक्ष हुए। आपने संस्कृत प्रॉप्री आकृत पानी बनना मरली आदि भाषाओं का अच्छा अध्ययन किया था तथा वैदिक साहित्य बर्तन धोर पुरातत्व का अनुशीलन किया था। राजस्थान के आप प्रथम सफल हिन्दी कहानीकार थे।

४० बग़रुम शर्मा गुलेरी की प्रथम कहानी “सुखमय जीवन” सन् १८११ में “नारद मित्र” में प्रकाशित हुई थी। “उत्तमे कहा बा” सरस्वती में १८१२ में प्रकाशित हुई। उनकी तीसरी कहानी “बुद्ध का काँटा” ई बिषय में युवकों की असफलताओं का बिचल है। यदि केवल तीन कहानियों की पू जी पर कोई कहानीकार भ्रमर ही सकता है तो वह गुलेरी जी ही थे। “सुखमय जीवन” १८११ में प्रकाशित हुई थी। उन्हीं तिनो ब्रह्मण्य की की “ब्रह्मण्य नामक कहानी” “इन्डु” बरिका में प्रकाशित हुई थी। अतः गुलेरी जी को हुए “ब्रह्मण्य धोर प्रेमबन्ध के साथ आधुनिक हिन्दी कहानी का जन्मदाता भी मान सकते हैं। ये १८११ में हिन्दी कहानी के क्षेत्र में प्रविष्ट हुए और बार वर्ष के बाद ही आपने ऐसी बेमोड़ कहानी “उत्तमे कहा बा” प्रस्तुत की जो आज तक हिन्दी कहानी अन्त में धीरे स्वरूप प्राप्त कर चुके हैं। यह प्रथम अर्थनैतिक या ऐतिहासिक शैली में लिखी गई है। जहाँ जहाँ आत्मकथा एवं कथोपकथन की भी कुट है। इसकी सुबदन्ता यह है कि लेखक ने बड़े कोमान से पात्रों के पुरुष जीवन, मनोमायी एवं आन्तरिक जीवन की बिचित्र किया है। आपा लकीक, बहादुरी और सुहृदबन्ध के



संस्कृत के उत्तम सभों से परिपुर्ण है और कहीं कहीं पंजाबी के सभों की भी बुद्धि है। यथार्थता की रक्षा के लिए पंजाब का आतावरण उत्पन्न किया गया है। मात्र पंजाबी है। वैसे ही उनके नाम हैं। अतिशयिष्ठ में संकेतात्मक और कथोपकथनरमक प्रस्तावी का प्रथम प्रयोग किया गया है। कथानक तत्कालीन प्रथम महापुरुष से सम्बन्धित है। पुत्र तथा उसमें होनेवाले संघर्षों की यथार्थ भाषा है। 'पुत्र तथा पति का अत्यास आह्वेवासी नारी की विनय पुरीष के प्रथम महापुरुष का धीवर आतावरण तथा विप्लव प्रेम के लिए आदर्शबलिदान'— इन्हीं तत्त्वों को लेकर इस सफल कहानी का निर्माण हुआ है। यह हिन्दी की प्रथम आध्यात्मिक डेप की आधुनिक कहानी है।

"पुलेरी की की रचनाएं हम्म, कबहुत व्यंग्य कपल धारि भावों का ऐसा मनोहर विमल करती हैं कि भारतीयता के प्रत्यक्ष दर्शन होने लगते हैं। इनकी सीरीय कहानियों की हम हिन्दी साहित्य का अमूल्य रत्न कह सकते हैं। यदि यह कहा जाय कि इन कहानियों ने राजस्थान में नहीं प्रसूत हिन्दी संसार भर को आध्यात्मिक डेप की कहानियाँ लिखने को प्रेरित किया, तो आधुनिक न होगी।

हिन्दी कहानी के उत्पन्न काल पर इच्छि जानते हैं तो विवित होता है कि 'सन् १९२१ तक प्रायः अनेक लेखक इतर जा चुके थे। प्रताप प्रेमचन्द और 'उषा' हिन्दी कहानी के कीर्तिस्तम्भ माने जाने लगे थे। उस युग के हिन्दी कहानीकारों को मुख्यतः तीन बर्गों में विभाजित किया जा सकता है १— प्रताप का आध्यात्मिक स्कूल २— प्रेमचन्द का यथार्थवादी स्कूल ३— अनुवाद स्कूल। राजस्थान के कहानीकार भी इन्हीं स्कूलों के प्रसारण रहे जा सकते हैं।

राजस्थान के भी अमनारामलु व्यास की जगदीशपताइ बीरल जा० विष्णु अम्बाताल बीरी की जनार्दनराय नामर, भी लुम्हरनाल गर्ग और भी अमरीप्रताप भापुर, कपल धारि सामाजिक यथार्थवादी प्रेमचन्द बर्ग के कहानी लेखक हैं। इन्होंने समाज की कठिनों, अन्धविश्वासों और सड़ी बनी परम्पराओं पर व्यंग्य किए। समाज की अनेक समस्याओं का विश्लेषण किया। यथार्थ और आदर्श का सम्मिश्रण किया। इनका हाँवा आध्यात्मिक साहित्य से भिन्न गया था वह आत्मा भारतीय थी। भी अमनारामलु व्यास ने आरम्भ में सफल कहानियाँ लिखी हैं। किन्तु राजनीति ने उनके कहानीकार की दृष्टि कर दी। भी अमरीता प्रताप "दीपक" सम्पादक 'भीरा' राजस्थान के अमोघ हिन्दी साहित्य से भी और ऐतिहासिक विषयों के लेखक हैं। इतिहास पर भी आपने कई जीव

पूर्व पुस्तकों मिली हैं। "दीपक" की भी राजनीति में कंठे रहे किन्तु महात्मा साहित्य का निर्माण करते रहे। इतिहास में प्रकृति होने से इनकी रचि इतिहास सम्बन्धी नहीं बल्कि लोगों की ओर हो गयी। फलतः उनकी ऐतिहासिक कहानियाँ मिली देन हैं। "राजपूत रमलियाँ" उनका एक प्रकाशित कहानी-संग्रह हैं। श्री जनार्दनराव नायर मनोविज्ञानिक कहानीकार हैं। नायर जी की कहानियों में बौद्धिकता का यथेष्ट प्रभाव पड़ा है। इस पृष्ठभूमि में हम कहानीकार रामचरण लक्ष्मी के कहानी-साहित्य पर एक बिह्वल दृष्टि डालेंगे।

प्रयोग रचित लक्ष्मी की कहानी कला की दृष्टियों से श्री रामचरण लक्ष्मी के कहानीकला को समझे बढ़ावा है। ग्राम प्रसार-स्कूल के कहानीकार हैं। लक्ष्मी जी के १—सलाहियाँ २—विषय ३—वर्णनकार ४—पुण्यार्थ और ५—विपन्नदेसा आदि कई कहानीसंग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इनमें प्रायः सामाजिक और भावार्थक कहानियाँ हैं जो हमारे समाज के जीवन के दूर बहुतों को स्पर्श करती हैं। जितनी उन्हें परिवारिक जीवन को स्पर्श करने में सफलता मिली है, उतनी समाज कहानियों में नहीं। लक्ष्मी जी के साहित्य में जीवन और समाज की समस्याएँ और भावनाएँ हमारे धारमन्त्र का विषय बन गईं। परिवारों तथा विविध गृहस्थों के दैनिक जीवन की विविधता और बहुलता की ओर लक्ष्मी जी प्रवृत्त हुए। मानव जीवन के अन्तर्जीवन के बहुत से पहलुओं का सफल विवरण उन्होंने प्रस्तुत किया। इनका कहानी रचना-काल १९२३-२४ के आसपास से आरम्भ होता है।

इस सम्बन्ध में लक्ष्मी जी लिखते हैं —

"मुझमें कहानी लेखन का शौक १९२३-२४ के लगभग हुआ था। मैं लौकिकता का भुके लेखक बनना ही और प्रसन्न बनना ही। तब मैं बीरे बीरे कुछ न कुछ लिखने लगा। मैं अन्तर्गत के दिन के। ऐसे दिन जबकि संसार की सज्जद घुसकर देने का धर्मविज्ञान प्रत्येक भुवक में आसक्त रहता है। बीरे बीरे लेखक की कठिनाइयों से साक्षात् होते स्या। जब तक जीवन का स्पर्श भूय था ऐसा समय जबकि दुनियाँ भुनहने स्वप्नों से भरी हुई प्रतीत होती है। जब स्वप्न हुआ, व्यावहारिक जगत में आना पड़ा तो देता कि लेखक उस ऊँचाई पर निवास नहीं करता जिसका जिक्र प्रायः उनके पात्रों को पढ़ने से मिलता करता है और इसके भी प्रतिरिक्त हिन्दी लेखकों के भुवक का तो शिकाना नहीं।" — चित्रपट (प्रथम संस्करण—भूमिका पृष्ठ २)

सकसेना जी ने जो कहानी साहित्य तैयार किया उसका आधार उनका निजी अनुभव धारण जीवन का अनुभव और अपने निरुद्ध है। उन्होंने जीता जीवन देखा, सुना, अनुभव किया बीता ही कहानी के माध्यम से उतारा है। जिस जीवन से उसका निरुद्ध का परिचय है जिस वातावरण को उन्होंने प्रकृति तरह देखा रखा है, वही उनकी कहानियों में पाया जाता है। उनका आधार वास्तविक जीवन तथा स्वप्रतिष्ठित स्वानुभूत अनुभव हैं। कपोल कल्पना या कथनबिहार से वे लरा नहीं हैं। अपने कहेय की स्पष्ट करते हुए सकसेना जी ने लिखा है—

हम जब किसी लेखक का ग्रन्थ उठाते हैं, तो बहुतों जीवन का ऐसा मनोहर ससम्पन्न आकर्षक बिज देखते हैं कि उसमें लेखक के निजी जीवन तथा प्राप्तपात के वातावरण से बरा ही परिचय नहीं पाते — अन्धर धमक रही धाय के धाये सुभासु की शीतल किरणों का परदा डालकर वास्तविकता को बचा रखने से बहुतों बड़ बड़े अनर्थ हो जाते हैं। लेखकों की दुर्बला का कारण उनकी अपरिमित संख्या में पैदावाश जी है और इनके उत्तरवादी हैं वही लेखन को वास्तविकता पर इस प्रकार परदा डाले रहते हैं। उस समय जितने लेखकों से मेरा परिचय हुआ उन सब में लेखक बनने की सरम्भ प्रकटीका देखी। उनका रहन-सहन यद्यपि मृगसुख के कपडों से घुल्ला था लेकिन उनके साहित्यिक धारण जगद-निकुल में बिहार करनेवालों से कम नहीं थे। अब तक बाह्य भीतर एक-सा न हो तब तब लेखनी में बिद्यत सवार कीसे हो ?

—“बिजपट” मुद्रिका पृष्ठ ३

सकसेना जी ने ग्रंथ और ग्रन्थ के रूप पर जीवन के आभाव, पीड़ा, कुल-नीच प्रतर्पता कतक और बेवना के अधिक बिज कीये हैं। उनकी सहानुभूति बलित और पीड़ितों से अधिक है वे जनवादी धारणों को मानते हैं प्रजासत्ता के सिद्धान्त उनके अधिक निरुद्ध है। “परिवर्तन धीरे-धीरे कहानी का निर्धन किन्तु दुष्प्राप्त बुद्धि हरीष उनका धारण है। वह बहुत ऊँचा उठता है, बिपरी कलेवरी में खुला जाता है पर स्वदेश सेवा के लिए वह बिपरी कलेवरी की धरतीदार करता है। ‘बिपाता का परिहस्त’ एक मनोबैज्ञानिक कहानी है। इनमें एक पिता की ममता बाल्य और विवाह का बिज लीबा गया है। ‘बननी का धन’ में एक माँ के मोह का मनोबैज्ञानिक अध्ययन है। वह धारणिक ममत्व के कारण बननी ही उठती है। ‘मेरी बहियाँ’ में ‘तीर्थ जगदाल’ में इत नु आचारी युग की धर्म विपत्ति और धारण की कहानी है। एक

मियां भीने जाने मजदूरों को १२ २० रुपया महीना पर मीठरी के लिए यताना कोयले की खदान में ले जाते हैं। सर्ब लोग में से भीते व्यक्ति अपनी प्रियतमा तक की परवाह न कर कतरनाक काम करते हैं और कुछ तो अपने सग भंग तक करा लेते हैं। इसमें एक कस्तुर व्यवा भरी हुई है। इसी प्रकार 'रत्नधार' में एक परीब कम्पोजीटर की तड़पती कलपती प्रारणा की पुकार है। सतार की कदुता का चित्रण है। "नाब के पापी" में एक परीब घाबसी को नाब को संवर में ले निकालने में सहायता करता है इसीलिए बल में पेंक दिया जाता है क्योंकि वह गरीब है और इसलिये पापी है। वे समझते हैं कि उसी पापी के कारण नाब बूझ रही है।

इन्होंने ऐतिहासिक बीरों के चरित्रों को भी कहानी के रूप में प्रस्तुत किया है। ऐसी कहानियों के भी दो तीन संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इनमें कथा के सुनभाव को बढ़ी सौन्दर्य भावा में विकसित करने के साथसाथ एक कहाने का प्रपत्न देखा जाता है। भावा का सौष्ठव इन कहानियों का प्राण है। इन कहानियों की कथावस्तु प्रायः ऐतिहासिक है परन्तु उसका विकास मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सरल और रोचक रूप से इस प्रकार होता है कि उसके कार्य-कारण के सम्बन्ध का मेल बराबर बैठता जाता है। ये छोटी छोटी कहानियां अपना पुष्कल स्थान रखती हैं। इन कथानकों पर अन्य लेखकों ने भी रचनाएं की हैं पर सततता भी की लेखनी ने इन्हे अपूर्व रूप में प्रस्तुत किया है और वे साहित्य की स्थायी सम्पदा बन गई हैं।

सकडेना जी का कहानी साहित्य विद्याल है। उसका क्षेत्र बहुत व्यापक है। पौराणिक और वैदिक आख्यानों ग्रीस और रोम की लोकवास्तवों के प्रत्येक प्रसंगों की कथाकार की सहृदय कल्पना पुट के साथ उन्हींमें बड़ी रोचक रूप में उपस्थित किया है। उनकी ये रचनाएं विशेषतः बालकों के हृदयों में रोचक कथा-साहित्य देने की उत्कृष्ट प्रतिभावा की पुष्कल हैं। अपने क्षेत्र में इनका वर्चस्व प्रचार हुआ है। ये कहानियां 'सतपुत्र की कहानियां' 'बेरो की कहानियां' 'आबियों की कहानियां' आदि कई छोटे छोटे संग्रहों में निरुद्ध हैं; 'मेककसिण्ड' के कथा प्रसंगों को कहानियों के रूप में रोचक ढंगी और प्राणमयी भाषा में 'नाब की कहानियां' नामक छोटी सी पुस्तक में दिया गया है। इन कहानियों का सांस्कृतिक-साहित्य निर्माण में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। इन कथाओं के माध्यम में कहानी-कला का पूरी तरह निर्वाह किया गया है। आदि के अन्त तक कहानी की रोचकता में कोई कमी नहीं पाये पाई है। उनमें अनादिक

विस्तार भी नहीं है। सफ़तेना भी ने वैज्ञानिक विषयों पर भी कहानियाँ लिखने प्रयास किया है। प्राकृतिक विज्ञान में कुछ घुल-तारों की खोज की है वे मुष्टि के प्राय माने जाते हैं। उनका ज्ञान करारों के लिए "बानबे पुरखों की कहानी" नामक इन एक छोटी कहानी इसी कौटि की है।

इसकी छोटी बड़ी ९०० से ऊपर कहानियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। स्वामायाव सभी संग्रहों की कहानियों पर यहाँ विचार नहीं किया जा सकता। वे एक सफल और मन कहानीकार हैं। मानव चरित्र के चित्ते के रूप में वे हमारे कथा-साहित्य में बहुत ऊँचे स्थान के अधिकारी हैं। उन्हें कथा रसों के रस का ज्ञान है। इसी में उनकी सफलता का रहस्य दिया हुआ है। उन्होंने अपने 'बुधवाह' नामक कहानी संग्रह के पारम्पर कहानी की सीमाँता करते हुए कुछ महत्वपूर्ण बातें कही हैं जिनसे स्पष्ट है कि "A fiction in all truth" के माननेवाले कहानीकार हैं। वे लिखते हैं "कु लोग कहानियों की कल्पना प्रयुक्त होने के कारण निष्ठा मान लेते हैं। इसलिए वे उन गलत पाठन को जतना महत्व नहीं देते किन्तु वह धारणा भ्रान्त है। कहानी कल्पना प्रयुक्त होने पर भी सत्य होती है। उसमें जिस व्यापार का कल्पित चित्र खींचा जाता है उसे हम जीवन में निम्न होते हुए देखते हैं। किसी कल्पित बाग के साथ निम्न घटनेवाला घटनाएँ जोड़ देने से ही वे निष्ठा ही जाती हैं, इसे क्यों मानेंगे ? यहाँ क्यों प्रतिरक्षित ऐसीकिक प्रतिमानवीय और प्रमानवीय घटना कम के बीच भी जीवन के सत्य का कम संबंध सुरक्षित रहता है।" सफ़तेना भी की प्रतिभा अनेक ओर लगी है। पर उनके कहानीकार को हम नहीं जुना सकते। राजस्वान के कहानी के विकास को उन्होंने सर्वथा मौलिक देन दी है। उन्होंने अपनी कृतियों से कथा साहित्य के प्रगत चर का निर्माण किया है। सभी कहानीकारों के लिए वे एक मूल तक प्रेरणा के स्रोत रहेंगे।

